"आधुनिक राष्ट्रवाद के विकास में सामाचार पत्रों की भूमिका"

राघवेन्द्र यादव*

आज के समय में समाचार पत्र रहित जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। समाचार पत्र हमारे दिन–प्रतिदिन के जीवन का एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य अंग बना है। वर्तमान जीवन में प्रेस की भूमिका अतिमहत्वपूर्ण मानी जाती है। यह केवल जनता को विभिन्न विषयों जिसमें मुख्यतः सामाजिक घटनायें, राजनीति, खेलकूद, व्यक्तिगत विज्ञापन इत्यादि जानकारियाँ ही नहीं बल्कि जनता की भावनाओं को भी एक स्वरूप देते हुए उसे प्रभावित करता है। प्रेस समाज को रूप, बल और बुद्धि प्रदान करता है वह सरकार के ऊपर अंकुश भी रखता है, अपने लेखों, विचारों, सम्पादिकियों तथा पाठकों द्वारा लिखे गये सम्पादक के नाम पत्रों के माध्यम से सरकार को जनता की भावनाओं और विचारों से अवगत कराता है।

19वीं शताब्दी में समाचार पत्रों का उदय और विकास एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। भारत में समाचार पत्रों का प्रारम्भ कब और किस प्रकार हुआ तथा इसके विकास में पश्चिमी शिक्षा ने कहां तक सहयोग किया? 19वीं व 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में समाचार पत्रों ने भारतीयों की विचाराधारा में राष्ट्रवाद की भावना का विकास कर स्वतंत्रता आंदोलन में क्या भूमिका निभाई तथा ब्रिटिश सरकार का प्रेस के प्रति तथा भारतीयों द्वारा स्थापित समाचार पत्रों के प्रति क्या नीतियां थी? यह सब प्रश्न उस समय हमारे सामने आते हैं जब हम भारत के राष्ट्रवाद में समाचार पत्रों का इतिहास तथा राष्ट्र निर्माण में इनकी भूमिका के विषय में सोचते हैं या अध्ययन करते हैं।

भारत में प्राचीनकाल से ही राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सूचनाओं को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए डोल–नगाड़े बजाकर, शिलालेख, पत्र–लेखन आदि माध्यमों का उपयोग किया जाता था जो समय के साथ आधुनिक रूप में परिवर्तित होता गया। प्रारम्भ में समाचार पत्र जो केवल सरकारी हाथों में था वह धीरे–धीरे अब जनसामान्य की ओर अग्रसर होने लगा।

इतिहास में समाचार पत्र का प्रारम्भ 59 ई.पू. का "द रोमन एक्टा डिउरना" से हुआ। जूलिएस सीसत्ने जनसाधारण को महत्वपूर्ण राजनैतिक और सामाजिक घटनाओं से अवगत कराने के लिए शहरों के प्रमुध्य स्थानों पर प्रेसित किया। 8वीं शताब्दी में चीन में हस्तलिखित समाचार पत्रों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। देखा जाये तो ब्रिटिश शासन के एक पूर्व अधिकारी के द्वारा समाचार पत्रों की शुरूआत मानी जाती है लेकिन उसका स्वरूप समाचार पत्र की तरह नहीं था। वह केवल एक पन्ने का सूचनात्मक पर्चा था। पूर्णरूपेण अखबार बंगाल से ब्रिटिश वायसरॉय जे.के. हिक्की द्वारा "बंगाल गजट" निकाला गया था। कम्पनी की आलोचना करने के अपराध में हिक्की को सजा भुगतनी पड़ी परन्तु अपने पत्र की नीतियों में परिवर्तन न करने के कारण हिक्की की प्रेस को सरकार ने जब्त कर लिया। इसप्रकार बंगाल गजट का अंत हो

*शोधार्थी (इतिहास) अटल विहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

गया। परन्तु इससे हिक्की की विचारधारा वाले समाचार पत्रों की संख्या कम होने की अपेक्षा दिनों–दिन बढ़ती गयी। नवम्बर 1780 ई. में प्रकाशित 'इंडिया गजट' दूसरा भारतीय पत्र था जिसके साथ भारतीय प्रेस के क्षेत्र में तीव्र गति से विकास हुआ। 18वीं शताब्दी के अंत तक बंगाल में कलकत्ता कैरियर, एशियाटिक मिरर, तथा ओरियंटर सटार, बंबई गजट तथा हैराल्ड और मद्रास गजट, मद्रास कैरियर आदि समाचार पत्रों का प्रकाशन दिनों–दिन बढ़ने लगा।

1821 ई.में बंगाल में संवाद कैमुदी के प्रकाशन से तथा 1822 ई. के मिरातउल अखबार (फारसी में प्रकाशित) के साथ प्रगतिशील राष्ट्रीय प्रवृत्ति के समाचार पत्रों का प्रारम्भ हुआ। इन पत्रों के सम्पादक एवं राष्ट्रीय प्रेस की स्थापना का श्रेय राजा राममोहन राय को दिया जाता है। इन्होंने भारत में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व दार्शनिक विचारों का प्रकाशन किया। प्रारम्भ में जहां समाचार पत्र कुछ वर्गों तक ही सीमित थे वह धीरे–धीरे भारतीय जनमत में जागृति व सुधार में सहायक होने लगे। अब लोगों में आपसी जुड़ाव बढ़ने लगा। अब समाचार पत्र देश में नवीन जागृति व विचारधारा का आधार बनने लगे।

भारत में राष्ट्रवादी दृष्टिकोंण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से ईश्वर चन्द विद्यासागर द्वारा स्थापित सोमप्रकाश का प्रकाशन एक बंगाली साप्ताहिक के रूप में 1858 ई. में किया। इसकी लोकप्रियता बढ़ते देख लार्ड लिटन ने इसके विरुद्ध वार्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू किया था। मूलतः इसमें किसानों के हितों का जोरदार समर्थन किया था।

प्रारम्भ में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों में अमृत बाजार पत्रिका भी इतिहास में महत्वूपर्ण स्थान रखती है। इस पत्रिका का दृष्टिकोंण राष्ट्रवादी था। इसने कुछ ही समय में जनसामान्य में अपनी लोकप्रियता स्थापित कर ली। तथा वार्नाकुलर प्रेस एक्ट से बचने के लिए यह रातोंरात अंग्रेजी में प्रकाशित होने लगी। तत्कालीन समय के समाचार पत्रों की राष्ट्रीयता की भावना से सरकार जितनी ही उत्तेजित हुई जनता में उतनी ही चेतना फैली। भारतीय राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी आंदोलन के सामाजिक, सांस्कृतिक राजनैतिक और आर्थिक प्रत्येक रूप में समाचार पत्रों का बढ़ा हाथ रहा। राष्ट्रीय आंदोलन के विस्तार के साथ–साथ प्रेस व समाचार पत्रों का विस्तार होना स्वभाविक था जिसमें 1881 ई. में बंबई में अंग्रेजी भाषा में मराठा व मराठी में 'केसरी' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। बाल गंगाधर तिलक के मराठा तथा केसरी राष्ट्रीय भावना एवं उग्र राष्ट्रवाद को फैलाने तथा जनता तक अपने विचारों को पहुंचाने के महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी साधन बन गए थे। तिलक के लेखों का लोगों में गहरा प्रभाव पड़ा।

बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद को फैलाने का काम अरविन्द घोष और वारिन्द घोष ने जुगांतर तथा वन्दे मातरम् पत्रों से किया। मद्रास से अंग्रेजी में 'हिन्दु' एक साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित होने लगा जो 1881 ई. में दैनिक के रूप में परिवर्तित हो गया। इसका दृष्टिकोंण उदार एवं राष्ट्रवादी था।

कुशल एवं प्रभावकारी राष्ट्रीयता होने के साथ–साथ गांधी एक प्रभावकारी पत्रकार भी थे। यंग इंडिया तथा हरिजन के माध्यम से इन्होंने अपने विचारों का प्रसार किया जिससे सरकार ही नहीं भारत की आम जनता को भी एक बड़े आन्दोलन के लिए जागृत कराया। प्रेस द्वारा उपलब्ध राजनीतिक शिक्षा और प्रसार की सुविधा के कारण ही राष्ट्रीय आन्दोलन का राजनेतिक स्वरूप स्थापित हो सका। इसकी सहायता से भारतीय राष्ट्रवादी दल लोगों के बीच प्रतिनिधि सरकार, स्वतंत्रता, प्रजातंत्रीय संस्थायें, होमरूल, डोमोनियन स्टेटस, स्वाधीनता आदि विचारों का प्रचार–प्रसार हो सका जिनके जरिये वे ब्रिटिश सरकार और शासन की कार्यवाहियों की आलोचना कर सके तथा राजनैतिक समस्याओं की समझ व शिक्षा जन–जन तक पहुंचा सके।

राजनैतिक कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाने के लिए समाचार पत्रों को अब एक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाने लगा जिसके प्रयोग से जनसंगठनों की स्थापना कर सके क्योंकि प्रेस के बिना राष्ट्रीय संगठनों के इतने बड़े स्तर पर जन सहयोग नहीं मिल पाता। चूंकि समाचार पत्र राष्ट्रीय संघर्ष के लिए फायदे का था इसलिए राष्ट्रवादियों ने भारतीय राष्ट्रवादी प्रेस की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया।

भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण में समाचार पत्रों की महत्वता इस बात से भी स्पष्ट होती है कि भारतीय स्वतंत्रता में अपना बहुमूल्य सहयोग देने वाले राजा राममोहन राय, केशवचन्द सेन, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, ईश्वरचंद विद्यासागर, घोष बन्दु, जोगेन्द्रनाथ बोस, कृष्णकमल भट्टाचार्य, अरविन्दो घोष, बालगंगाधर तिलक, फीरोजशाह मेहता, एम.जी. राणाडे, गंगाप्रसाद वर्मा, राजा रामपाल सिंह, लाला लाजपत राय, पंचकोडि बनर्जी, जी. सुर्वमणियम अय्यर, सच्चिदानंद सिन्हा, विपिनचन्द्र पॉल, जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी आदि ने प्रेस को शक्तिशाली एवं प्रभावकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

प्रेस के कारण ही विभिन्न भागों में रहने वाले विभिन्न सामाजिक दलों के बीच तालमेल व विचार विमर्श संभव हो सका। प्रादेशिक आबादियों के बीच सामाजिक व मानसिक सम्बन्ध स्थापित हो सके। सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय सहयोग और प्रदेशिक कार्यक्रमों पर विचारों व तर्कों का आदान प्रदान हुआ जिससे संवेदनशील, जटिल, सांस्कृतिक समस्याओं से राष्ट्रीय अस्तित्व का रास्ता बनाया जा सका।

इसप्रकार भारतीय प्रेस ने राष्ट्रीयता के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसने भारतीयों को एक सूत्र में बांधकर और उन्हें कानून के संकुचित दायरे तथा सरकारी दमन के बावजूद इसने अभिव्यक्ति के नये–नये मार्ग ढूंढ़कर लोगों में राष्ट्रीय चेतना फैलायी तथा अन्याय से लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रेस आधुनिक भारत के राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण स्तम्भ बन गया है।

सन्दर्भ ग्रंथसूची

1. आर.सी. दत्त, "मेली द्वारा उदन्त"
2. भारतीय शिष्ट मण्डल का प्रतिवेदन
3. इंडियन लॉ रिपोर्ट
4. रामविलास शर्मा, "भारतेन्दु युग फोर हिन्दी भाषा की विकास परम्परा"
5. पुष्पा थरेजा, "भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना"
6. रामलखन शुक्ल, "आधुनिक भारत का इतिहास"
7. ए.आर. देसाई, "भरतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि"
8. वी.एल. ग्रोवर, अल्का मेहता, यशपाल "आधुनिक भारत का इतिहास"

भारत और चीन–एक सांस्कृतिक सम्बन्ध चीन में बौद्ध धर्म के प्रसार में प्राचीन भारत का योगदान

अंजू लता श्रीवास्तव*

विश्व की प्राचीन संस्कृति व सभ्यताओ की जन्मभूमि प्रधानतया एशिया ही रहा है। इस महाद्वीप की बड़ी नदियों के घाटियों में ही महत्वपूर्ण संस्कृतियों का उद्‌गम एवं विकास हुआ। इसमें भारतीय संस्कृति का एक अपना महत्व है। भौगोलिक दृष्टि से भारत वर्ष एशिया का एक ऐसा भू–भाग है, जो अपनी स्थिति के कारण पूर्व व पश्चिम को जो [redacted] वाली कड़ी के समान है। यदि विश्व में कोई ऐसा देश है, जहाँ सभ्यता एवं संस्कृति के सूर्य का उदय गगन मण्डल में सर्वप्रथम हुआ, जिसने अपनी संस्कृति एवं कलाओ से अन्धकार युक्त विश्व को आलोकित कर दिया, जिसके द्वारा सर्व धर्म समन्वय का प्रचार आदि काल से होता रहा है, जिसकी संस्कृति का यशगान करते हुए कभी विदेशियों को थकावट नही आती है तो वह पुण्य भूमि भारत ही है। [redacted] अपनी इस विशिष्ट भौगोलिक स्थिति तथा गौरवशाली भारतीय संस्कृति परम्परा के कारण भारत का अत्यंत प्राचीन काल से विदेशों से विशेष सम्पर्क रहा है। विश्व की अनेक संस्कृतियों समय के प्रवाह के साथ बह गई पर, भारतीय संस्कृति आज भी जीवित है। ऐतहासिक अनुसंधानों तथा प्राचीन साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि भारत ने आंशिक रूप से प्रभावित होते हुए, बड़ी मात्रा में विश्व के अनेक देशो को प्रभावित किया है। भारत का विदेशी राज्यों के साथ सम्बन्ध बनाने व प्रभाव डालने में भारतीय संस्कृति का विशेष योगदान है। भारत की सीमाओं को पारकर भारतीय विद्वान, निवासियों, और व्यापारियों ने भारतीय राजनौतिक सभ्यता, एवं संस्कृति के जिन देशो व प्रदेशो में फेलाया वह भारत का वृहत्तर रूप था। व्रहत्तर भारत से तात्पर्य भारत के उस विशाल भू खंड से है जहाँ भारत ने अपने उपनिवेश स्थापित कर भारतीय संस्कृति व् सभ्यता का विकास किया। इस वृहत्तर भारत के निर्माण को भारतीय संस्कृति की सांस्कृतिक विजय भी कहा जा सकता है। वृहत्तर भारत के देशो को दो भागो में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में मध्य एशिया, तिब्बत,व चीन है, तथा द्वितीय भाग में पूर्वी द्वीप समूह।

भारतीय संस्कृति का देश विदेश में प्रचार और प्रसार में मुख्यत दो कारणों का विशेष योगदान परिलक्षित होता है। (१) व्यापार के कारण (२) धर्म प्रचार के कारण। ईसा से कुछ शताब्दी पूर्व से ही भारतीय सुदूरवर्ती प्रदेशो में व्यापार के लिए जाने लगे थे। पूर्व के देश जावा, मलाया, सुमात्रा स्वर्ण खानों के स्वर्ण भूमि अथवा स्वर्ण द्वीप कहे जाते थे। स्वर्ण प्राप्त करने की लालसा के कारण भारतीय व्यापारी समुद्र पार कर इन देशो में व्यापार के निमित्त गये। वहाँ के निवासी भारतीयों के सम्पर्क में आये और भारतीय संस्कृति और सभ्यता को आत्मसात किया है। बौद्ध धर्म भारत की और से विदेशो के लिए एक अमूल्य भेट थी। भारत के भिक्षुओ और विद्वानों ने विदेशों में जाकर बौद्ध धर्म का संदेश सुनाया। उनके इस कार्य के

*शोध छात्रा कन्या गुरुकुल परिसर, देहरादून गुरुकुल कांगरी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

परिणाम स्वरूप विदेशी बौद्ध तथा यात्री धर्म ज्ञान और विद्या प्राप्ति के लिए भारत आने लगे। प्रस्तुत शोधपत्र में प्राचीन चीन में बौद्ध धर्म के प्रसार में प्राचीन भारत के योगदान का प्राप्त तथ्यों के आधार पर विवेचन किया जायगा ।

छठवी शताब्दी ईसा पूर्व का युग का विश्व में बोद्दिक क्रांति का युग था। गौतम बुद्ध ने एक नये धर्म को स्थापित किया, जिसे समस्त विश्व ने बौद्ध धर्म के रूप में जाना। बौद्ध धर्म की शिक्षाए उसके चार आर्य सत्य और आठ मार्गों में समाहित है। उनकी इन्ही शिक्षाओं ने विश्व को मानवता और सत्य का मार्ग दिखलाया। यही कारण है कि प्राचीन भारत के धर्म प्रचारको की स्मृति के साथ ही आखों के समक्ष बुद्ध का चित्र सामने आ जाता है। जो बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना के साथ दुखियो को दुःख मुक्त, भयभीतो को भय मुक्त शोकाकुलो को शोक मुक्त करते रहे।[2]

भारत व चीन के सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। बौद्ध धर्म का प्रवेश चीन में कब हुआ यह निश्चय पूर्वक कहना कठिन हैं। भारत व चीन के मध्य बहुत पहले व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। आर्थिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में चिरकाल से इन दोनों देशो में सम्बन्ध रहा है। प्राचीन काल में यह सम्बन्ध मुख्यतः व्यापारिक था यह व्यापार जल व स्थल दोनों मार्गों से होता था। चीन से रेशमी वस्त्र भारत आता था। पेरिप्लस के अनुसार चीनी रेशम का व्यापार भारतीय व्यापारियों के हाथ में था। महाभारत और मनुस्मृति में चीन का उल्लेख है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में चीन पट्ट (चीन के रेशम से निर्मित वस्त्र) के विषय में बताया है। कालिदास ने भी "चीनी रेशमी वस्त्र "(चीनाशंकु) का उल्लेख किया है। महावस्तु ग्रन्थ में भी चीन देश का उल्लेख मिलता है, चीनी शेली का भी वर्णन मिलता है। इसके साथ यह ग्रन्थ चीनी लिपि से भी परिचित है। ईस्वी पूर्व दूसरी शदी में एक चीनी सिक्का मैसूर में मिला। जो वाणिज्य एवं व्यापार सम्बन्ध की पुष्टि करता है पांचवी और छटवी शताब्दी व्यापारियों की भी बौद्ध धर्म के प्रसार में विशेष भूमिका रही। रेशम मार्ग व्यापारिक व सांस्कृतिक मार्गों का एक समूह था। रेशम मार्ग का प्रभाव व्यापार के अलावा ज्ञान धर्म संस्कृति भाषा विचारधारा पर भी पड़ा। व्यापारिक सर्म्पकों के अतिरिक्त विदेशो में भारतीय चिन्तन एवं विचारो का भी प्रसार व प्रचार हुआ। शीघ्र ही व्यापार का स्थान धर्म प्रचार ने ले लिया। संस्क्रति और सभ्यता के प्रसार और प्रचार की इस प्रक्रिया में बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत का अन्य देशो के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में व्यापारियों और बौद्ध धर्म ने एक क[redacted]का काम व्यापार के साथ ही सांसतिक सम्बन्ध भी शुरू हुए ।

भारत का उत्तर एवं उत्तरपूर्व से जो सम्बन्ध रहा है वह व्यापार की अपेक्षा सांस्कृतिक अधिक रहा है भारत व चीन के सांस्कृतिक सम्बन्धो का आधार बौद्ध धर्म हैं। इन सम्बन्धो के साथ ही चीन बौद्ध धर्म से अत्यधिक प्रभावित हुआ। भारत और उसके विविध उपनिवेशों से बहुत बौद्ध क्षमण और भिक्षु समय–समय पर चीन जाते रहे और वहाँ पर बौद्ध धर्म से निवासियों को दीक्षित करने में सफलता प्राप्त की। चीन में यह धर्म मध्य एशिया के द्वारा पहुँचा। चीनी परम्परा के अनुसार ई० पु० दूसरी शती के उतरार्द्ध में १८ भारतीय भिक्षु

मण्डल चीन गया था। ई० पु० दूसरी शती में ही यू ची बौद्ध ग्रंथो को चीनी सम्राट के समक्ष प्रस्तुत किया । धीरे –धीरे चीन में बौद्ध धर्म फैलता गया ।

चीन के धार्मिक जगत में यह प्रसिद्ध है कि हान शासक मिग–ती (५८–७३ ई०) ने स्वप्न में यह देखा था कि एक व्यक्ति जो सूर्य के समान प्रभापूर्ण था, उ[redacted] हुआ आया और राजभवन में प्रवेश किया। स्वप्न विशारदो से प्रश्न करने पर उन्होंने बताया कि यह भारत का एक धर्म पुरुष है जो चीन में ज्ञान प्रकाश करेगा । चीनी सम्राट मिग –ती ने इस कार्य के लिए (बौद्ध विद्वानों व बौद्ध ग्रंथो को लेन हेतु) एक दूत मण्डल भारत भेजा। दो वर्षो के अथक प्रयास के बाद वे दो भिक्षुओ और अनेक बौद्ध ग्रंथो के साथ ६४ ई ० में चीन वापस लौटे। [redacted]उन बौद्ध भिक्षो का सम्राट ने भव्य स्वागत किया। सम्राट के आदेश पर एक विहार का निर्माण कराया गया जिसका नाम "श्वेताश्व विहार "रखा गया। [redacted]ईसा की प्रथम शताब्दी में निश्चित रूप से चीन में भारतीय धर्म प्रचारको द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार का कार्य प्रारम्भ हो गया।

काश्यप मातंग पहले बौद्ध भिक्षु थे जो बुद्ध के पावन संदेश को लेकर चीन गये। वे प्राय ज्ञान की प्रतेयक धारा में पारंगत थे बौद्ध धर्म में उनकी विशेष रूचि थी श्वेताश्व विहार को केंद्र बनाकर काश्यप मातंग ने चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उनके साथ उनके सहयोगी धर्मरत्न भी गये[redacted]। चीन पहुच कर इन्होने बौद्ध ग्रन्थो का चीनी में अनुवाद किया और बौद्ध धर्म के सिद्धांतो को आकर्षक रूप से प्रस्तुत धर्म का प्रसार किया। काश्यप मातंग ने बौद्ध धर्म के ४२ ग्रंथो का चीनी अनुवाद किया जिन्हें सूत्र कहा जाता है। ये आजकल भी लोकप्रिय है।[redacted] ये अनुवाद पालि त्रिपिटिक के है।[redacted] डॉ. बनर्जी इसे बौद्ध धर्म की प्रश्नोतरी मानते है। जिसे विदेशो में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए बनाया गया था।[redacted] जिस अनुवाद का शुभारम्भ भिक्षु काश्यप मातंग ने चीन में किया वह बराबर चलता रहा और तृतीय शताब्दी तक लगभग ३७५ बौद्ध ग्रंथो का चीनी में अनुवाद हो चुका था। [redacted]राहुल जी के कथनानुसार "चीन में बौद्ध धर्म के प्रचारक के रूप में काश्यप मातंग प्रथम थे"[21]

इन धर्म प्रचारकों, की सफलता से प्रोत्साहन पाकर भारत ही नही मध्य एशिया से भी अनेक विद्वान चीन गये। काश्यप मातंग और धर्म रत्न के बाद बौद्ध क्षमण और भिक्षु निरंतर चीन जाते रहे। [redacted]२१४ ई० तक चीन में लगभग ३५० ग्रंथो का चीनी भाषा में अनूवाद हो चूका था। ३ शती में चीन में बौद्ध धर्म के प्रसार की गति अति तीव्र हो गई थी। चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार का कार्य विद्वानों, भिक्षुओ, धर्माचार्यो के अतिरिक्त राजकुमारों ने भी किया।

चीन में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का प्रधान कारण धर्म प्रचारको का उत्साह था। ये प्रचारक भारत के विभिन्न भागो से चीन पहुचे। कश्मीर में प्रसिद्ध बौद्ध मठ था। जहाँ से संगभूति, धर्मयशस, बुद्धयशस, बुद्धजीव, धर्ममित्र, आदि विद्वान चीन गये।[redacted] इन सभी के प्रयासों के परिणाम बौद्ध धर्म चीन का अत्यंत लोकप्रिय धर्म बन गया ।

कश्मीर के समान भारत के अन्य प्रदेशो से भी बहुत से विद्वान और भिक्षु धर्म प्रचार के प्रयोजन से चीन गये थे। बिहार से पंजाब तक सारे उत्तरी भारत को चीनी साहित्य में" मध्यदेश" कहा गया है इस मध्य प्रदेश से जो भारतीय सबसे पूर्व चीन गये, उनका नाम धर्म क्षेम था। इन्होने बहुत से ग्रंथो का चीनी भाषा में अनुवाद किया। ज्ञान भद्र, जिनयश और यशोगुप्त बंगाल के निवासी थे। और छठी सदी के उत्तरार्ध में ये तीनो आचार्य बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए चीन गये। आचार्य गोतम प्रज्ञारूचि वाराणसी के निवासी थे।

कश्मीर के समान गान्धार भी प्राचीन काल में बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केंद्र था। यहाँ से जो विद्वान चीन में धर्म का प्रचार के लिए गये उनमे बुद्धभद्र, विमोक्षसेन, और जिनगुप्त के नाम उल्लेखनीय है।

चोथी शताब्दी में चीन में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हुआ और वह चीन का प्रमुख धर्म बन गया। इसी समय चीनी लोगो ने बौद्ध भिक्षु बनने के लिए चीनी सम्राट से अनुज्ञा प्राप्त की बौद्ध ग्रंथो का शीघ्रता से अनुवाद किया गया। अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण हुआ। चीन के सम्राटो ने बौद्ध विहारों, चैत्यो और मूर्तियों का निर्माण करा कर तथा पुस्तकालयों और बौद्ध विद्यालयों की स्थापना करके बौद्ध धर्म को निसन्देह आगे बढाया।

बौद्ध धर्म की सरलता एवं व्यावहारिकता से प्रभावित होकर अनेक चीनी यात्रियो ने बोद्ध ग्रंथो की प्रतिया लेने तथा पवित्र बौद्ध स्थानों के दर्शनार्थ भारत की यात्रा की।

चीन में बौद्ध धर्म व साहित्य के साथ ही बौद्धकला का भी पर्याप्त विकास व प्रचार हुआ। भारतीय बौद्ध मूर्ति एवं स्थापत्य कला ने चीन की स्थानीय कला को प्रभावित किया। यहाँ भी भारत के सदृश्य पवर्तीय चट्टानों को कटकर गुहा विहार व मुर्तिया बनाई गई। चीन के तुनहांग पर्वत मालाओं को काटकर ऐसे अनेक गुहा विहार बनाये गये ये गुहा विहार ६११ मीटर तक फैले है जो अजन्ता एलोरा की याद दिलाते है। चीन में बौद्ध मन्दिरों के स्थान पर बौद्ध पगोडा निर्मित हुए। इन पगोडा में प्राप्त मुर्तिया बौद्ध मुर्तिया के समान है। चीन में तांग वंश के राजत्व काल में बौद्ध धर्म का स्वर्ण युग था भारतीय गांधार कला का प्रभाव चीन की कला पर पडा।

भारत के बाहर जहाँ–जहाँ बुद्ध का नाम, और उनका जीवन दर्शन (दुखी मानव को दुखो से मुक्त करना) तथा उनका सरल आचार मार्ग और धर्म का मध्यम मार्ग (धर्म) पहुंचा। वहाँ का लोगो को के हृदय में बुद्ध भूमि को देखने की उत्कंठा उत्पन्न हुई। चीनियों ने बौद्ध धर्म के अध्ययन और उसके तत्वों के ज्ञान हेतु स्थल व जल मार्गो से कठिन कष्टों को सहते हुए बौद्ध भूमि भारत की यात्रा की। इन धर्म जिज्ञासु चीनी यात्रियों ने पालि व संस्त भाषा का अध्ययन कर बौद्ध ज्ञान के तत्वों को परखने का अकथनीय प्रयास किया। उन्होंने यहाँ भारतीय आचार–विचारो का निरीक्षण किया और बौद्ध धर्म व साहित्य का अध्ययन कर गम्भीर ज्ञान और हस्तलिपियों का संग्रह आदि साथ ले गये। इन चीनी यात्रियों में फाहियान ,हुएनसांग, इतिसंग आदि प्रमुख है ।

चीन से भारत की यात्रा करने वाला प्रथम यात्री फाहियान था। ३९९ ई० में फाहियान ने भारत के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने भारत के अनेक विहारों में निवास कर बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। फाहियान का यात्रा क्षेत्र बहुत विस्त्रत था। ४१४ ई० में वह अपनी यात्रा को समाप्त कर सकुशल चीन पहुच गया। फाहियान को अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफलता प्राप्त हुई। भारत आकर यहा से विनय ग्रंथो को चीन ले जाने का निश्चय किया भारत में रहकर उसने संस्त भाषा का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया और उसमे इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि विनय पिटिक जैसे अनेक ग्रंथो का चीनी भाषा में अनुवाद कर सका। अपनी यात्रा में उसका ध्यान केवल बौद्ध धर्म के अध्ययन की ओर रहा। स्वदेश पहुंचने पर सम्राट व प्रजा दोनों ने उसका सम्मानपूर्वक स्वागत किया। उसने अपना शेष जीवन चीन के बौद्ध विहारों में विनय पिटिक का प्रचार करने में बिताया। ८६ वर्ष की आयु में उसका देहावसान हुआ ६१८ ई० में चीन में तांग वंश प्राम्भ हुआ। बौद्ध धर्म में इनकी रूचि थी। भारत और चीन के पारस्परिक सम्बन्धो में इस काल में और भी अधिक वृद्धि हुई। चीन के नगरो में बहुत से भारतीय भिक्षु और व्यापारी निवास करने लगे। इस काल में नालंदा भारत का सबसे प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था। बहुत से चीनी विद्यार्थी धर्म और ज्ञान की प्राप्ति के लिए नालंदा आये। इसलिए सातवी सदी में जहाँ अनेक चीनी भिक्षु व्यक्तिगत रूप से भारत की यात्रा कर रहे थे, उनको सम्राट का समर्थन व सहायता मिली। तांग वंश के शासनकाल में जो चीनी यात्री भारत आये ,हुएनसांग का उनमे सर्वोच्च स्थान है।, हुएनसांग चीनी बौद्ध यात्री था। जिसने अपने जीवन के पन्द्रह वर्ष भारत में बौद्ध धर्म के अध्ययन तथा बौद्ध तीर्थो को देखने और समझने में बिताये। ६३७ ई० में वह नालंदा विश्वविद्यालय पहुचा जहाँ रह के उसने शिक्षा ग्रहण की। हुएनसांग ने अपना यात्रा विवरण चीनी भाषा में लिखा था। जिसका नाम सि–यू–की है। जिसका अनुवाद जुलियस जी ने किया। जुलियस को इस अनुवाद कार्य के लिए २० वर्ष चीनी और संस्त भाषा का अध्ययन करना पड़ा हुएनसांग भारत में धर्म ज्ञान की खोज में आया था। ये धर्मरत्न ग्रंथो में भरा हुआ था भारत में धूम धूम कर दुर्लभ धर्म शास्त्रों को एकत्र किया, जिनको वह अपने साथ चीन ले गया चीन वापस पहुचने पर उसका भव्य स्वागत हुआ सम्राट ने उसे स्वयं दान देकर सम्मानित किया ।

सातवी सदी के उत्तरार्ध में भारत आने वाला दूसरा प्रसिद्ध चीनी यात्रीइत्सिंग था। बाल्यावस्था से ही वह भारत यात्रा का इच्छुक था। चीनी बौद्ध यात्रियों और धर्म प्रचारको में फाहियान और, हुएनसांग के समान इत्सिंग का नाम भी सम्मान पूर्वक लिया जाता है। नालंदा में वह दस वर्ष रह कर उसने बौद्ध धर्म का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया और उस पर एक ग्रन्थ भी लिखा। चीन वापस जाते समयग्रन्थ ४०० के लगभग ग्रन्थ वह अपने साथ ले गया। चीन में रहकर उसने अनेक ग्रंथो का चीनी भाषा में अनुवाद किया, वहाँ साथ ही संस्कृत–चीनी शब्द कोष भी लिखा।

भारत चीन के सांस्कृतिक सम्बन्धो के फलस्वरूप चीनवासियों के जीवन पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। चीन में भारतीय प्रभाव को फैलाने में

प्रमुख रूप से बौद्ध धर्म का योगदान था। इसके कारण भारत और चीन दोनों देश एक दुसरे के करीब आये भारत की बौद्ध मिशनरिया ने दोनों देशो में सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाने में सक्रिय भूमिका निभाई। बौद्ध धर्म की अहिंसा, दया, करुणा, विनय आदि ने चीनवासियो के जीवन में विलक्षण परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। बौद्ध सम्पर्क से चीन में मूर्ति पूजा, मन्दिर निर्माण भिक्षु जीवन आदि का आरम्भ हुआ। अनेक विद्वानों ने बौद्ध ग्रंथो का चीनी भाषा में अनुवाद करके चीनी साहित्य की वृद्धि की। इस प्रकार चीन में बौद्ध धर्म ने अपनी विशिष्टताओ के कारण प्रभाव डाला। और वहाँ के शासको के मन को ही नही अपूति जनसामान्य को भी प्रभावित किया। इसमें कोई संदेह नही है कि यह सदधर्म प्रचार भारत व् चीन के उन बौद्ध भिक्षुओ के त्याग और साहस का परिणाम था जो सर्व क्षणिक का संकल्प लेकर बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय के लिए सघन बनो, दुर्गम पर्वतों, नदियों, और मरुस्थलो को पार कर चीन को पहुचे थे। आज इर्ष्या वश संसार के बड़े बड़े राष्ट्र एक दुसरे राष्ट्र को ही नही वरन विश्व युद्ध कर मानव मात्र के अस्तित्व को नष्ट कर देने के लिए हो लगा रहे है ऐसे समय बुद्ध का करुणा और मैत्री का संदेश ही उसे विनाश लीला से बचा सकता है।

संदर्भ सूची

1. उपाध्याय राम जी — भारतीय संस्कृति का उत्थान पे १०
2. डा यमुना लाल — भारत और विदेशो में बौद्ध धर्म प्रसारक पे २०८
3. महाभारत — सभा पर्व
4. कौटिल्य — अर्थ शास्त्र २.११
5. कालिदास — अभिज्ञानशाकुन्तल १/३२
6. महावस्तु — भाग १–१७१–१४
7. महावस्तु — भाग १–१७१–१४
8. वैद्य ,पी0एल — ललित विस्तार,पे८८–[redacted]
8. अमल नंदा — एन इन्सैक्लोपिदिया ऑ[redacted]डियन आर्कियोलोजि पेज ६७
10. मुकर्जी राधा कुमुद — एन्श्येंट एजुकेशन पे ५५५
11. डा यमुना लाल — भारत और विदेशो में बौद्ध धर्म प्रसारक पे २०८
12. विद्यालंकार सत्य केतु — मध्य ,एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति पे १६२
12. बनर्जी अनुकूल चन्द्र — स्टडी इन चाइनीज बुद्दिज्म पे ८
13. तदेव
15. साकृत्यायन राहुल — बौद्द संस्कृति पे२७६
16. दास शरत चन्द्र — इंडियन पंडितस इन द लैंड आफ स्नो पे ४६ व् आ•
17. इलियट ,सर चालर्स — हिदुज्म एंड बुद्धिज्म भाग ३ 'पे ८८)

18. तदेव
19. बनर्जी अनुकूल चन्द्र स्टडी इन चाइनीज बुद्धिज्म पे ६—१०
20. इलियट, सर चालर्स हिदुज्म एंड बुद्धिज्म पे २४८
21. साकृत्यायन राहुल बौद्ध संस्कृति पे ३०१
22. बनर्जी अनुकूल चन्द्र स्टडी इन चाइनीज बुद्धिज्म पे ८
23. विद्यालंकार सत्य केतु मध्य, एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति
24. साकृत्यायन राहुल बौद्ध संस्क्रति पे ३१२
25. विद्यालंकार सत्य केतु मध्य, एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति
26. तदेव
27. मुकर्जी राधा कुमुद एन्शेंट इंडिया पर ४८०
28. डॉ. यमुना लाल भारत और विदेशो में बौद्ध धर्म प्रसारक पे २०६
29. बनर्जी अनुकूल चन्द्र स्टडी इन चाइनीज बुद्धिज्म पे ११)
30. इलियट, सर चालर्स हिदुज्म एंड बुद्धिज्म भाग ३ पे २५३
31. विद्यालंकार सत्य केतु मध्य, एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति पे १८४
32. साकृत्यायन राहुल बौद्ध संस्कृति पे ३००
33. मुकर्जी राधा कुमुद एन्श्येंट एजुकेशन
34. साकृत्यायन राहुल बौद्ध संस्क्रति पे ३०१
35. विद्यालंकार सत्य केतु मध्य, एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति पे १८१
36. विद्यालंकार सत्य केतु मध्य, एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति पे १८८
37. कनिधम एन्शेंट ज्याग्राफीआफ इंडिया पे ४
38. डा यमुना लाल भारत और विदेशो में बौद्ध धर्म प्रसारक पे१५६
39. बील सेमुअल चाइनीज एकाउंट आफ इंडिया भाग १, ६—७
40. विद्यालंकार सत्य केतु मध्य ,एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति

हिमालय के वरदपुत्र डॉ. गोविन्द चातक द्वारा रचित लोक साहित्य

डॉ. राखी उपाध्याय*

डॉ. गोविन्द चातक का समाज और साहित्य के प्रति विशद योगदान रहा है। चातक जी ने जटिल परिस्थिति से संघर्ष करते हुए साहित्य की विभिन्न विधाओं में शोध–चिन्तन, लोककथा, नाटक आदि अनेक क्षेत्रों में कार्य किया है, जो हमारी वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए ज्ञान और प्रेरणा का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। चातक जी उत्तराखण्ड के अन्तर्गत गढ़वाल क्षेत्र के उन कतिपय हिंदी विद्वान मनीषियों और साहित्यकारों में हैं जिन्होंने साहित्य को आस्था का आश्रय और जीवन धर्म के रूप में स्वीकार कर उसे अपनी सारस्वत यात्रा का सम्बल बनाया है। उन्होंने साहित्य सृजन और लेखन को मनोविनोद अथवा समय व्यतीत करने की विद्या न मानकर हिंदी साहित्य को वृहद् क्षेत्र में स्थान दिलाने का उत्कृष्ट प्रयास है, जिसके निमित्त इन्हें अनेकों बार पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है।

डॉ. चातक के लेखन और सृजन का आधार गढ़वाल के लोक जीवन और साहित्य संस्कृति पर आधारित रहा है। आपने पहली बार गढ़वाली बोली की एक उपबोली रवांल्टी उपबोली पर भाषा शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत कर आगरा विश्वविद्यालय सी पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1955 से पूर्व से ही देहरादून में रहते हुए अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी गढ़वाली लोक साहित्य पर काम आरंभ किया।

डॉ. गोविन्द चातक ने अपनी जमीन से जुड़कर लोक जीवन और संस्कृति को सामीप्य की साधना की है, जो उनके लोकगीत और भाषा संबंधी कार्य में रूपायित हुआ है। गढ़वाल के लोकगीत लोक के विविध स्त्रोतों से स्फुटित होते हैं और उनमें लोक में जीये जाने वाली समस्त जीवन का प्रवाह होता है। इसलिए उनमें धर्म, पुराण, इतिहास, साहित्य संस्कृति सभी कुछ समाहित होते हैं। डॉ. चातक का मध्य पहाड़ी संबंधी अध्ययन, नाट्य भाषा तथा संवाद रचना गढ़वाली लोक जीवन से जुड़े हुए हैं। डॉ. चातक का अनुभव बताता है कि सभ्यता के भौतिक आयाम कई बार मनुष्य की उन अनुभूतियों को बिखेर देते हैं जिनमें काव्य या लोकगीतों का उद्भव होता है। लोकगीतों का संकलन कर संस्कृति कर्मी के रूप में पहचान बनाने वाले डॉ0 चातक कहते हैं कि "लोकगीत बादलों की तरह झरते हैं, और घास की तरह उपजते हैं। लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे लोग की सहज अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं।"

डॉ. चातक के लोक साहित्य चिन्तन में एक पीड़ा है। उस पीड़ा की आज तक कोई औषधि नहीं मिली है। उनके विचार में गीत एक केवल गीत नहीं, अपितु पीड़ा, अभाव, गरीबी, शोषण, प्रेम, विरह, आशा और आकांक्षा के प्रतिमान हैं। एक अकेला गीत सैंकड़ों अभिव्यक्तियाँ देता है। हिंदी के लोक कथाओं को लेकर नाट्य लेखने के प्रयोग कुछ ही

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखण्ड

लोगों ने किए हैं, जिनमें स्वनामधन्य डॉ. गोविन्द चातक सर्वोपरि हैं। 'गढ़कला सांस्कृतिक संस्थान पौड़ी' द्वारा गढ़वाल का गौरव को बढ़ाने के लिए वर्श 2000 में 'गढ़वाल शिरोमणि' सम्मान से आपको सम्मानित किया गया।

डॉ. गोविन्द चातक उत्तराखण्ड में लोकवार्ता, लोक साहित्य के जनक हैं। वह पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने लोकगीत, भाषाओं, कथाओं और प्रकीर्ण साहित्य के साथ–साथ लोक बोली भाषा पर गढ़वाली में लिखित काम किया है और वह प्रकाशित भी हुआ है। उनकी यह विशिष्टता है कि उन्होंने ऐसे समय में गढ़वाल को लोक साहित्य का दमन थामा, जब लोग लोकगीत गाना या लोकनृत्य आदि की बात करना हेय ही नहीं बल्कि अपमानजनक मानते थे। इसे उस समय हुड़कियों, औजियों और पेशेवर गायकों की निशानी माना जाता था। जातिवाद के कुप्रथा के अभिशाप से समाज पीड़ित था। राष्ट्रीय स्तर पर भी लोक साहित्य के गिने–चुने लोग ही जुड़े होते थे। यह न ही आर्थिक दृष्टि से लाभकर था न जीवन कृति की अथवा रोजगार की दृष्टि से। लोग इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे।"

डॉ. गोविन्द चातक ने न केवल लोक मंगल के लिए लोक साहित्य को अपना विषय बनाया, बल्कि इन्होंने तो अंधविश्वासों के बीच एक नई लोक चेतना और लोक संस्कृति की ओर दिशा संकेत किया है। आपको लोक साहित्य की ऐसी प्यास लगी कि अपना नाम 'चातक' रख लिया। हिमालय के गीत, शिव या महादेव की महिमा, पार्वती की शक्ति, जीतू और तीलू रौतेला की गाथा तथा रामोला, भाईयों के गीत भाने लगे। जब आपने सैनिक को देखा तो 'अब चालिगे के सरू ठम–ठम बौं', 'दाथुडिड़ छुड़का का बाजा छुणका बजौ', कमर दातुल जब भी दगड़ लीजा' जैसा पंक्तियाँ याद आईं। 'गंगा जी को ठंडू पाणी, छमट् यौन पीजी', 'ताछुमा–ताछुमा दरि', 'आज पनुबां नाचिला', 'हमरै गौं का बीच माँ' जैसी पंक्तियाँ रिझाने लगी खुदेड़ गीत ह्रदय को द्रवित करने लगे। झुमैलो, बाजूबन्द अच्छे लगने लगे।

डॉ. चातक के जिस स्तरीय रूप में गढ़वाल लोक गीतों में गढ़वाल के जीवन और वहाँ के लोक साहित्य, संस्कृति तथा लोक मानस का अध्ययन, मनन और चिन्तन कर उसका अन्वेषण गवेषण, विवेचन और मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। वह अपने आप में मील का पत्थर है और भावी शोधकर्त्ताओं, अध्येताओं एवं पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक भी है। डॉ. चातक ने अपने जीवन में कभी प्रशंसा या पुरस्कार पाने की चिन्ता नहीं की अपितु गढ़वाल को ह्रदय से प्यार किया है। गढ़वाली लोक साहित्य के लिए आप सितारों से भरे साहित्याकाश में 'लग्न तारे' के रूप में अपना अनुपम महत्त्व एवं स्थान रखते हैं।

डॉ. गोविन्द चातक ने गढ़वाल की बोली भाषा, गढ़वाल के जन–जीवन वहाँ के लोक मानस वहाँ की सभ्यता और संस्कृति, वहाँ का जीवन दर्शन, वहाँ की भक्ति और धार्मिक चेतना, वहाँ की आध्यात्मिक परम्परा सभी को अपने कृतित्व में समेटकर, सहेजकर उसे भविष्य के लिए सुरक्षित रखने का अद्भुत, स्तुत्य एवं प्रशंसनीय सेवा की है। उनकी सेवा बुरांश के फूल की भाँति सुगन्धित है। हर क्षेत्र की अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है। विशिष्ट संस्कृति और प्रथा परम्परा होती है, उनमें उस क्षेत्र विशेष की अस्मिता के दर्शन होते हैं। गढ़वाल की भी अपनी पहचान और अपनी संस्कृति है।

डॉ. गोविन्द चातक ने लगभग 22 से अधिक पुस्तकें लिखकर हिंदी जगत को समृद्ध किया है। पहाड़ी जन–जीवन से संबंधित उनका कहानी संग्रह 'लकड़ी और पेड़' है। उन्होंने लोक साहित्य के साथ–साथ आलोचना और विशेष रूप से नाटक और रंगमंच को एक नई दिशा दी है। उनके द्वारा रचित कृतियाँ अपने आप में अनूठी हैं जो निम्नवत् द्रष्टव्य हैं–

(क) ललित निबन्ध – गद्य के क्षेत्र में डॉ. चातक ने ललित निबन्ध में रूप में 'क्या गोरी क्या सौड़ी' लिखा जिसमें कहावतों को बद्ध करके एक अद्‌भुत प्रयोग किया चातक जी ने जब अपना निबन्ध सहारनपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका को भेजा तो उसे देखकर सम्पादक श्री कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर ने एक पत्र लेखक को लिखा था" कहावतों को लेकर ऐसा निबन्ध रचना तुमने किससे सीखा है।

सत्य यह है कि निबन्ध लेखक के अपने कौशल के परिचायक हैं। इसी पुस्तक की भूमिका में श्री दामोदार थपलियाल ने लिखा है– "गोविन्द चातक भारतीय लोक साहित्य के उद्‌गाता हैं। उसके बोलों में धरती बोलती है, जन मानस मुस्कराता है और कल्पना संबल पाकर उड़ती है। प्रस्तुत चयन जीवन का सूक्त है, जिसमें प्राणों का स्पन्दन, वाणी की गति, और ईमानदारी का उद्‌घोष है।"

इनकी भाषा में लालित्य, प्रवाह ओर एक सूत्रता है। इनके 'क्या गोर क्या सौड़ी', 'करवी धाम करबी छैल', 'अपणों और परायों', 'काम' आदि नौ ललित निबन्ध हैं, जो सभी कहावतों को श्रृंखलाबद्ध कर लौकिक उक्तियों और व्यंग्य तथा विवके को एक साथ समाहित करते हुए मिलते हैं।

(ख) लोक गाथा एवं लोक गीत – डॉ0 चातक ने सर्वप्रथम सन् 1958 में 'गढ़वाली लोक गाथाएँ' नामक पुस्तक लिखकर लेखन जगत में प्रवेश किया। इसके पश्चात् 'मध्य पहाड़ी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन प्रकाशकित हुआ। इसके बाद डॉ. चातक ने लेखन के क्षेत्र में कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। सन् 1968 में 'गढ़वाली गीत : एक सांस्कृतिक अध्ययन' का प्रकाशन हुआ। डॉ. गोविन्द चातक ने जीवन को करीब से देखा, भोगा, संघर्ष के थपेड़े खाकर आगे बढ़े और और काफी वर्षों तक गढ़वाली लोक साहित्य के संकलन में लगे रहे। उसी का फल है कि पहाड़ों में लोकगीत एवं लोक कथाओं का संगम गढ़वाली संस्कृति को चमत्कृत कर रहा है।

(ग) नाटक – डॉ. चातक ने लोक कथाओं के आधार पर नाटक लिखकर एक अभिनव प्रयोग किया है। यद्यपि नाटक एक कठिन विधा है परन्तु नाटक की शक्ति उसके गठन या बुनावट में होती है। उसी से नाट्य रूप निर्मित होता है और उसी से रंगीय तत्त्व भी गर्भित होता है। डॉ. चातक के अधिकांश नाटक पारिवारिक परिवेश से शुरु होते हैं अर्थात् उनके नाटकों में परिवार का स्वरूप अवश्य होता है। सब में अपने–अपने ढंग से परिवार के विघटन की प्रक्रिया है। इनमें पुरुष का अहं कहीं चोट करता है, कहीं आहत होता है और कहीं उसकी कमी ही शोषण का कारण बनती है। साथ ही आपके नाटकों में गाँव का जीवन, वन–उपवन,

वृक्ष–लताएँ, फूल, पशु–पक्षी, भेड़–बकरियाँ चराते मुरली के स्वर में अपने को भुलाते चरवाहे, एकांत में खुदेड़, प्रणय, झुमैलो, गीतों में अपनी कारूणिक गाथा गाती युवतियाँ और समाज के निम्न वर्ग की दुर्गति मुख्यतः अपने लिए जगह बना ही लेती है।

नाट्य लेखन के क्षेत्र में सन् 1977 में इनका पहला नाटक 'केकड़े' प्रकाशित हुआ। उसके बाद एक–एक करके 'काला मुँह' (1978), 'दूर का आकाश' (1984), 'बाँसुरी बजती रही' (1987), 'अंधेरी रात का सफर' (1991) जैसे पाँच नाटक लिखे। जिनका सफल मंचन कई–कई बार हुआ। जिनको दर्शकों ने खूब सराहा।

(घ) कहानी संग्रह – सन् 1977 में 'लकड़ी और पेड़' कहानी संग्रह पर्वतीय जीवन को केन्द्र में रखकर लिख गया। इसके बाद चातक जी का रुझान कहानी लेखन के प्रति नहीं रहा क्योंकि उनका प्रिय विषय नाटक था।

(ङ) अन्य साहित्यिक कृतियाँ – डॉ. चातक ने सन् 1981 में 'नाट्य भाषा', सन् 1982 में 'आधुनिक हिंदी नाटक : भाषिक और संवादीय रचना' और सन् 1994 में 'नाटक की साहित्यिक संरचना' नामक पुस्तक लिखी। तदुपरान्त आपकी रूचि पर्यावरण की ओर मुखरित हुई और 'पर्यावरण और संस्कृति संकट' (1991), 'संस्कृति समस्या और संभावना' (1994), 'पर्यावरण परम्परा और अपसंस्कृति (2000) प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त प्रसाद के नाटक 'स्वरूप और संरचना', 'प्रसाद के नाटक : सृजनात्मक धरातल और भाषिक चेतना', 'नाटककार जगदीश चन्द्र माथुर', 'आधुनिक हिंदी नाटक का मसीहा मोहन राकेश', रंगमंचकला और दृष्टि', 'आधुनिक हिंदी नाटक का मसीहा मोहन राकेश 'रंगमंच कला और दृष्टि', 'आधुनिक हिंदी नाटक', 'नाट्य भाषा', 'नाटक की साहित्यिक संरचना' आदि महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ सृजित की हैं।

डॉ. चातक की रचना 'काला मुँह' और 'दूर का आकाश' को उत्तर प्रदेश की हिन्दी संस्थान द्वारा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, "बाँसुरी बजती रही' को साहित्य कला परिषद् दिल्ली, 'भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ– मध्य हिमालय' को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा रामनरेश त्रिपाठी पुरस्कार 'पर्यावरण और संस्कृति संकट' को पर्यावरण विभाग, भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है।

इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय नाटक लेखन प्रतियोगिता में सर्वोत्तम नाटक का सम्मान तथा गढ़कला संस्कृति संस्थान, पौड़ी द्वारा वर्ष 2000 में "गढ़कला शिरोमणि", सम्मान से सम्मानित किया गया।"

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि डॉ. चातक ने समय की धारा की ओर उन्मुख न होकर धारा के विपरीत चलने का साहस दिखाया और भविष्य की चिन्ता न करते हुए लोक साहित्य के संकलन एवं लोक परम्परा को अक्षुण बनाये रखने के लिए साहित्य के क्षेत्र में अप्रतिम योगदान दिया। उन्होंने लोक साहित्य पर शोध उसका संकलन और मूल्यांकन कर लोक जीवन में उसकी महत्ता, उपयोगिता को बताते हुए सांस्कृतिक पक्ष को उजागर किया।

उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि, साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्त्व और लिखित साहित्य के लिए उनमें विद्यमान लोक तत्त्वों की महत्ता को जन सामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया। गढ़वाली लोक साहित्य के उन्नयन हेतु डॉ. चातक ने अपना यथा संभव योगदान दिया।

सन्दर्भ

1. गढ़वाली – लोकगीत विविधा, डॉ. गोविन्द चातक, पृ.सं.– 07
2. गढ़वाली लोक गीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गोविन्द चातक, आमुख, पृ.सं.– 11
3. उत्तराखण्ड की लोक कथाएँ– डॉ. गोविन्द चातक, भूमिका, पृ.सं.– 11
4. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ, मध्य हिमालय, डॉ. गोविन्द चातक, आमुख, पृ.सं.– 06
5. अक्षत पत्रिका, भाग–2, पृ. –14 (ललित निबन्ध तथा नवगीत केन्द्रीत पत्रिका, सम्पादक– डॉ. श्री राम परिहार) खंडवा मध्य प्रदेश से प्रकाशित
6. अक्षत पत्रिका, भाग–2, पृ. –14 (ललित निबन्ध तथा नवगीत केन्द्रीत पत्रिका, सम्पादक– डॉ. श्री राम परिहार) खंडवा मध्य प्रदेश से प्रकाशित
7. सम्पूर्ण रंग नाटक, डॉ. गोविन्द चातक, आमुख, पृ.– 09
8. अक्षत पत्रिका, भाग–2, पृ. –115 (ललित निबन्ध तथा नवगीत केन्द्रीत पत्रिका, सम्पादक– डॉ. श्री राम परिहार) खंडवा मध्य प्रदेश से प्रकाशित
9. अक्षत पत्रिका, भाग–2, पृ. –89 (ललित निबन्ध तथा नवगीत केन्द्रीत पत्रिका, सम्पादक– डॉ. श्री राम परिहार) खंडवा मध्य प्रदेश से प्रकाशित

कालजयी साहित्यकार अज्ञेय

डॉ0 निशा वालिया,*

मैं वह धनु हूँ, जिसे
साधने में प्रत्यंचा टूट गई है /
स्खलित हुआ है बाण,
यद्यपि ध्वनि दिगदिगन्त में फूट गई है।

कवि के साथ–साथ प्रख्यात कथाकार, समीक्षक और चिन्तक–विचारक अज्ञेय प्रयोगवाद और नई कविता के विशिष्ट कवि हैं। इस कवि की वाणी और लेखनी दोनों ही वैविध्यपूर्ण है। उनका स्वर अहं से लेकर समाज तक, प्रेम से लेकर लोक–परिवेश तक, यातना बोध से लेकर विद्रोह की ललकार तक, प्रकृति सौन्दर्य से लेकर मानव सौन्दर्य तक फैला हुआ हैं यह बात और है कि इस व्याप्ति में सर्वत्र संवेदनशीलता या अनुभूति साथ नहीं देती, क्योंकि संवेदना के साथ सजग बौद्धिकता दृष्टिगोचर होती है। और यही बौद्धिकता उनकी संवेदना को नियन्त्रित करती है। अज्ञेय की छोटी–छोटी कविताएँ सौन्दर्य और प्रभाव की सृष्टि की दृष्टि से विशिष्ट और सक्षम है। संवेदना और बौद्धिकता की यह सहयात्रा रूमानी परम्परा को तोड़कर नये सौन्दर्य बोध और सम्पन्न स्वस्थ काव्य की सृष्टि करती है।

मानव नियति और प्राकृतिक सौन्दर्य के घिसे–पिटे वक्तव्यों और मढ़ी–मढ़ाई शैली से हटकर अज्ञेय ने अपने अन्तर्गत को वाणी देकर बड़े साहस का काम किया। इन्होंने समश्टि को महत्वपूर्ण अवश्य माना किन्तु साथ ही व्यक्ति की निजता या महत्ता को अखंडित रखा। व्यक्ति मन की गरिमा को इन्होंने फिर स्थापित किया और उसके विकास को अनदेखा करने से जो गम्भीर संकट उपस्थित होता ज रहा था उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। अज्ञेय निरन्तर व्यक्ति मन के विकास की यात्रा को महत्वपूर्ण मानकर चलते रहे हैं। – "यह तो निर्विवाद सत्य है कि कवि अज्ञेय ने अथक प्रयास करके हिन्दी काव्य क्षेत्र में छायावादी दूरारूढ़ कल्पनायुक्त रोमांटिक कविताओं तथा प्रगतिवादी राजनीतिक विचारधारा को लेकर वर्ग–संघर्षमयी कविताओं के स्थान पर नूतन विचार–प्रधान कविताओं को जन्म दिया, उन्हें लिखने की प्रेरणा दी और स्वयं भी उनकी रचना की है, किन्तु उन्हें सर्वथा नूतन, मौलिक आदि कहना समीचीन नहीं है। उन पर पाश्चात्य प्रभाव अधिक है। (डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना) सन् 1940 से 41 के आसपस का भारत दमन गतिरोध, मंहगाई, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय संघर्ष के उथल–पुथल का भारत था। जिससे बुद्धिजीवी वर्ग व्यथित हो गया। इन परिस्थितियों से साहित्य भी प्रभावित हुआ। परिणाम स्वरूप छायावाद की मधुर सुकुमार

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

रंगीनी, प्रगतिवाद की ठोस यथार्थ शुष्कता के कारण प्रयोगवादी काव्य धारा का अज्ञेय के हाथों श्रीगणेश हुआ। जिससे कविता की नई राहों का अन्वेशण हुआ। व्यक्ति तथा समाज के बीच स्वरों का आदान–प्रदान हुआ। विषय वस्तु के साथ–साथ अभिव्यंजना शिल्प में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। जो तारसप्तक के रूप में हिंदी साहित्य में प्रकट होकर एक महान घटना का साक्षी बना। तारसप्तक का सम्पादन अज्ञेय ने सन् 1943 में सात कवियों की कविताओं को साक्षी बनाकर किया। सन् 1951 में दूसरा अन्य सात कवि तथा आठ वर्ष बाद तीसरा तथा फिर चौथा जो आज भी अज्ञेय के प्रभाव को परिलक्षित करते हुए अपनी प्रासंगिकता को सिद्ध कर रहे हैं। नूतन वस्तु तथा नूतन शिल्प दृष्टि सम्पन्न उनके ये नूतन प्रयोग वर्तमान में बड़े ही प्रभावी जान पड़ते हैं।

असल में अज्ञेय चेतना में परम्परा का प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। परम्परा के प्रभाव से उनकी चेतना में अनायास पुराने और ढ़हते हुए जीवन मूल्यों की छायाएँ निष्पदित हो गई हैं। अतीत का अनुभव और वर्तमान का अनुभव अज्ञेय को विभिन्न स्तरों पर प्रयोग करने के लिए बाध्य करता है। अज्ञेय की चेतना के नये अनुभव (वैज्ञानिक आविष्कारों से जन्य) का प्रवाह टकराता है तो पुरानी (जीवन पद्धतियों की दीवार उनके अन्दर कहीं टूटती है और उस टूटन से कवि भी मानसिक रूप से बंध जाता है। अज्ञेय का काव्य इन्हीं नवीन प्रभावों को लेकर नूतन प्रयोग कर प्रासंगिकता से जुड़ा हुआ है।

अज्ञेय स्वातंत्र्य को बहुत महत्व देते थे और व्यक्ति स्वातंत्र्य कोई आसान चीज नहीं है उसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को बहुत सी जिम्मेदारियों का स्वीकारना पड़ता है क्योंकि स्वतन्त्रता दायित्व और जिम्मेदारियों से कटी हुई स्थिति नहीं है बल्कि समाज के प्रति जिम्मेदारी का भाव है। व्यक्ति नियमित सामाजिक परिपार्श्व में रहता हुआ भी उसे परिवर्तित कर नयी दिशा तथा नयी गति दे सकता है। जिस प्रकार परिस्थितियाँ पुराने जीवन मूल्यों के टूटने और आधुनिक मूल्यहीनता की स्थितियों को बनाती है उसी प्रकार अज्ञेय के काव्य का प्रभाव आज भी व्यक्ति को प्राचीनता और नवीनता के छंद से उभारने का प्रयास करता जान पड़ता है।

अज्ञेय हिन्दी के कालजयी रचनाकार हैं। वस्तुतः उनका पूरा रचना संसार परम्परा और प्रयोग का विलक्षण सहमेल हैं। राहों के अन्वेशी अज्ञेय उन यायावर रचनाकारों में अग्रण्य है जिन्होंने शब्द की संस्कृति को नयी आभा प्रदान की है। अज्ञेय के व्यक्तित्व और लेखन की यही पहचान रही कि उन्होंने सभी स्तरों को समग्रता एवं जटिलता में एक नयी राह प्रदान की। अज्ञेय वास्तव में बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। एक पत्रकार के रूप में सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, थॉट, वाक्, दिनमान, नया प्रतीक और नवभारत टाइम्स के उनके योगदान को बहुमूल्य माना जाता है। रचनाकार के रूप में शीर्ष स्थानीय महत्त्व तो है ही रचनात्मक आंदोलनों में नेतृत्व की जो समझ उनमें थी वह दुर्लभ है। तारसप्तक सहित 'सप्तक चतुष्टय' की परिकल्पना और परिणति ने हिन्दी साहित्य में नया इतिहास रचा अज्ञेय प्रयोगवाद की रूढ़ अवधारणाओं व फल श्रुतियों को मीलों पीछे छोड़ देने वाले महान रचनाकार है।

अज्ञेय ने समान शब्द सिद्धि के साथ कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, आलोचना, यात्रावृत्तांत, डायरी, रिपोतार्ज, संस्मरण आदि विधाओं में लेखनी चलायी। अज्ञेय की कविता के मूल में स्वतन्त्रता, निजता, व्यक्ति, मौन, करूणा, प्रकृति, रहस्य अपार, अन्वेषण, जीवन, श्रद्धा और समर्पण है। अज्ञेय अपनी अनेकानेक कविताओं में हिन्दी कविता को अभूतपूर्व गरिमा प्रदान करते हैं। निश्चित रूप से अज्ञेय अपने व्यक्तितव के वैभव को रेखांकित करते हैं, पर उन्हें व्यक्तिवाद में सीमित करना अन्याय है। विदेशी साहित्य के सघन पाठक होने के नाते उन पर पाश्चात्य विचार धाराओं व विभिन्न शैलियों का प्रभाव है। क्योंकि अज्ञेय की लेखनी मौलिकता के स्पृश से पूर्णत ओत–प्रोत है। अज्ञेय ने हिन्दी कविता के उन्नयन में अपने विशाल नेतृत्व का परिचय दिया। यही कारण है कि कई परवर्ती बड़े कवियों पर अज्ञेय का प्रभाव परिलक्षित होता है। कविता के साथ–साथ कथा साहित्य में अज्ञेय का प्रवेश युगान्तकारी है। अज्ञेय ने अपने औपन्यासिक पात्रों को समाज की विभिन्न विडम्बनाओं से संघर्ष करते दिखाया है। अज्ञेय के पास शब्दार्थ को पहचानने और व्यक्त कर सकने की अपूर्व क्षमता थी जो हिन्दी गद्य को एक नयी पहचान देने में सफल रही। अज्ञेय द्वारा रचित यात्रावृत्तान्त भी पाठक की चित्तवृत्ति को उदारता प्रदान करने में सक्षम हैं। अज्ञेय के सभी निबन्धों में सभ्यता, साहित्य, संस्कृति, विकास और मनुष्यता से जुड़े अनेक विचार दृष्टिगोचर होते हैं। अज्ञेय के अनेक संस्मरण सृजन और चिन्तन के अनूठे साक्ष्य हैं। अज्ञेय एक मर्मान्वेशी अनुवादक भी थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी के लिए एक बहुमूल्य देन हैं।

मैं आज जगकर खोज रहा हूँ

वह क्षण जिसमें मैं जगा हूँ।

भग्नदूत, चिंता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर अरी ओ करूणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, बावरा अहेरी, कितनी नावों में कितनी बार, पहले में सन्नाटा बुनता हूँ, सागर मुद्रा आदि संग्रहो में उनकी कविताएँ उपलब्ध हैं।

कथा साहित्य में 'अज्ञेय' के उपन्यास शेखर एक जीवन भाग (1, 2) अपने अपने अजनबी, नदी के द्वीप अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। क्योंकि अज्ञेय ने समाज की विभिन्न विडम्बनाओं को नये अर्थ में परिभाषित करने का सफल प्रयास किया था।

अज्ञेय कहानी संग्रह– ग्रैंगीन, हीली बोन की बत्तखें, मेजर चौधरी की वापसी, शरणार्थी, विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, आदि।

यात्रावृतांत – अरे यायादर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली

निबन्ध संग्रह – त्रिशंखू, आत्मनेपद आदि

वास्तव में अज्ञेय को समझना न तो उनके जीवन में किसी के लिए संभव रहा और न जीवनोपरांत संभव बन पाया उन पर जितना ही सोचा विचारा जाता है उनके नये–नये रूप उभर कर सामने आते–जाते हैं। यह नितान्त सत्य है कि भारतीय साहित्य में अज्ञेय का होना

एक महत्वपूर्ण घटना थी और अब उनका न होना भी एक घटना है। वे जब सशरीर थे एक निष्ठावान रचनाकार के रूप में रचनाकार की स्वतंत्रता और गरिमा के प्रतिमान बने रहे और अब न होने के बाद उनकी निष्ठा बहुतों के लिए पथ–प्रदर्शक है, इस तथ्य को भला इतिहास भी कहाँ झुठला पायेगा।

छायावादोत्तर हिंदी साहित्य में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' एक अप्रतिम व्यक्तित्व हैं। कविता, उपन्यास, कहानी, यात्रा–संस्मरण जैसी साहित्यिक विधाओं में वे मील के पत्थर हैं। हर दिशा में उन्होंने नए–नए प्रयोग किए। इस दृष्टि से निराला के बाद अज्ञेय हिंदी साहित्य के सबसे बड़े प्रयोग धर्मी चेतना वाले साहित्यकार रहे। इस वाद में जहाँ भी नया विशेषण जुड़ा वहाँ इनकी महत्वपूर्ण भूमिका देखी जा सकती है। उन्होंने प्रयोगधर्मिता को पहचाना और स्वीकारा। तारसप्तकों के संपादन में उनकी इस विधायी भूमिका को देखा जा सकता है। दरअसल, साहित्यिक 'नयापन' के वे संदर्भ–बिन्दु हैं। अज्ञेय को शब्दशिल्पी, पलायनवादी एवं नितांत व्यक्तिनिश्ठ साहित्यकार एवं परिप्रेक्ष्य शून्य प्रयोगवादी की पहचान मिली हुई है।

अज्ञेय की प्रतिभा मूलतः कवि की प्रतिभा है। अज्ञेय के काव्य में सघनता और गहराई के बीज प्रस्फुटित होते हैं। उनकी कवि प्रतिभा इतनी उर्वर है कि वह कल्पना के पंख पसार कर नई जमीन पर अंकुरित होती जान पड़ती है। अज्ञेय का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य को एक सम्पूर्णता प्रदान करता है। अज्ञेय ऐसे आधुनिक कवि हैं जिनकी प्रतिभा–प्रमुखः गीतिपरक है। अज्ञेय में सघनता है, विस्तार नहीं, अनुभूति की तीव्रता तो है, आकाशीय विराटता नहीं। अज्ञेय का काव्य संसार सघनता, तीव्रता तथा कोमलता से भरा हुआ है। उनका काव्य संसार तराशे व सजाए हुए उपवन की तरह है। अज्ञेय ने मौन को साधा, अपने व्यक्तित्व को प्राँजल बनाया और अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा साहित्य साधना को अर्पित की यही कारण है आज भी अज्ञेय की कृतियाँ बोलती हुई प्रतीत होती है।

"हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर
स्रोतस्विनी बह जाए? वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण गलियाँ, अन्तरीय उभार, सैकत कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं। माँ है वह! इसी से हम बने हैं।"

हिंदी में अज्ञेय के पास इस प्रकार की संगठन शक्ति भी है। उन्होंने तारसप्तक के प्रकाशन द्वारा नई आवाजों को एक मंच पर उपस्थित कर एक रचनात्मक प्रभाव डाला। चाहे उनके अनचाहे ही लेकिन प्रयोगवाद नाम से यह नया आंदोलन चला, जो दूसरा सप्तक का प्रकाशन होने के पश्चात 'नई कविता' नाम से अभिहित हुआ। 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन से नई कविता दृढ़ भीत्ति पर अवस्थित हुई है। नई कविता के आंदोलन को सुस्थित करने के

लिए अज्ञेय ने प्रतीक पत्रिका का प्रकाशन भी किया। नई कविता के आंदोलन में 'सप्तकों' के प्रकाशन का जो योग है, उसे कोई भी इतिहासकर नजरअंदाज नहीं कर सकता। अज्ञेय ने नई कविता रचकर उसके लिए पाठक भी तैयार किये।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में अज्ञेय के बहु–आयामी कृतित्व से सर्वसाधरण भली भाँति परिचित हैं। कवि अज्ञेय ने अपने हृदय में उठने वाले मनोभावों की सहजता से अभिव्यक्ति की है तथा अन्तरतम को बिना किसी कृत्रिमता के ज्यों का त्यों पाठक के समक्ष रखा है। इनकी इसी विशेशता के फलस्वप पाठक इनके काव्य का अध्ययन करते समय साधारणीकरण की अवस्था में पहुँच जाता है और उसे अनुभव होने लगता है, मानों उसी के जीवन की खुली किताब सामने रखी हो। अज्ञेय अपने चिन्तन में वैज्ञानिक हैं तथा किसी भी अनुभव का तिरस्कार नहीं करते। इनके काव्य में दार्शनिकता है, परन्तु वस्तु जगत में विच्छिन्न कोरी भावुकता अथवा आध्यात्मिकता कहीं नहीं है। अज्ञेय के काव्य में जनसाधारण को अभिव्यक्ति मिली है अतः अज्ञेय रचित काव्य जनसामान्य का काव्य है। अज्ञेय मुख्यतः प्रेमानुभूति के कवि हैं इनके प्रेमी हृदय ने सृष्टि की प्रत्येक कृति में सौन्दर्य के दर्शन किए। इनका काव्य वायावी नहीं अपितु यथार्थ के ठोस धरातल पर अधिश्ठित है।

अज्ञेय को प्रख्यात कथाकार, समीक्षक और चिन्तक–विचारक होने का गौरव प्राप्त है। पत्रकारिता के क्षेत्र में इन्हें 'दिनमान' और 'प्रतीक' का सम्पादन कार्य करने कें ख्याति प्राप्त हुई है। 'तार–सप्तक' तथा रूपाम्बरा इनके द्वारा सम्पादित काव्य संकलन हैं। प्रयोगवादी धारा के कवियों में इनका स्वर सर्वाधिक वैविध्यपूर्ण है। "इनका स्वर अहं के लेकर समाज तक, प्रेम से लेकर दर्शन तक, आदिम गन्ध से लेकर विज्ञान की चेतना तक, यन्त्र सभ्यता से लोक परिवार तक, यातना बोध से लेकर विद्रोह की ललकार तक, प्रकृति सौन्दर्य से मानव सौन्दर्य तक फैला हुआ है।

वैविध्यपूर्ण स्वर लिए हुए अज्ञेय के कवित्व में कतिपय स्थलों पर कोरी बोद्धिकता या शुश्क बोध उभर आता है। अज्ञेय की कविता के अधिकांश विषय तात्विक हैं जो किसी भी देश अथवा काल की सीमाओं से मुक्त हैं, "भारतीय के लिए प्रेम, अनुभूति, आत्मा, करुणा, ध्यान, मौन, मृत्यु वेदना, आस्था, क्षण नागरिकता, इतिहास, परम्परा, वासना आदि जैसे हैं। इनके प्रति वैसी ही एकाकारिता किसी भी देश के लिए ग्रहित हो सकती है।

'उड़ गई चिडिया,

काँपी, फिर

थिर हो गई पत्ती'

यह ठीक है कि प्रत्येक युग के काव्य की कमियों के लिए युग–विशेष की परिस्थितियों का भी योगदान रहता है परन्तु काव्य कौशल इसी में है कि युग की समस्याओं को समझा जाए तथा समय की मांग को ध्यान में रखकर काव्य–रचना हो परन्तु मानव विकास के लिए अनिवार्य प्रेम–सौन्दर्य तत्व उपेक्षित न हों। मनुष्य प्रेम के सहारे ही जीवित

रहता है और प्रेम का आलम्बन सौन्दर्य है। इन तत्वों के अभाव में स्वस्थ जीवन की कल्पना भी नहीं कही जा सकती। आज के मशीनी युग में तो इन कोमल भावों की आवश्यकता और अधिक हो गई ताकि विभिन्न प्रकार के संघर्शों से जूझता हुआ मानव राहत अनुभव कर सके।

अज्ञेय विचारधारा के धरातल पर स्थित रचनाकार हैं तथा नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर। उनकी दृष्टि कवि–दृष्टि थी, यानी यथार्थ को गहराई से देखने की दृष्टि। उन्होंने हिन्दी को कलात्मक भाषा तथा उच्चकोटि का काव्यशिल्प दिया। अज्ञेय ऐसे शब्द शिल्पी थे कि उनके काव्य कौशल में कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। यही कारण है कि अज्ञेय जी के लिए नये शब्दों की खोज व शब्द का नया संस्कार श्रेय भी है और प्रेय भी। उन्होंने शब्दों को तोड़ा मरोड़ा नहीं अपितु अपने सधे–हुए हाथों से कुशलतापूर्वक उन्हें नया जीवन प्रदान किया। यही कारण है कि अज्ञेय आधुनिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करने से पूर्ण रूपेण समर्थ साहित्यकार कहे जाते हैं।

अज्ञेय जी का व्यक्तित्व निस्सन्देह हिन्दी साहित्य का पूर्ण पुरुषार्थ था, वे हिन्दी के आभिजात्य पौरुष के प्रतीक थे।

सन्दर्भ–

डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास

अज्ञेय कवि – डॉ० ओम प्रकाश अवस्थी

गजल गायक : कवि अश्वघोष

डॉ0 पुष्पा खण्डूरी*

निवास – 7 अलकनंदा एन्क्लेव, जनरल महादेव सिंह मार्ग, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड)

नाम – ओम प्रकाश शर्मा

साहित्यिक नाम – अश्वघोष

जन्म – 20 जुलाई 1941

शिक्षा – अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य में एम.ए., पीएच.डी.

प्रकाशित कृतियाँ

शोध : हिन्दी कहानी : सामाजिक आधारभूमि

खण्डकाव्य : ज्योतिचक्र, पहला कौन्तेय

कविता संग्रह : आस्था और उपस्थिति, माँ दहशत और घोड़े, सीढ़ियों पर बैठा पहाड़

नवगीत संकलन : तूफ़ान में जलयान, अम्मा का ख़त, हवा एक आवारा लड़की, सपाट धरती की फसलें, गई सदी के स्पर्ष, अलमारी में रखे हुए दिन, गौरेया का घर खोया है

गज़ल–संकलन : जेबों में डर, आदमी बाज़ार में है, ज़िन्दगी के आशियाने में।

बाल काव्य संग्रह : डुमक–डुमक–डुम, तीन तिलंगे, राज हाथी, बाइस्कोप निराला, ताक्–धिन–धिन, सोनचिरैया के क्या कहने तथा आगड़ बिल्ला–बागड़ बिल्ला।

अन्य : राज्य संसाधन केन्द्र लखनऊ, देहरादून तथा नेशनल बुक ट्रस्ट एवं अन्य संस्थाओं से प्रौढ़ शिक्षा, उत्तर साक्षरता एवं सतत शिक्षा के लिए लगभग चार दर्जन पुस्तकें एवं प्राइमर्स प्रकाशित।

स्वामी रामतीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड़ में बी.ए. प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में 'अम्मा का ख़त' कविता तथा उत्तराखण्ड की आठवीं कक्षा की पाठ्य पुस्तक में 'आत्ममंथन' कहानी संकलित।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय की 3, 5 तथा 8वीं की कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों के लेखन में सहभागिता एवं कहानियों और लेखों का समावेश।

*डी0लिट्0 एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी, डी0ए0वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देहरादून

पुरस्कार एवं सम्मान

- उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय लखनऊ तथा सम्भावना संस्थान, मथुरा द्वारा पुरस्कृत
- समन्वय, सहारनपुर, भारतीय कल्याण संस्थान, कानपुर आदि अनेकानेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।
- दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से निरन्तर काव्यपाठ

उत्तरांचल की सुरम्य वादियों में साहित्य साधनारत कवि अश्वघोश का जन्म तो बुलंदशहर के छोटे से जनपद रन्हेरा में हुआ पर उन्होंने अपनी साहित्य साधना की तपःस्थली बनाने के लिए उत्तराखण्ड की सुरमय दून घाटी को चुना। जनरल महादेव सिंह मार्ग में स्थित अलकनन्दा एन्क्लेव नं0 7 में आपका भव्य बंगला है। उनकी साहित्य साधना के विषय में कृषण शलभ ने लिखा है कि– अश्वघोश और भव्यता एक दूसरे के पर्याय हैं। भव्यता का अभिप्राय सलीके से है बंगले का गेट, गेट पर नेम प्लेट, आगे व्यवस्थित लॉन और दोनों और हरीतिमा का सुख आपको दूर तक गुदगुदाएगा जैसे कविता का सुख। सब कुछ सलीके से, घास से पेड़ तक, पत्ते से फूल तक। और आगे बढ़ते हुए घर अपने रूप स्वरूप में..... हाँ एक बात नोट करें जब कभी अश्वघोश से मिलना हो तो पहले फोन से मालूम जरूर कर लें क्या वहाँ अश्वघोश हैं? क्योंकि अश्वघोश प्रायः कविता की तलाश में घर से फरार रहते हैं। इस बीच यायावारी में कविता को जीते हैं भव्य बंगले ड्राइंग रूम और बेहद सुसज्जित कमरों में बैठकर अश्वघोश कविता से बात नहीं कर पाते। उसके लिए इन्हें यायावारी ही रास आती है। एकान्त, मौन संलाप या फिर जमीन से जुड़ते, उखड़ते आम आदमी की त्रासद की अर्न्तव्यथा में तिल–तिल दहना और फिर उसे कविता में कहना। सच में कृश्ण–शलभ जी की बातों में तनिक भी शंका की गुंजाइश नहीं है क्योंकि प्रस्तुत लेख के विषय में मेरी अश्वघोश जी से जितनी बार भी दूरभाष पर वार्ता हुई वे या तो बस में या कार में थे, परन्तु थे वे सफर में ही। 'सच ही है सैर कर दुनियां की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ।' ठहराव जिसकी रूचि नहीं, निरन्तर चैतन्य जिसके चिन्तन को गति देता हो, वही समय को सत्य रूप में शब्दांकित कर पाता है। प्रकृति की निरन्तर गतिमय शोभा ही व्यक्ति को सामान्य से ऊर्ध्वगति प्रदान कर कवि बना देती है। कौसानी के चंचल सौन्दर्य ने जब सुमित्रानंदन पंत को अपनी शोभा अभिभूत किया तब उन्होंने भी अपने हृदय की इच्छा को जग जाहिर करते हुए लिखा– 'हे सुन्दरता के शाश्वत भूभृत, कब से शब्दों के शिखरों में तुम्हें चाहता करना चित्रित'।

अश्वघोष पंडित शंभू दत्त शर्मा के पौत्र पं. रामकृष्ण शर्मा वैद्य के बेटे हैं आपका जन्म 20 जुलाई 1941 को हुआ तथा आपका नाम रखा गया ओम प्रकाश, शब्दों से खेलने वाले कवि को बचपन में रंगों और रेखाओं से खेलने का भी बेहद शौक था अपने इन्टर कॉलेज में चित्रकला में अध्यापन कार्य भी किया। सन् 1965 में उनको अश्वघोश नाम मिला। अश्वघोश

बन कर उन्होंने जो साहित्य सर्जना का उद्घोश कियावह तब से अब तक सतत् प्रवाहमान है।

उन्नीस सौ पैंसठ में केन्द्रीय तिब्बती विद्यालय माउन्ट आबू में पुनः अध्यापकी शुरु की। बाद में वहाँ में आपने लाल बहादुर शास्त्री अकादमी, मसूरी में हिन्दी अध्यापक के रूप में अपनी सेवाएं दीं। डॉ0 कुँवर पाल सिंह के निर्देशन में 'हिन्दी कहानी की सामाजिक आधार भूमि' विषय पर शोध सम्पन्न कर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

अश्वघोष का समग्र साहित्य ही उनकी अपनी जीवन यात्रा की प्रतिध्वनि है। उनके सम्पूर्ण वांङ्मय में छलछलाती संवेदना हो या व्यंग्य, उनके जीवन की तथा उनके स्वभाव की सरलता सर्वत्र व्याप्त है।

ज्योचिक्र, पहला कौन्तेय खण्डकाव्य हो या उनका काव्य और नवगीत संकलन या उनका बालकाव्य हो या अन्य प्रकाशित शोध और पुस्तकें, परन्तु उनकी गजलों में जो डर, उदासी के मंजर तानों बानों और व्यंग्यों की पैनी धार है वह उन्हें अन्य साहित्यकारों से अगल मुकाम पर पहुँचा देती है।

हिन्दी गज़लों के लेखन में 'दुश्यन्त कुमार' के समान ही एक और नाम जो समाज का आईना प्रस्तुत करता दिखाई दे रहा है वह है अश्वघोश का नाम। इनकी काव्य प्रतिभा को आंकने का मीटर यदि उनकी ग़ज़लों को माना जाए तो अत्युक्ति न होगी। साधारण सहज और सादगीपूर्ण ढंग से भावों को शब्दों की ओढ़नी से लिपटे शिल्प की काया में देखना हो तो अश्वघोश के काव्य सिन्धु में अवगाहन करना ही पड़ेगा। हिन्दी–उर्दू में गज़लों की एक अपनी अनूठी परम्परा है। अमीर, खुसरों, मीर, गालिब से लेकर फ़ैज़, जिगहर साहिर, न जाने कितने शायरों ने उर्दू में ग़ज़लें कहीं और कह रहे हैं। उर्दू में शायद ही ऐसा कोई शायर आसानी से मिलेगा, जिसने ग़ज़लें न कहीं हों। उर्दू की बात छोड़ भी दें तो हिन्दी में भी गज़लें लिखने वालों की संख्या बहुत बड़ी है। निराला, त्रिलोचन, नीरज, 'राही', कुँवर बेचैन, उर्मिलेश, ज्ञान प्रकाश, विवेक, शमशेर बहादुर सिंह और दुश्यन्त कुमार जैसे कवि और गीतकारों ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है।

हिन्दी में आज एक नया दौर है गज़लों का। गज़ल को छंद शास्त्र का आतंक या यों कहें कि कठोर अनुशासन की कैद से उबारने का प्रयास जारी है। आज की जिन्दगी में गज़ल को मीर या गालिब की शैली में हू–ब–हू कह पाना सरल नहीं है।

सूर्य भानु गुप्त के शब्दों में कहा जाए तो–

"जो होते आज गालिब तो समझते
ग़ज़ल कहने में क्या कठिनाइयाँ हैं।

सूर्यभानु गुप्त ने इन कठिनाइयों को समझा ही नहीं अपितु अपनी शायरी में निदान भी प्रस्तुत किया है। उनकी ग़ज़लों में भावों को आवेग, तसब्बुर और शिल्प सौष्ठव छंद को उच्च संस्कार युक्त बना देते हैं–

"ऐसा काई है अब मकानों पर,

धूप के पांव भी फिसलते हैं।"

ऐसे छंदों से स्पष्ट हो जाता है कि कि गज़लें महज टैक्नीक या क्राफ्टवर्क ही नहीं अपितु भावनाओं का अक्श भी होती हैं। ठीक इसी प्रकार अश्वघोश की गज़लों ने भी जिन्दगी से आँखें चार की हैं उनकी गज़लों की सम्पूर्णता की कसौटी आम आदमी का जिन्दगी है। उनकी निम्न पंक्तियाँ आज के बदलते समाज को मात्र चंद पंक्तियों में कैसे प्रस्तुत कर देती है यह दृष्टव्य है–

बालक कोरा कागज़ एक
किसने लिख दी जात न पूछ
कितना बरसा जाकर देख
बादल से औकात न पूछ
इस गली के लड़के कल तक वीर थे, जाँबाज़ थे
रात भर में क्या हुआ आकान्त से लगने लगे।

अश्वघोष का जन्म 20 जुलाई सन् 1941, रन्हरा, बुलन्दशहर, उ0प्र0 में हुआ था। अश्वघोष का पूरा नाम ओम प्रकाश शर्मा है। आपने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से एम0ए0 एवं पी–एच0डी0 की शिक्षा प्राप्त की। 'हिन्दी कहानी, सामाजिक आधार भूमि' पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। अश्वघोश ने गीतों, गजलों और छंद मुक्त रचनाओं के द्वारा समाज की दशा और दिशा को उजागर किया है। अश्वघोश के काव्य पर अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

कृष्ण 'शलभ' ने अश्वघोष के काव्य के विषय में लिखा **"अश्वघोष ने काव्य को समग्र रूप में जिया है। उन्होंने जहाँ प्रभावशाली कविता, नवगीत और खण्ड काव्यों की रचना की है, वहीं सार्थक बाल गीतों के क्षेत्र में भी अपनी धाक कायम की है।"** पर बाबा नागार्जुन इनके गीतों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अश्वघोश को प्रेरित करते हुए कहा था **"तुम बहुत अच्छे गीत लिखते हो, गीत लिखते रहना। गीत हमारी संस्कृति है।"** डॉ. हरिवंश राय बच्चन के शब्द अश्वघोष को कुछ इस तरह से अभिव्यक्त करते हैं। **"गीत को नए मुहावरे में ढ़ालने का प्रयास विशेष सराहनीय है।"** विष्णु प्रभाकर के शब्दों में **"सशक्त और बेवाक अभिव्यक्ति और गहन अनुभूति की दृष्टि से कहीं–कहीं असहमति होते हुए भी आपके गीत मुझे पसंद आए।"** राजेन्द्र अवस्थी इनके काव्य को कुछ तरह सरहाते हैं। **"अश्वघोष के गीत आम आदमी के सांस्कृतिक परिवेश का प्रतिबिम्ब हैं। अपने गीतों में उन्होंने मानव मन के दर्द को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है।"** कन्हैया लाल नंदन ने अश्वघोष के काव्य के बारे में लिखा कि **"नए प्रतीक तथा बिम्ब अश्वघोष के गीतों में लयबद्ध होकर आते हैं। संवेदन भील होते परिवेश के लिए वे चिन्ता युक्त सजग रचनाकार हैं।"** अश्वघोष की प्रकाशित रचनाओं में हिंदी

कहानी : सामाजिक आधार भूमि (आलोचना) ज्योतिचक्र, पहला कौन्तेय (खण्ड काव्य) तूफान में जलयान, आस्था और उपस्थिति, अम्मा का खत, हवा, एक आवारा लड़की, माँ, दहशत और घोड़े, जेबों में डर, सपाट धरती की फसलें, गई सदी के स्पर्ष और सीढ़ियों पर बैठा पहाड़ (कविता संग्रह) डुमक–डुमक–डुम, तीन तिलँगे, राजा हाथी, बाइस्कोप निराला, ताक धिना–धिन और सोनचिरैया के क्या कहने (बालकाव्य–संग्रह) आदि उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

अश्वघोष जी को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय लखनऊ, राज्य सन्दर्भ केन्द्र लखनऊ, सम्भावना संस्थान मथुरा द्वारा पुरस्कृत किया गया है। समन्वय सहारनुपर भारतीय बाल कल्याण संस्थान कानपुर द्वारा भी सम्मानित किया गया है। स्वामी रामतीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय नांदेड में बी0ए0 प्रथम वर्ष के पाठयक्रम में 'अम्मा का खत' कविता तथा उत्तराखण्ड बोर्ड की आठवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक में 'आत्ममंथन' कहानी संकलित है। वर्तमान समय में देहरादून में रहते हुए साहित्यिक गतिविधियों में संलग्न हैं। अन्य में विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों हेतु भी आपकी कुछ विशेष कृतियाँ चुनी गई हैं। समसामयिकता एवं सामाजिक सरोकारों की दृष्टि से आपकी गज़लों का अनुशीलन करें तो हम पाते हैं कि समाज के सच को उजागर करने में कवि ने अपनी सम्पूर्ण लेखनी को झोंक दिया है–

घिरे हुए अन्तर्द्वन्द्वों से
अतुकान्त उलझे छन्दों से
उजियाले ने हमें छोड़कर
ढूँढ़ लिए अंधियारे मंजर

उनकी रचनाओं में मानव जीवन से सम्बन्धित कुछ भी नहीं छूटा है। चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियाँ हों या असुरक्षा और आतंक। चाहे टूटते रिश्ते, अकेलापन या भूख, गरीबी, शोषण–उत्पीड़न हो या कमरतोड़ महँगाई। इतना ही नहीं, आज के समाज में व्याप्त विलासिता पूर्ण संस्कृति पर भी अश्वघोष ने अपने कलम का प्रहार किया है।

अश्वघोष का गज़ल संग्रह 'जेबों में डर' में अश्वघोष की सौ गज़लों का संग्रह है। इस संग्रह की भूमिका में शेर जंग–गर्ग लिखते हैं– 'जेबों में डर' अश्वघोष की सौ गज़लों का संकलन है। और ये गज़लें अश्वघोष की प्रगतिशीलता और बुनियादी मानवीय सरोकारों को अत्यन्त सहज रूप से प्रस्तुत करती हैं। इन गजलों में गजल का परंपरागत रूमानी रूप नहीं, अपितु आज के मनुष्य द्वारा भोगी जा रही दहशत और बरदाश्त की जा रही बहशत के शब्दांकन हैं जो प्रायः यादगार बन गये हैं।"

इस संग्रह की पहली गजल 'पेट की इस आग को' में अश्वघोष ने राजनीति ओर सामाजिक चेतना के द्वारा संदेश दिया है कि किस प्रकार आज भी हमारे देश में अधिकांश जनसंख्या भूखे पेट सोने को विवष है। और वहीं हमारे सरकार के राजनेता करोड़ों रुपये अपने विलासिता पूर्ण जीवन शैली पर खर्च करते हैं और यहाँ का धन यहाँ की जनता के

हितार्थ व्यय न होकर विदेशी बैंकों की शोभा बढ़ा रहा है। वे देश की सरकार का ध्यान इस समस्या की ओर आकृष्ट करते हुए लिखते हैं–

"पेट की इस आग को इजहार तक लेकर चलो
इस हकीकत को जरा सरकार तक लेकर चलो"

अश्वघोष ने अपनी गज़लों में समाज के यथार्थ को मार्मिक रूप से चित्रित किया है कि किस प्रकार से बेईमानी से कमाई करने वाले ऐशों आराम का जीवन जी रहे हैं। उनके पास अनेक प्रकार की भौतिकवादी सुविधायें उपलब्ध है लेकिन एक गरीब मजदूर इंसान को दो जून की रोटी के लिए दिन भर खून पसीना बहाना पड़ता है तब भी उसे अपनी कठोर मेहनत का पूर्ण मेहनत नामा नहीं मिल पाता है।

कुछ काज़ियों के बीच में मुर्गी हलाल है,
बस ये हमारे देश की जिन्दा मिसाल है,
चीलें मिलेंगी पेट को बिल्कुल भरे हुए,
पर आदमी को देखिए वो तंग हाल है,
क्यों भेडियों का राज है संसद के सहन में
जहनों में सबके आज यही एक सवाल है
बदलेगा ये निज़ाम भी बदलेगा एक दिन
वो दिन नहीं है दूर ये मेरा ख्याल है।

अश्वघोष ने अपनी गज़लों में समाज का जो चित्रण किया उसमें ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी प्रचलित कुप्रथाओं से इंसान कैसे बेहाल है। आज भी इंसानों को अपनी बात कहने अर्थात् सच कहने पर उनकी जीभ काट दी जाती है। और कहने को हमारे देश में अभिव्यक्ति की आजादी है। किस तरह से आज भी हमारे देश में खाप पंचायतें अन्याय एवं शोषण का न्यायालय बने हुए हैं। जहाँ कुछ व्यक्तियों के अपने निजी स्वार्थों के कारण निर्दोशों को सजा सुनाई जाती है।

"न्याय की आशा न करना, चौधरी से गांव के
वो तो बस इस भेड़िया है आदमी की खात में"

हर रोज अखबार में जो खबरें पढ़ने को मिलती है। तो पता चलता है कि समाज कितनी क्रूरता को पार कर गया है। कहीं बहू को दहेज नामक दानव के नाम पर जलाया जाता है। कहीं हमारे रक्षक कहे जाने वाले किस प्रकार आम नागरिकों के साथ अशोभनीय व्यवहार कर रहे हैं। उसे अखबार की खबरें हर सुबह रूबरू कराती है। किस तरह पुलिस थानों में निर्दोशों को गिरफ्तार करके रात भर उनके साथ बदसलूकी, अमानवीय व्यवहार की हदें पार की जाती हैं। और उनके मौतें हो जाने पर उनकी लाशें तक परिवार वालों को देखने तक के लिए नसीब नहीं होती है।

"कल पुलिस की लाठियों से मर गया बुधिया

लाश गायब है अभी बतला गया अखबार"

अश्वघोष ने आधुनिक आतंकवाद की समस्या को अपनी गजल के द्वारा यथार्थ रूप में चित्रित किया है कि किस प्रकार आज हर देश, मुहल्ले में आतंकवाद की कक्षाऐं चल रही हैं और किस तरह से एक जीवित मानव, मानव बम का रूप ले रहा है। उनकी पंक्तियों में कुछ इस तरह से व्यक्त किया है। आतंक वाद को

तुम दायरों से निकलो, बाहर तो आओ घर से
कुछ हाल–चाल जानो, परिचय तो हो भाहर से
आतंक को पढ़ाया अपनी तरह से सबने,
हर देश में खुले हैं इस तौर के मरदसे

आज के दौर की महँगाई का यथार्थ चित्रण इस प्रकार से किया कि आम आदमी किस प्रकार से दो जून की रोटी के संघर्ष में दिन भर तपती धूप में अपने बदन को कठोर परिश्रम की आम में जलाता है। फिर भी उसे कठिन परिश्रम का वह पारिश्रमिक नहीं मिल पाता जो मिलना चाहिए महँगाई इतनी बढ़ गई है कि इस मेहनत, मजदूरी के बाद भी आम जन की मूल भूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पा रही अभी भी कई भूखे पेट सोने को विवष हैं। सरकार का हमेशा ही यही पैगाम आता है कि महँगाई पर अंकुश लगाया और महँगाई पूर्णतः नियन्त्रण में है।

बस्ता इतना भारी है
बच्चे की लाचारी है
महँगाई पर अंकुश है
यह जुमला सरकारी है
तन का सागर उथला है
मन की नैया भारी है
बस खुद का ही दुश्मन हूँ
बाकी सबसे यारी है।
वो रिश्ते भी बेचेगा
आखिर तो व्यापारी है।

अश्वघोष ने अपनी गज़लों के द्वारा समाज में अन्याय को देखकर चुप्पी साधने की आदत पर अपने विचारों का ऐसा पत्थर फेंका है कि स्वार्थी समाज यह जान सके हमें अपने भले के लिए ही नहीं जीना चाहिए बल्कि हमें सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए कार्य करने चाहिए। हमें इंसानों के साथ जानवरों जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। हमें सोचना है कि हमने उनके लिए क्या किया जो फुटपाथों, चौराहों पर भीषण मौसम में जलते और ठिठुरते रहते हैं। हमें दूसरों पर अंगुली उठाने से पहले स्वयं की ओर देखना चाहिए कि हम इस समाज को क्या दे रहे हैं। क्या हम अपने कर्त्तव्य का पालन उत्कृष्ट तरीके से कर रहे हैं या फिर केवल हमारा कर्त्तव्य पालन दिखावे तक ही सीमित रह गया है।

अश्वघोष ने दुनिया को एक बाज़ार के प्रतीत का रूप दे दिया है। इस बाजार में ईमान और जमीर किस तरह से बिकाऊ हो गया है अपनी गज़लों के द्वारा यथार्थ चित्रण को प्रस्तुत किया है। 'आदमी बाज़ार में है' क्रति के अन्तिम छंद उन्होंने स्पष्ट लिखा है–

आदमी लाचार है अब सचबयानी में,
बुतपरस्ती हो रही है राजधानी में,
फूल जितने लद रहे हैं रात रानी में,
ठीक उतने झोल हैं उनकी कहानी में,
हम हकीकत हैं हमें बहका नहीं वरना,
टूट जाएगा ये धागा खींचातानी में,
आपकी मुझ पर मेहरबानी है ये सच है,
प्यार भी दिखलाइए कुछ मेहरबानी में,
तुझको दौड़ानी है बिजली 'अश्वघोश',
देखले कितनी बची है आग, पानी में।

सन्दर्भ

जेबों में डर, अश्वघोष, मेधा बुक्स, दिल्ली भूमिका

गई सदी के स्पर्श–अश्वघोष, राजेश प्रकाशन, पूर्व दीप्ति

वही

वही

वही

वही

गौरेया का घर खोया है– अश्वघोश, राजेश प्रकाशन संस्करण 2014, पृश्ठ– 39

जेबों में डर– अश्वघोष, मेधा बुक्स, संस्करण 2001, पृश्ठ– 13

वही, पृश्ठ– 13

वही, पृश्ठ– 14

वही, पृश्ठ– 16

वही, पृश्ठ– 23

वही, पृश्ठ– 34

वही, पृश्ठ– 72

आम आदमी बाजार में है– 'अश्वघोष' प्रथम संस्करण : 2013 पृश्ठ– 112

संस्कृत साहित्य में अभिव्यक्त संगीत कला

डॉ0 सविता भट्ट*

ललित कलाओं में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। इसे गन्धर्व विद्या भी कहा गया है। **संगीत रत्नाकर** के अनुसार– संगीत एक **अन्विति है, जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश है।**

संस्कृत साहित्य संगीत कला का सभ्यक विवेचन प्रस्तुत करते है। महाकवि **कालिदास, अश्वघोश, माघ, श्रीहर्ष, भारवि, कुमारदास, भा्द्रक, भास** आदि प्रसिद्ध कवियों की कृतियों का ही संक्षिप्त उल्लेख यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। **वेद, रामायण, महाभारत आदि के संगीतमय प्रसंग अलग बिन्दुओं में व्यक्त किये गये है।**

महाकवि कालिदास के साहित्य का अध्ययन करें तो संगीत विषयक अनेक प्रसंग उजागर होते है। कलाओं के सम्यक परिपोषण एवं प्रोत्साहन के लिए राज्याश्रय प्राप्त था। संगीत शालायें विद्यमान थी जिसमें पारंगत आचार्य शास्त्र और प्रयोग की विधिवत शिक्षा देते थे। नये और पुराने वाद्यों की मनोहर ध्वनि से अनुगत शब्द और स्वरों के समारोह चलते रहते थे। महाकवि ने चराचर जगत में व्याप्त ब्रह्माण्ड संगीत का दर्शन किया है, कहीं पर वह पवन के भर जाने पर जंगली बाँसों की ध्वनि सुनता है जिसके संगीत पर किन्नरियाँ भगवान शंकर के त्रिपुर विजय का गान कर रही है–

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः।

संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।।

निह्र्लादस्ते मुरज इव चेत कन्दरेशु ध्वनिः स्यात्।

संगीतार्थो ननु पशु पतेस्तत्र भावी समग्रः।।

इस अवसर पर यहाँ कमी है तो केवल मुरज वाद्य की, यदि बादल अपनी गर्जना कर दे तो मुरज वाद्य अथवा मृदंग की कमी भी पूर्ण हो जायेगी।

कालिदास इस प्रकार के गान पर बहुत मुग्ध है। राजा दिलीप भी वन देवियों द्वारा गाये गये अपने गान को सुनते है–

स कीचकैर्मारूतपूर्ण रन्ध्रैः कूजद्भि रापादितवंश कृत्यम्।

भ्राुश्राव कुन्जेशु याः स्वमुच्चैरूद्गीयमानं वनदेवताभिः।।

वन में राजा दिलीप सुन रहे थे कि वन देवता वन की कुंज में ऊँचे स्वर से उनका यश गा रहे हैं। उन वन देवताओं के गीत के साथ वे बाँस की मधुर बाँसुरी बजाये जा रहे थे। जिनके छेदों में वायु भर जाने के कारण उनमें से मधुर स्वर निकल रहे थे।

*एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

इसी प्रकार हिमालय से भी वह संगीत सुनाई पड़ता है–

यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागानदरीमुखोत्थेन समीरणेन्।

उद्गास्यतमिच्छति किंन्नराणां तामप्रदायित्वामिवो पगन्तुम्।।

अर्थात् हिमालय पर ऐसे छेदों वाले बाँस बहुतायत से होते है। जो वायु के भर जाने पर ऐसे बजने लगते है मानो ऊँचें स्वर से गाने वाले किन्नरों के गीतों के साथ संगत कर रहे हो।

तोता मैना की संगीतात्मक बोली के अतिरिक्त कालिदास का ध्यान **शडज संवादिनी** मधुर वाणी भी आकृष्ट करती है। मुरज ध्वनि भी उन्हें प्रिय है।

मेघदूत में– **मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां, तामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।**

जैसे उक्ति में **नुदति** और **नदति** का मांगलिक और सुखद समन्वय प्रस्तुत किया है। प्रकृति के मधुर संगीत में मांगलिकता और झंझावात् की रौद्र ध्वनियों में अनिष्ट और अमंगल के चिन्ह निहित होते हैं। कवि ने मंगलमय कार्यों में संगीत का दिग्दर्शन कराया है। यथा वीणाधारी सिद्ध द्वन्द्व, रक्त कण्ठ किन्नर; उच्च स्वर में यशोगीत गाती किन्नरियाँ; प्रवीण विश्वावसु, उशः काल में वीणा के साथ मंगल गीत में लीन देवगायक आदि वस्तुतः प्राकृतिक संगीत की व्यंजक शक्तियों के ही मिले जुले मानवीय और दिव्य रूप हैः जिन्हें पौराणिक परम्परा से कालिदास ने ग्रहण किया है। **धरती के संगीत का प्रभाव गगन पर्यन्त होता है।**

शातकर्णि मुनि के पंचाप्सर नामक क्रीड़ा सरोवर में जल के भीतर बने भवन में संगीत की योजना के मूल में प्रकृति ही सन्निहित है–

तस्यायमन्तर्हित सौधभाजः ..... करीति।

कालिदास के नायक–नायिका भी गुणों के आगार है। पार्वती की सुरीली बोली के आगे कोकिल की ध्वनि भी फीकी पड़ जाती है जैसे किसी अनाड़ी ने अनमिली वीणा के तार बेसुरे ढ़ग से छेड़ दिये हो–

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि।

अप्यन्यपृष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना।

दरबारी परम्परा के अनुसार न केवल चारण ही गीत गाकर राजाओं को जगाते है वरन् कालिदास की रमणी भी अपने सोयें हुए प्रिय को वीणा बजाकर सुरीले गले से प्रणय प्रभाती गाकर जगाती है।

मालविकाग्निमित्र का नायक मृदंग ध्वनि से इतना प्रभावित है जैसे उसका मनोरथ ही उसे बुला रहा हो।

धैर्य ..... स्वमनो रथस्येव।

कालिदास की विराहिणी नायिका अपनी मलिनवसना गोद में वीणा रखकर प्रिय के नाम से अंकित गीती छंदों को आँसू टपकाती हुई स्व रचित मूर्च्छना के साथ इतना भाव विह्वल होकर गाती है कि वे अपनी रचना को बार–बार भूल जाती है। रमणियों द्वारा की जाने वाली वीणा वादन से संगत सर्वथा निर्दोश और शास्त्रीय स्वर पर साधना का प्रतिनिधित्व **अभिज्ञान भााकुन्तल** की हंसपादिका करती है। जिसके संदर्भ में विदूशक राजा दुष्यंत का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहता है–

भो वयस्य! संगीतशाला न्तरेऽवधानं देहि। कलाविशुद्धाया गीतेः स्वर संयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसादिका वर्णपरिचय करोतिति।

स्वयं इन्दुमती ललित कलाविधौ में अपने प्रिय की लाडली शिष्या थी। इसके अलावा अन्य कई स्थल है जहाँ संगीत विषयक प्रसंग आयें है यथा– उ0मे0–5, रघु0 2/12, पू0 मे0–56, कु0स0– 7/48, रघुवंश 3/19, 6/9, 17/11, कुमारसम्भव 8/85, विक्रमोवर्षीयम्– 4/150, 4/158, 4/162, 4/166, 4/171, 172, ऋतुसंहार– 1/8, मालविका0– 2/182, रघुवंश– 6/9, 1/39, 19/14, कुमारसम्भव– 1/45, शाकुन्तलम्– 5वां अंक, मालविका0– 2/81, 1/21, 1/22, रघु0– 6/9, 19/35, 15/69, 8/41, विक्रम् 2/18 आदि।

प्राचीन काल में युद्ध, ऐश्वर्य, पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर तूर्यादि मंगल वाद्यों का वादन तथा स्तुति गान होता था इसका वर्णन संस्कृत महाकाव्यों में पाया जाता है। रघुवंश में युद्ध का वर्णन करते हुए कहा गया कि शंख की ध्वनि को सुनकर अज के योद्धा फिर लौट आये। सोते शत्रुओं के बीच उन्हें अज ऐसा लगे मानो मुंदे हुए कमलों के बीच में चन्द्रमा चमक रहा हो–

शंखस्वनाभिज्ञतया ..... प्रतिमा भाशांकम्।

इसी प्रकार का वर्णन शिशुपाल वध में भी मिलता है–

गान्धर्व भूयिष्ठतया समानतां स सामवेदस्य दधौ बलोदधि।

अर्थात् विविधताओं से भरा हुआ सेना समूह सहस्रो शाखाओं वाले गन्धर्व गान की बहुलता से अस्थिर बुद्धि वाले व्यक्तियों के द्वारा कठिनाई से पढ़ने योग्य सामवेद के समान हो गया।

इस संदर्भ में माघ कवि कहते है कि सर्वत्र व्याप्त निर्बाध शंख की ध्वनिमाला और श्रीकृष्ण के चलने पर बजाये गये नगाड़े के शब्द ने दोनों प्रकार के भूभृतों को व्यथित कर दिया। युद्ध प्रारम्भ होने पर मांगलिक दुन्दुभि बजायी जाती थी। रघु के जन्म के अवसर पर **मनोहर बाजे और वेश्याओं के नाच पर हो रहे थे। आकाश में देवताओं के यहाँ भी नाच–गाने हो रहे थे।** पुत्रवान राजा दशरथ के यहाँ पुत्रजन्म के समय **नगाड़े** आदि बाद

में बजे, पहले देवताओं ने ही स्वर्ग में बधाई की दुन्दुभि बजा दी–

पुत्रजन्म प्रवेश्यानां तूर्याणां..... चक्रदेवदुन्दुभयोदिवि।

अश्वघोश के काव्य में भी पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में नृत्य उत्सव की बात कहीं गई।

नैशधीय चरितम में श्री हर्श ने पाड्य–नृप की रीति का वर्णन करते हुए कहा–

महावंशममुमाश्रिता सकौतुकं नृत्यति कीर्तिनर्तकी।

अर्थात् पाड्य नरेश की कीर्ति भूमंडल को व्याप्त करके उस महावंश का सहारा लेकर नाच रही है। कवि **कुमारदास** भी संगीत की चर्चा करते हुए कहते है कि–

श्रेष्ठ चारणों के मुख से निकली हुई राजपुत्र राम की जयघोषणा गूँज रही थी और उसके मंगल के हेतु बजाये गये **शंखों के नाद** से तुरही की ध्वनि प्रचण्ड हो गई थी।

नल दमयन्ती के मंगल परिणय के अवसर पर वाद्य विनाद चारों ओर व्याप्त हो गया जिससे असन्तुष्टों के अशुभ और कर्णकटु वचन कानों तक न पहुँचे।

संगीत शास्त्र में चार प्रकार के वाद्यों का कथन किया है– (1) तत् अर्थात् तार वाले वीणा आदि (2) **अवनद्ध**–चमड़े से मढ़े हुए मृदंग, पटह आदि (3) **धनवाद्य**– झांझ – मंजीरा आदि, (4) **सुशिर वाद्य**– वंश वेणु आदि।

नैशधीय चरितम में चारों प्रकार के वाद्यों का वर्णन मिलता है। विवाह के मंगल अवसर पर नल के कुंडिन पुरी आने पर चारों प्रकार के धन, तत्, अवनद्ध और सुशिर वाद्य उच्च स्वर में बजने लगे। राजगृहों में संगीत शालाएं भी होती थी। राजा अज अपनी प्रिय पत्नी को संगीत आदि ललित कलाओं की शिक्षा देते थे।

प्रियाशिष्या ललिते कलाविधौ।

यहाँ आयोजित आमोद प्रमोद में गीत वादन और नृत्य का प्रमुख समावेश था।

अग्निवर्ण **पुष्कर** वाद्य बजाने में अत्यन्त पारंगत था। उस वाद्य के द्वारा वह नर्तकियों की संगत करता था। वह अनेक करणों व लयों का प्रयोग करता था जिससे नर्तकियाँ अपनी लय से भ्रष्ट हो जाती थी। इस प्रकार अभिनय में त्रुटियाँ होने के कारण वे नर्तकियाँ आचार्यों के सामने लज्जा से युक्त हो जाती थी–

स स्वयं प्रहत पुष्करः ..... गुरूश्वलज्जयत।

राक्षस राज रावण भी प्रेमी था। अकेला रावण ही अपने हाथों से अनेक प्रकार की वीणा, घन आदि वाद्यों को बजाता हुआ, आठ मुखों से मन्द्र, मध्य एवं तार सप्तक में गाता हुआ एक युवती को नचा रहा था–

ततवितत घनाद्यं ..... गायन्

नैशधीय चरितम का नायक राजा नल वेणु वाद के द्वारा पंचम स्वर की मूर्च्छनाओं में

अलाप किये जाने पर वह सभा से ही मूर्छित हो गया।

संगीत के तीन ग्राम और उनकी इक्कीस मूर्च्छनाओं की चर्चा करते हुए **शिशुपाल** वध में कवि माघ ने कहा– जब नारद आकाश से नीचे उतर रहे थे तो उनकी महती नामक वीणा के तारों से सप्त स्वर प्रकट हो रहे थे और उनसे ग्राम विशेशों की मूर्च्छनाए प्रकट हो रही थी।

रणद्विराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुति मण्डलै स्वरैः।

स्फुटीभवद्ग्राम विशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणां महतीं महुर्मुहः।।

भरतमुनि ने मूर्च्छना की परिभाषा देते हुए कहा–

क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छनास्त्वाभिसंज्ञिता।

अर्थात् सप्त स्वरों का क्रमिक संस्थान मूर्च्छना कहलाता है। मतंग ने सप्तस्वरों के आरोह–अवरोह दोनों क्रमों को मूर्च्छना की संज्ञा दी है–

आरोहणावरोहण क्रमेण स्वर सप्तक्रम।

नारद मुनि वीणा वादन और गान विद्या में सिंद्धहस्त माने जाते है और गन्धर्व वधुओं ने नारद से ही गायन और वादन की शिक्षा ली थी। लेकिन दमयन्ती के कमल मुख का कंठताल इतना माधुर्य पूर्ण था कि उसके प्रवहण शील स्वर के सम्मुख गन्धर्व रमणियाँ के कंठ स्वर और उनकी बजायी वीणा के स्वर फीके थे।

रघुवंश में भी नारद दक्षिणी समुद्र के किनारे गौकर्ण वासियों को वीणा वादन के साथ गाना सुनाने के लिए जा रहे है।

दमयन्ती की सभा पूर्ण संगीतमय थी। उस सभा में कोई बाला रागालाप कर रही थी, उसका स्वर इतना मधुर था कि उसके सम्मुख **कोकिल, वंशी और वीणा** के स्वर भी नगण्य प्रतीत हो रहे थे–

कण्ठः किमस्याः पिक वेणुवीणास्तिस्त्रो जिताः सूचयति त्रिरेखः।

सौध में किन्नरियों के श्रृंगार रस प्रचुर मधुर गान की झंकृति निरन्तर प्रवहमान रहती थी, तब लगता था कि दमयन्ती से गान–शिक्षा प्राप्त करने उस ऊँचे प्रसाद मे किन्नरियाँ निरन्तर आया करती थी।

नृत्य गीत और वाद्य इस तौर्यत्रिक का आनन्द महाकाव्य के नायक नल को एक साथ प्राप्त हो जाता है, जब उसे विलास बाबड़ी तट से टकराती लहरों से वादन, कोकिल भ्रमरों से **गीत** और मयूरों के **नृत्य कौशल** से नर्तन का आनन्द मिला।

गायन के साथ वादन कला को चार चाँद लगा देता है। जानकीहरणम् में जब देवताओं की स्त्रियाँ गा रही थी तुम्बरू की वीणा उनका साथ दे रही थी–

सुरयुवतिकदम्बकस्य गीतैरनुगततुम्बरूवल्लकी निनादे।

प्रातः काल के गायन में **शड्ज, ऋशभ** और **पंचम** स्वर का निशेध माना गया है। इस नियम का पालन शिशुपाल वध में किया गया है। जब प्रातः काल में बन्दीजन इन उक्त स्वरों को त्यागकर प्रभात का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण को जगाने के लिए गान करते है।

किरातार्जुनीयम में भी द्रौपदी युधिश्ठर से कहती है कि पहले आप महामूल्यवान शैय्या पर सोते हुए बन्दी जनों के गायन से जगाये जाते थे और आज आप अमंगल श्रृंगालियों के शब्द से जागते है।

अतः स्पष्ट होता है कि ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इसमें साहित्य सौन्दर्य, माधुर्य, सरलता, सहजता, प्रसाद, प्रवाह, ओज, लयात्मकता व लालित्य विद्यमान है। यह आत्मा को आनन्द की चरम सीमा तक पहुँचाने वाला है। संगीत में अथाह गहराई, गम्भीर मन्थन, सिद्धान्त नियम एवं परम्परा समाहित है। संगीत सम्राट तानसेन ने अपने संगीत के प्रभाव से पत्थर को पानी करके यह साबित कर दिया कि शास्त्रीय संगीत में आलौकिक शक्ति है। अतः सिद्ध है कि संगीत एक साधना है, तपस्या है, अभ्यास है, और कला है जिसका प्रभाव जन–मानस पर सहज ही पड़ता है और मनुष्य के सारे सन्ताप समाप्त हो जाते है। हमें मानव जीवन में संगीत के महत्व के स्वीकार करना ही पड़ेगा।

सन्दर्भ

1. संगीत रत्नाकर– 1/21, गीतं वाद्यं तथा नृत्यं संगीतमुच्यते।
2. पूर्वमेघ– पृ0 56
3. पूर्वमेघ– 2/12
4. कुमारसम्भव– 1/8
5. रघुवंश– 1/39
6. कुमारसम्भव– 6/40– पूर्वमेघ–5, मल्लिका–1/21
7. मेघदूत– पूर्वमेघ–9
8. रघुवंश 13/40
9. रघुवंश 13/40
10. कुमारसम्भव– 1/45
11. ऋतु– 1/8
12 मालविः– 1/22
13. मेघदूत– उ0मे0– 26
14. अभिज्ञान शाकुंतलम्– 5वां अंक
15. रघुवंश 8/67
16. रघुवंश 7/64

17. शिशुपाल वध– 12 / 11
18. शिशुपाल वध– 12 / 13
19. शिशुपाल वध– 13 / 25
20. रघुवंश– 3 / 19
21. रघुवंश– 10 / 76
22. बुद्धचरितम्– 1 / 32
23. नैशध– 12 / 16
24 जानकीहरणम्– 7 / 39
25 नैशध– 14 / 97
26. नैशध– 15 / 16
27. रघुवंश– 8 / 67
28. रघुवंश– 19 / 14
29. जानकीहरणम्– 1 / 52
30. नैशध– 1 / 52
31. शिशुपालवद्य– 1 / 10
32. नाट्यशास्त्र– 27 / 31
33. वृहद्देशी– 22 / 23
34. नैशध– 6 / 65
35. रघुवंश– 8 / 33
36. नैशध– 6 / 59
37. नैशध– 18 / 18 यत् पुरः पुरा किन्नरीविकट गीति झंड्.कृतिः।
38. नैशध– 1 / 102
39. जानकीहरणम्– 16 / 61
40. शिशुपाल वध– 11 / 1
41. किरातार्जुनीयम– 1 / 38

सिंधिया कालीन ग्वालियर राज्य में धर्म का स्वरूप

अवधेश कुमार निरंजन*

ग्वालियर राज्य की स्थापना में मराठा पेशवाओं के स्वामीभक्त राणोंजी सिंधिया की महत्वपूर्ण भूमिका थी। राणोंजी सिंधिया मराठा संस्कृति एवं धार्मिक मान्यताओं एवं विश्वास के प्रवर्तक थे, परन्तु वे हिन्दुत्व की अवधारणा के समर्थक होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं रखते थे जिसके कारण राणोंजी सिंधिया के काल में प्रत्येक पंथ एवं धर्म के लोग पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ अपनी धार्मिक पद्यतियों के आधार पर पूजा अर्चना आदि स्वाभाविक रूप से करते थे।

राणोंजी सिंधिया के पश्चात जयप्पा जी सिंधिया, जनको जी सिंधिया तथा दौलतराव सिंधिया आदि प्रारम्भिक सिंधिया शासकों ने राज्य के धार्मिक स्वरूप को यथावत रखा तथा राज्य में धार्मिक मान्यताओं–परम्पराओं एवं विश्वासों का सम्मान करते हुए यथावत धार्मिक नीति के सिद्धान्तों का आचरण किया।[1]

ग्वालियर राज्य के प्रारम्भिक सिंधिया शासकों में महादजी सिंधिया कुशल युद्ध संचालक एवं शासन के साथ–साथ कूटनीतिज्ञ भी थे। उनकी कूटनीति का प्रभाव राज्य के धार्मिक स्वरूप पर भी दिखलाई पड़ता है।

महादजी सिंधिया को तीर्थ स्थानों से अटूट प्रेम था। इसी कारण उन्होंने पहले उज्जैन को राजधानी बनाया। उज्जैन में गंगा घाट तथा बालाजी नामक धार्मिक स्थलों में श्रीमंत महादजी सिंधिया ने 500 मनुष्यों को प्रतिदिन भोजन देने वाला अन्न क्षेत्र को अपने जीवन काल में अनवरत बनाये रखा। इन्हें सदावर्त अन्न क्षेत्र कहते थे। सिंधिया शासकों ने मन्दिरों की स्थायी व्यवस्था हेतु कृषि योग्य भूमि की जागीरें दे रखी थीं।

महादजी सिंधिया के दत्तक पुत्र श्रीमंत दौलतराव सिंधिया ने अपने पिता की धार्मिक नीतियों को राज्य में चलाने का सफल प्रयास किया। इन्हीं के काल में ग्वालियर सिंधिया शासकों की राजधानी बनी। दौलतराव सिंधिया ने हिन्दुओं के अतिरिक्त बहुत से मुस्लिम प्रजा को गांव व भूमि प्रदान की। दौलतराव सिंधिया की मृत्यु के पश्चात् जनकोजी राव द्वितीय शासक बने। इनका अधिकांश समय कठिनाईयों में बीता, ऐसी परिस्थिति में राज्य में सर्व धर्म भाव पर आधारित धार्मिक नीति का पालन किया।

जनकोजीव राव सिंधिया की मृत्यु के पश्चात् जयाजी राव सिंधिया ग्वालियर राज्य के शासक बने।

महादजी सिंधिया के समय में दशहरा पर्व पूर्ण धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप माँ काली को अर्चना के साथ धूमधाम से मनाया जाता था। निःसंदेह दशहरा हिन्दुओं का एक महत्वपूर्ण पर्व है। परन्तु ग्वालियर राज्य के यह पर्व धार्मिक मान्यताओं पर होते हुए भी एक

*शोध छात्र, इतिहास, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर

शासकीय उत्सव की तरह मनाया जाता था जिसके कारण प्रत्येक धर्म के लोग कम महोत्सव में संलग्न होते थे।[2]

जयाजीराव सिंधिया ग्वालियर राज्य के प्रथम शासक थे जिन्होंने राज्य में सर्वधर्म समभाव की भावना विकसित करने के उद्देश्य से सभी धर्मों को समान्तर रूप से न केवल महत्व दिया बल्कि शासकीय मान्यता भी प्रदान की जयाजीराव सिंधिया के काल में ही सर्वप्रथम इस्लाम धर्म के मुस्लिम समाज के उत्सवों को प्रत्यक्ष सहयोग प्रदान किया और इसी समय मुस्लिम समाज के द्वारा निकाले जाने वाले ताजियों में सिंधिया शासकों के नाम से एक ताजिया निकालने की परम्परा जारी हुई जो वर्तमान तक जारी है।[3]

ग्वालियर राज्य का वास्तविक प्रशासनिक स्वरूप माधवराव सिंधिया प्रथम के काल में दिखलाई पड़ता है, जिसकी राजधानी ग्वालियर थी। माधवराव सिंधिया प्रथम ने चूंकि एक पूर्ण स्थापित राज्य के रूप में ग्वालियर राज्य के शासक का भार ग्रहण किया था और उनका ग्वालियर राज्य के शासक के रूप में लंबा कार्यकाल रहा।[4]

माधवराव सिंधिया प्रत्येक धर्म के धर्माधिकारियों का सम्मान करते थे उन्होंने राज्य के धार्मिक स्वरूप में धार्मिक सहिष्णुता स्थापित करने के उद्देश्य से राज्य के हिन्दु मुस्लिम सिक्ख तथा ईसाई धर्म के अनुयायियों की धार्मिक भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए प्रत्येक धर्म के लिए राज्य के शासकीय कोश से धार्मिक स्थलों के विकास एवं निर्माण के लिए आर्थिक सहयोग प्रदान किया।[5]

ग्वालियर राज्य की राजधानी ग्वालियर के हृदय स्थल फूलबाग में हिन्दुओं के लिए **'राधागोपाल मंदिर'** मुसलमानों के लिए मस्जिद सिक्खों के लिए गुरूद्वारे तथा ईसाईयों के लिए चर्च का निर्माण राज्य से वित्तीय सहायता प्रदान कर करवाया। भारत में बहुत कम स्थानों पर ही चारों प्रमुख धर्मों के आराधना स्थल एक ही स्थान पर स्थापित हैं।[6]

ग्वालियर राज्य के धार्मिक स्वरूप के अन्तर्गत माधवराव सिंधिया के काल में धर्म आधारित जनसंख्या के आधार पर दूसरा स्थान इस्लाम के अनुयायियों का था। माधवराव सिंधिया ने ग्वालियर राज्यान्तर्गत के इस्लाम धर्म के अनुयायियों के लिए अनेकों मस्जिदों का निर्माण करवाया जिसमें ग्वालियर फूलबाग स्थित मस्जिद, धार की सुनहरी मस्जिद तथा गुना की मस्जिद प्रमुख है।

सिंधिया कालीन ग्वालियर राज्य में माधवराव प्रथम के काल में धार्मिक स्वरूप में सिक्ख धर्म एक महत्वपूर्ण ईकाई था। ग्वालियर राज्य में सिक्ख सम्प्रदाय द्वारा अपने धार्मिक गुरूओं के जनमोत्सवों तथा गुरू का धूमधाम के साथ आयोजन किया जाता था इन अवसरों पर सिक्ख लोग वगैर किसी धार्मिक भेदभाव के सभी धर्म के लोगों को भोजन आदि कराकर ग्वालियर राज्य में धार्मिक स्वरूप को समन्वयात्मक स्वरूप प्रदान करते थे।

हिन्दु, मुस्लिम तथा सिक्ख धर्म के अनुयायियों के समान ही ग्वालियर में जैन

धर्मावलंबियों का स्थान था माधवराव सिंधिया ने प्राचीन जैन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया तथा नवीन जैन धर्म मन्दिर स्थापित करने में शासकीय सहयोग भी प्रदान किया।[7]

माधवराव सिंधिया ने ग्वालियर राज्यान्तर्गत ग्वालियर में चर्च का निर्माण भी कराया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सिंधिया कालीन ग्वालियर राज्य में माधवराव सिंधिया के काल में राज्य का धार्मिक स्वरूप अत्यन्त समन्वयात्मक था तथा प्रत्येक धर्मा का धर्मावलंबी अपने धार्मिक मूल्यों के आधार पर जीवन पद्धति से जीने की स्वतन्त्रता रखता था।

ग्वालियर राज्य की स्थापना से लेकर भारतीय गणराज्य में विलीनीकरण तक के धार्मिक स्वरूप का अध्ययन करने के बाद हम इस निश्कर्श पर पहुँचते हैं कि ग्वालियर राज्य एक आदर्श पंथ निरपेक्ष राज्य था। राज्य के सम्पूर्ण धार्मिक स्वरूप को हम दो काल खण्डों में देखते हैं प्रथम कालखण्ड प्रारम्भ से लेकर जयाजीराव सिंधिया का काल इस काल में धर्म पुरोहितों के आधीन पूर्णतः स्वतन्त्र ईकाई था जिसमें शासन का कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप अथवा आश्रय नहीं था। द्वितीय काल माधवराव सिंधिया से लेकर राज्य के विलीनीकरण के रूप में देखा जा सकता है माधवराव सिंधिया ने राज्य की धार्मिक स्वतन्त्रता को यथावत रखते हुए धर्म को शासकीय आश्रय प्रदान किया प्रत्येक धर्म के पुरोहितों एवं धार्मिक स्थलों को न केवल शासकीय, वित्तीय सहायता प्रदान की गई बल्कि उनके धार्मिक स्थलों का राज्य द्वारा निर्माण भी कराया गया।[8]

उपरोक्त विवेचना के बाद हम यह निष्कर्षताः कह सकते हैं कि सिंधियाकालीन ग्वालियर राज्य का धार्मिक स्वरूप प्रारम्भ से लेकर अन्त तक समन्वयात्मक था।

सन्दर्भ

1. राजेश सिंह सिसौंदिया, सिंधिया शासकों का ग्वालियर के सांस्कृतिक विकास में येागदान, अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, 1998 पृ.सं. 117 ।
2. जयाजी प्रताप–स्वर्ण जयंती विशेशांक, 1905।
3. संजय मंजूपुरिया, ग्वालियर का इतिहास और उसके दर्शनीय स्थान, पृ.सं. 105 ।
4. वही।
5. रिपोर्ट ऑफ दि इकोनोमिक एण्ड इण्डस्ट्रीयल सर्वे कमीशन, ग्वालियर स्टेट, 1932।
6. शोध छात्र द्वारा स्वयं के सर्वेक्षण के आधार पर।
7. राजेश सिंह सिसौदिया, पूर्वोक्त, पृ.सं. 194 ।
8. वही।

''कालिदास के साहित्य में नारी–चित्रण''

डॉ. सुमन सिंघल*

संस्कृत साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र तथा नाट्यशास्त्र के प्रणेता शिरोमणि कालिदास को कौन नहीं जानता? उन्होंने नाट्यजगत के माध्यम से तत्कालीन समाज के प्रत्येक क्षेत्र की विवेचना बड़े ही मार्मिक एवं हृदयग्रही रूप में की है। इनका श्रृंगारिक प्रसंग बड़ा ही उदात एवं पारदर्शी है। अपने तीनों नाटकों– **मालविकांग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् और अभिज्ञानशाकुन्तलम्।** के माध्यम से तद्युगीन समाज के नारी–चित्रण कर उनकी दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

कालिदासजी ने संस्कृत नाटकों के अनुशीलन में नारी का बड़ा ही विषद् एवम् हृदयग्राही का वर्णन किया है। नारी के धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की जननी कहा गया है जोकि प्रमाणिक भी है तथा शास्त्र सम्मान भी। उनके आदर्श क्रियाकलापों एवं अनुभवों से समाज के विकास में उनका सक्रिय योगदान रहा है। भरत मुनि ने कहा है –

''सर्वः प्रायेणलोकोऽयं सुखमिच्छति सर्वदा

सुखस्य च स्त्रियो मूलं नानाशीलधराश्चताः

अर्थात् नारी के मूल में शीलता, वैभव और सौख्य की जननी और मानवमात्र का चरम लक्ष्य सुख है। सुख का मूलाधार नारी है। इसी संदर्भ में मनुस्मृति में भी कहा गया है –

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''

अर्थात् जहां नारियों का आदर एवं सम्मान होता है वहां देवता निवास करते हैं। यहां नारी को समाज में पुरूष के समान ही प्रमुख एवं अविभाज्य अंग माना गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कोमल हृदया संवेदनशील नारी समाज और उसकी क्रियाओं में अविरल सहयोग दे रही है और भविष्य में देती रहेगी। राजनीतिक क्षेत्र में भी इनके कार्य सराहनीय रहे हैं। जैसे कि इंदिरा गांधी, लक्ष्मीबाई, और अनेक स्त्री सांसद आज भी देश की बागडोर संभाल रही है। लड़ाई का मैदान हो या अंतरिक्ष या नासा में अनुसंधान या पर्वतारोहण का दुस्तर कार्य, ये सेना के तीनों नाट्यशास्त्र अंगों में नियुक्त होकर अपने अदम्य साहस एवं कार्यक्षमता का परिचय दिया है। जैसा कि **''मालविकाग्निमित्रम्''** में रानी धारिणी ने अशोक दोहदोत्सव में प्रमुखता एवं उत्साहपूर्वक पति एवं पारिवारिक सदस्यों के साथ अपने पद की गरिमा निबाही है –

"देवी विज्ञापयति तपनीयाशोकस्य कुसुम सहदर्शनेन ममारम्भः सफल क्रियतामिति।"

अर्थात् उत्सव की रौनक को सफल बनाने के लिए रानी धारिणी की ही वास्तविक

[1]नाट्यशास्त्र, २०–९३

भूमिका रही है। राजसभा में रानियां अपने पदक्रमानुसार आसन ग्रहण कर अपनी सलाह देकर राजकार्य में सहभागी बनती थी। नाटक अविमारकम् में **"यत्र स्थित्वा राजा प्रकृर्तिभि रूपास्यते"** अर्थात् प्रजा देववत् राजा की उपासना करती थी। जिस स्थान पर राजा का दरबार लगता था उस सभा में राजा की पट्टमहिषी उनके साथ बैठती थी। **''अये महाराजो देव्या सहास्ते''** राजमहल में स्त्री परिचारिकाओं **येवनी, उद्यान पालिका, बन्दीगृहरक्षिका** आदि का उल्लेख इस मत का प्रमाण है।

आलोच्य नाटक युग में नारी के जीवन की प्रारम्भिक अवस्था एवं नारी जीवन की सार्थकता गृह एवं परिवार में ही होती थी, है, और होगी। वह घर की स्वामिनी होती थी और गृहिणी संज्ञा से संबोधित की जाती थी। कर्त्तव्य एवं अधिकारों के मध्य उचित तारतम्य स्थापित करने वाली नारी ही सुगृहिणी कहलाती थी। जैसा कि ऋषि कण्व के इस उपदेश से स्पष्ट होता है –

''यान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयोः वामाः कुलस्याधमः।।

अर्थात् सामंजस्य स्थापित करने वाली नारी गृहलक्ष्मी कहलाती थी और इसके विपरीत चलने वाली स्त्री कुल के लिए अधम चरित्र वाली कहलाती थी। इस संदर्भ में **''अभिज्ञानशाकुन्तलं''** का यह श्लोक साक्ष्य है।

शुश्रुषस्व गुरून्कुरू प्रियसखीवृत्तिं सपन्नीजने पत्युर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः भूमिष्ठं यव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सोकियान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः

अर्थात् ''अपने गुरूजनों की सेवा करना, अपनी सौतों के साथ प्रिय सखी सा व्यवहार करना, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के आवेश में आकर पति के प्रतिकूल कार्य मत करना, अपने आश्रितों पर अत्यन्त उदार रहना, अपने ऐश्वर्य का अभियान मत करना, इस प्रकार आचरण करने वाली स्त्रियां गृहलक्ष्मी के पद पर अधिष्ठित होती हैं और इसके विपरीत चलने वाली कुल के लिए अभिशाप होती है।''

ऋषि कण्व ने शकुन्तला की विदाई के अवसर पर तपस्वी एवम् वनवासी होते हुए भी परिवार की जिम्मेदारी निभाने का बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया है। इनका यह उपदेश संयुक्त परिवार में या परिवार में सुख–शांति के लिए बड़ा ही हृदयग्राही एवं सशक्त है। भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जहां इस प्रथा का पालन बड़े मान–सम्मान से किया जाता है यहां अभिभावकों की सेवा पूजा तुल्य होती है पर आधुनिक युग में कुछ विकार आ गए हैं क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता की छाप दिखाई देने लगी है। तद्युगीन समाज में पत्नी पति के साथ

[1]मालविका – ५–३४२
[2]अवि. अंक ९ पृ० १५
[3]अभि०शा० २ अंक पृष्ठ–२६
[4]अभि० शा० अभि०शा० अंक २ पृष्ठ २६
[5]मालविका – अंक ३ पृ० २९०
[6]माल–अंक ४ पृष्ठ ३१६

गृहस्थाश्रम के पश्चात् पुनः वानप्रस्थाश्रम के पालन करने हेतु परन्तु अपने वीर एवं अग्रज पुत्र पर कार्यभार सौंपकर ही प्रवेश कर सकती थी, अर्थात् **''शान्ते करिष्यति पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्''** ऋषिकण्व का कहने का तात्पर्य है कि अपने गृहस्थ आश्रम के सम्पूर्ण कार्यभार सौंपकर अपने पति के साथ इस आश्रम में प्रवेश करेगी।

यह तो सत्य है कि कन्या को विदा करते समय माता को ही अत्याधिक दुःख होता है।''

यों तो समसामयिक समाज में विवाह के कई प्रकार थे। सीता का विवाह स्वयंवर सभा से तथा **''अभिज्ञानशाकुन्तलम्''** में गांधर्व विवाह जगत प्रसिद्ध है। समाज में मनपसंद कर चुनने के लिए स्वतंत्र वे थे। प्रसिद्ध नाटक में वर्णन मिलता है–

गान्धर्वेण विवाहेन राजर्षिकन्यकाः

श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः

अर्थात् बहुत ही राजर्षिकन्यों की कन्याओं ने गान्धर्व विवाह किया और उनका यह कार्य उनके पिताओं के द्वारा समर्थित हुआ ऐसा उल्लेख हुआ है।

माता–पिता द्वारा वर–वधु का चुनाव मनपसंद नहीं होता तो वे किसी भी प्रकार से अपनी इच्छा से अवगत करा देते थे जैसा कि नाटक 'अविमारकम्' में उल्लेख मिला है।

'एतदलीकम् अहमात्मनः प्रभवामि''

इस प्रकार के प्रस्ताव पर अभिभावक भी 'सात जन्मों का साथी' वाली कहावत पर विचार कर समर्थन दे देते थे और आज के युग में भी दे रहे हैं। परन्तु इनके मन में यह इच्छा तो अवश्य रहती थी कि चुनाव उनके कुल के अनुकूल हो जिससे उन्हें समाज में प्रतिष्ठा मिल सके।

तद्युगीन समाज में बहुविवाह भी प्रचलित था। इसलिए उन्हें अपने पति की प्रतिष्ठा एवं इच्छा तथा उन्हें प्रसन्न रखने का हरसंभव प्रयास करना होता था। वह सामाजिक उत्सवों आमद–प्रमोदों में भाग लेना मृगया आदि के अवसरों पर भी वे पीछे नहीं हटती थी। पति का सम्मान एवं उनका स्नेह प्राप्त करना ही पतिव्रता नारी का परम ध्येय होता था। उसे सदैव अपने स्वामी के कष्टों एवं दुःखों की ही चिंता रहती थी। पति की प्रसन्नता के वह सपत्नीत्व भी स्वीकार कर लेती थी। कालिदास जी लिखते हैं–

प्रतिप्रक्षेणपि पति सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साधव्यः

पति की प्रेयसी रानी होते हुए भी वह अपने पति की सेवा किया करती थी। इसके विपरीत पति द्वारा निरादित या निन्दनीय नारी का जीवन निष्फल सा होता था। अपने

[1]अभि०शा० ४.१८
[1]अभि०शा० ३–२०
[2]अवि० – ६०

आचरण पर लगाए गए दोषारोपण को सहन करना उनके लिए असहनीय होता था। 'अभिषेक नाटकं' उल्लेखित है कि सीता अपनी पवित्रता को सिद्ध करने के लिए सहर्ष अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं।

तत्कालीन युग में वह विभिन्न रूप में प्रेमिका और मातृ प्रेम के विभिन्न रूपों में अपनी कर्त्तव्य की पूर्ति बड़ी कुशलता से करती है पर वे व्यक्तिगत रूप से स्वेच्छाचारिणी नहीं होती थी। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में उल्लेखित है–

''आर्य! धर्मचरणेऽपि परवशोऽयः जना। गुरोः पुनरस्यां अनुरूपं वर प्रदाने संकल्पः।

अर्थात् गुरुजनों के साथ–साथ **''दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी''** पति का भी पूर्ण नियंत्रण नारी पर रहता था और इनका यह मत सर्वमान्य एवं समाज में प्रतिष्ठित भी था। पति की इच्छा अनिच्छा ही पत्नी की इच्छा–अनिष्छा होती थी। विवादित पक्ष पर मातृकुल का कोई हस्तक्षेप विचारणीय नहीं होता था और न उन्हें इससे सम्बन्धित कोई अधिकार होता था। पति पत्नी पर अनुकर है या नहीं पर नारी को अपना पूर्ण जीवन वहीं बिताना होता था। ऋषि कण्व ने बड़ा ही मार्मिक प्रसंग दिया है –

'अथ तु वेत्सि शुचीव्रतमनः पतिकुले तब दास्यमपि क्षमम्''

अर्थात् यदि तु अपने आचरण को पवित्र समझती है तो पति के परिवार में तुझे दासता करनी भी उचित है। कहने का अभिप्राय है कि तत्कालीन समाज में नारी किसी भी रूप में स्वतंत्र नहीं थी।

कालान्तर में पत्नी जब मातृ सुख से विभूषित होती थी तो वह और भी वंदनीय एवं सम्मानित हो जाती थी। गुरूजन या परिवार के वरिष्ठ सदस्यों द्वारा **''भर्तुबहुमानसूचक महादेवी शब्दं लभस्वं'' या भर्तुरभिमता भव'** आदि आशीर्वाद से अलंकृत किया जाता था। पुत्रवती स्त्री वंश को चलाने वाली होने के कारण पति को अत्याधिक प्रिय होती थी। शकुन्तला के द्वारा प्रणाम करने पर ऋषि कश्यप उत्तम संतान का आशीर्वाद देते हुए कहते हैं –

''ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव सुतं त्वमपि सम्राजं सवें पुरूमवाप्नुहि''

अर्थात् शर्मिष्ठा की भांति ययाति की प्रियरानी ने जैसे पुरु पुत्र को प्राप्त किया उसी प्रकार तुम भी सम्राट पुत्र को प्राप्त करो। अर्थात् **''वीर प्रसविनी भव''**

समसामयिक युग में बहुविवाह का भी वर्णन आता है। यह प्रथा पुरूषों की कामुक

---

[1]मालविका – ५ –१९
[1]अभि०शा० – ९.२९
[2]अभि०शा० – ५.२६
[3]अभि०शा० – पृ० ४–६५
[4]अभि०शा० – पृ० ६–१४५
[5]अभि०शा० – पृ० ४–६
[6]विक्रम० ५– पृ० २४८

वृत्ति की शान्ति को दर्शाती है। पद प्रतिष्ठा के गौरव के कारण वह विवाह पर विवाह करता जाता था और स्त्री अपनी परवशता पर आंसू बहाकर शान्त हो जाती थी। जैसा कि मालविकाग्निमित्रम्' में दर्शाया गया है। **''किमतः परम?मालविका बकुलावलिका च निगऽत्यावहष्टसूर्यपादं पातालवासं नागकन्यके इवानुभवतः।''**

अर्थात् राजा से विदूषक कह रहा है कि इसके आगे क्या? मालविका और बकुलावलिका के चरणों में बेड़ियां डाल दी गयीं और सूर्य–किरणों के दर्शन से वंचित वे दोनों नागकन्या के समान पातालवास का अनुभव कर रही है।''

समसामयिक नाटकों में विधवा स्त्री का जीवन कष्टमय दर्शाया गया है। मालकिवाग्निमित्र में **''पुनर्नवी कृतवैधव्य दुःखया''** विधवा स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् तपस्विनी–सम–जीवन व्यतीत करती थी। मांगलिक कार्यों में उनकी उपस्थिति मंगलमय नहीं मानी जाती थी। विधवा स्त्री के लिए दायधिकार का नियम नहीं था जिसके अनुसार वह पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं मानी जाती थी। **'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'** में यह पंक्ति साक्ष्य है कि संतान होने पर वह सम्पत्ति का अधिकारी होता था। **''ननु गर्भः पित्रयं रिक्यमर्हति''।**

कहने का अभिप्राय यह है कि सेठ धनमित्र की मृत्यु के पश्चात् उसकी समस्त सम्पत्ति गर्भस्थ बालक होने के कारण राजकीय होने से बच गई। आलोच्य नाटकों में पर्दाप्रथा का भी उल्लेख हुआ है। संभ्रांत कुल की स्त्रियं और राजान्तःपुर की नारियाँ पर्दें में आती जाती थी जैसा कि **''कृत्वाऽपनीत कचुकाया शिविकायाम्''** अर्थात् उन्हें कोई देख न सके इसलिये वे रेशमी पर्दों से ढकी हुई पालकी में बैठकर यत्र–तत्र जाया करती थी। परन्तु यही अवगुण्ठन यज्ञ, विवाह, व्यसन आदि स्थानों पर करने की मनाही थी जैसा कि उल्लेख है –

निर्दोषहष्टया हि भवन्ति नार्यो यज्ञे, विवाहे, व्यसने वने च। यों तो उनकी गरिमा व सुन्दरता, शालीनता अवगुण्ठन में ही शोभित होती थी। साथ ही वे कामुक दृष्टियों से भी छिपी रहती थी। सभ्य समाज का पुरूष वर्ग भी घूंघट वाली नारी को देखने के लिए लालायित रहता था। जैसा कि वर्णित है – **''का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुट शरीर लावण्या।''** अर्थात् राजा दुष्यन्त सोच रहे हैं ऋषि समाज में यह घूंघटवाली स्त्री कौन है जिसका सौंदर्य नजर नहीं आ रहा है।

घूंघट में छिपी नारी को देखने की उत्सुकता भी बहुत ही मनोहारी व चुहलपूर्ण होती थी पर साथ ऐसा भी प्रचलन एवं उदाहरण है कि दुष्यंत की अस्मरण को स्मरण करने के लिए शकुन्तला को अवगुण्ठन हटाकर सभा में लाया गया पर श्रापवश उनके विस्मृत पटल पर कुछ भी स्मरण नहीं हुआ।

---

[1]मालविका ४–१३५
[2]मालविका ५–२०२
[3]प्रतिज्ञा – ३ अंक पृष्ठ ९३
[1]प्रतिज्ञा – १ अंक पृष्ठ २९
[2]मृच्छ – १० अंक पृष्ठ ५९८

तत्कालीन समाज में कुल नारियों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की सार्वजनिक स्त्रियां भी होती थी जो 'गणिका' नाम से पुकारी जाती थी। ये समाज में निन्दित दृष्टि से देखी जाती थी। सभ्य घरानों में इनका प्रवेश वर्जित था पर सभ्य व धनाढ्य पुरूष इनको विपुल धनराशि महफिल की शोभा बढ़ाकर इनको विपुल धनराशि से प्रसन्न किया करते थे। कहीं–कहीं पर इन्हें **'वधू'' अर्थात् आर्ये वसन्तसेने। परितुष्टो राजा भवती वधूशब्देनानुगृहणाति।**

उदाहरण है कि **''मृच्छकटिकम्''** में वसन्तसेना राजा द्वारा **'वधू'** पद से सम्मानित होकर वह चारूदत्त की पत्नी बन जाती है। ये पण्यस्त्रियां बाजारू वस्तु के सदृश थी जिन्हें जो चाहे धन देकर खरीद सकता था और कहीं भी ले जा सकते थे। नाटककार शुद्रक ने 'मृच्छकटिकम्'' में कहा है – समुद्रवीचि वचल स्वभावाः सन्धयाभ्रलेखेव मूहुर्त स्त्रियो हतार्थाः पुरुष निरर्थम निष्पीडितांतक वर्त्तयगन्ति''

अर्थात् ये सागर के समान चंचल और सांयकालीन मेघ के सदृश अस्थिर अनुराग करने वाली धनापहर कर अनुरक्त मनुष्य के निर्धन एवं धनहीन बनाकर छोड़ देती थी।

ये अपना अश्लील भाव भंगिमाओं से उत्तेजक कामभावनाओं को सुरा, नृत्य, ताल एवं संगीत आदि से सजा–संवारकर कामुक व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करती थी और यह चलन आज भी है।

समसामयिक नाटकों में सती प्रथा का भी उल्लेख आया है। परन्तु इस प्रथा का कठोरता से पालन नहीं होता था और न ही स्त्री समाज सती होने के लिए बाध्य थी।

इस प्रकार कालिदास के नाट्य साहित्य की समीक्षा से स्पष्ट है कि वे संस्कृत साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं उनमें असाधारण कवित्व–शक्ति का नवनवोन्मेण विद्यमान हैं उकने वर्णन सजीव एवं सकारात्मक है। सामाजिक चित्रण में जिस पांडित्यपूर्ण विचारों से नारी का मार्मिक चित्रण किया है वह मार्मिक एवं हृदयग्राही है। अक्षरशः उन्होंने संस्कृत–काव्य–साहित्य को अपने उपमानों से अलंकृत कर भाव–भंगिमाओं के मोती विश्वास के धागे में पिरोए हैं। उनके नाट्य साहित्य में नैसर्गिक स्वर्ग तुल्य आनंद है। भौतिक विकास है और दैवी दिव्यता है। मानवीय मनोज्ञता और सात्विक सम्मोहन है।

जनजातीय समुदायों के शिक्षा, स्वास्थ्य और रहन–सहन के बदलाव में सामुदायिक रेडियो का योगदान

मप्र के नालछा केंद्रित भील जनजाति के विशेष संदर्भ में

सौरभ कुमार मिश्र*

प्रस्तावना

किसी भी देश के बारे में जानने के लिए वहां की संस्कृति को बेहतर तरीके से जानना बेहद जरूरी है और संस्कृति का प्रतीक है वहां की प्रचीन ऐतिहासिक इमारतें, कला–साहित्य संग्रह और सभ्यता के कालक्रम में वहां के वनों में रहने वाले जनजातीय समूह और उनके आचार– व्यवहार। इन सभी में उन्नत संस्कृति का एक सटीक और जीवंत उदाहरण जनजातीय समूहों में देखने को मिलता है। आज देश के हर राज्य में कहीं ना कहीं जनजाति समूहों का वास है। ये भारतीय संस्कृति का अटूट हिस्सा भी हैं। कही अधिक संख्या में हैं तो कही लुप्तप्राय अवस्था में है। लेकिन जहां भी हैं मजबूती के साथ अपनी संस्कृति, धरोहरों और सभ्यताओं को संरक्षित किए हुए हैं। सरकार भी 90 के दशक से इन समूहों और इनकी सभ्यता को संरक्षित करने का कार्य करती आ रही हैं। लेकिन व्यवस्थित प्रबंधन ना हो पाने के कारण जनजातीय समूहों का विकास तेजी के साथ नहीं हो पा रहा हैं और वो आज भी समाज के मुख्यधारा से कटे हुए हैं। इन्ही सब समस्याओं को ध्यान में रखते हुए देश में सामुदायिक रेडियो का प्रादुर्भाव हुआ। सामुदायिक रेडियो का विकास सबसे पहले 2004 में कॉलेज कैंपस के रूप में हुआ। ये किसी विशेष समूह के लिए, समूह द्वारा और समूह के लिए तैयार किया गया विचार है। जिसका उद्देश्य जनजातीय इतिहास, संस्कृति और सभ्यता के संरक्षण के साथ उन्हें मुख्यधारा से जोड़ना है। सामुदायिक रेडियो किसी छोटे विशेष समूहों द्वारा संचालित कम लागत वाला रेडियो स्टेशन हैं। जो समुदायों के हितों और विकास को दृष्टिगत रखते हुए प्रसारण पर ध्यान केंद्रित करता है।

ऐसे रेडियो केंद्र के द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, मनोरंजन, आर्थिक और संस्कृति संरक्षण संबंधी कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। सही मायने में सामुदायिक रेडियो आज के दौर में बेजुबानों की आवाज बना हुआ है। वैसे तो सामुदायिक रेडियो केन्द्रों की स्थापना देश भर के वनवासी समुदायों में की गई है। लेकिन इन सभी में मध्यप्रदेश देश का ऐसा राज्य है जहां पर कई प्रकार की जनजातियां निवास करती हैं। साथ ही कुछ ऐसी भी जनजातियां पाई जाती है, जो विश्व प्रसिद्वहैं। जिनमें बैगा, भील, भीलाला और अंगरिया जनजातियां प्रमुख हैं। मध्य प्रदेश देश का इकलौता राज्य है, जहां पर अधिकतर जनजातीय समूहों के लिए उन्हीं की भाषा में, उन्हीं के द्वारा रेडियो कार्यक्रम प्रसारित किए जा रहे हैं। यहां पर वर्तमान समय में आठ सामुदायिक रेडियो का प्रसारण हो रहा है। सामुदायिक रेडियो अब

* पी.एच–डी. शोध छात्र

धीरे–धीरे एक नए जमाने के मीडिया का रूप लेता जा रहा है। अब इसे अधिक से अधिक लोगों तक पहुचांने की जरूरत है।

सामुदायिक रेडियो को सरोकार का रेडियो कहा जाता है। ये एकमात्र ऐसा माध्यम है, जो अभी भी समाचार, ब्रेकिंग और सनसनी खबरों से दूर है। एएमआरसी वर्ल्ड यानी एसोसिएशन ऑफ कम्युनिटी रेडियो ब्रॉडकॉसटर्स के अनुसार सामुदायिक रेडियो का ऐतिहासिक दर्शन यही है कि इसका प्रयोग बेजुबानों की आवाज के लिए हो। देशभर में पिछले दिनों सामुदायिक रेडियो को लेकर छपे शोधपत्र यही इशारा करते हैं कि वर्तमान समय में सामुदायिक रेडियो का कार्य रिमोट इलाकों में जागरुकता फैलाना है और जनजाति समुदायों को अपने पैरों पर खडा करने के लिए सहायता करना है। कम्युनिटी रेडियो का प्रारंभ समाज में एक खास वंचित तबके को ध्यान में रखकर बेहकया गया। सामुदायिक रेडिया अब अपनी बेहतर स्थिति में आ चुका है। अब इसकी पहुंच को अधिक से अधिक दूरी तक करना अगल लक्ष्य होना चाहिए। आज देश में सैकडों सामुदायिक रेडियों सटेशन हैं जो तमात जनातियों की आवाज बन रहे हैं।

शोध का उद्देश्यः

- सामुदायिक रेडियो की पहुँच का आंकलन करना।
- रेडियो के प्रति भील जनजाति की रुचि को जानना।
- भील जनजाति के शिक्षा, स्वास्थ्य और रहन–सहन में आए बदलाव में सामुदायिक रेडियो का योगदान।

शोध का अध्ययन क्षेत्र और भू–सामाजिक स्थितिः

मध्यप्रदेश के भील के लिए स्थापित सामुदायिक रेडियो केंद्र नालछाः

धार जिला कार्यालय से करीब 40 किलोमीटर दूर पहाड़ों और सघन वन क्षेत्र में स्थित नालछा विकास खंड, जिसकी आबादी करीब 70 हजार है। नालछा से करीब 10 किलोमीटर की दूरी पर विश्व धरोहर मांडु स्थित है। जिसके कारण इसके आस–पास के इलाके और सड़क मार्ग विकसित हैं। यहां पर स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक विद्यालय, निर्वाचन कार्यालय के साथ कई सरकारी विभागों के केंद्र भी हैं। नालछा सामुदायिक रेडियो केंद्र 4 हजार वर्गमीटर में स्थापित प्राथमिक विद्यालय के दो कमरों में 90.4 मेगाहर्ट्ज की फ्रिक्वेंसी पर 10 घंटे का प्रसारण करता है। इसका संचालन गांव भील जनजाति समूहों के कुछ शिक्षित युवकों के द्वारा किया जा रहा है। साथ ही इसके देखरेख की जिम्मेदारी वन्या के कंधों पर है। सामुदायिक रेडियो का प्रसारण आस–पास के क्षेत्रों में करीब 10 से 12 किलोमीटर तक कुछ इलाकों में स्पष्ट और कुछ जगहों पर टूटती हुई होती है।

नालछा गांव और सामुदायिक रेडियों के प्रसारण के अनुसार भौगोलिक स्थितिः

नालछा विकास खंड के अंतर्गत आने वाले गांव चारों तरफ से सघन वन क्षेत्रों और पहाड़ों से घिरे हुए हैं। नालछा से मांडु की ओर पूर्व दिशा में जाने वाली रोड पक्की है। जबकि अन्य गांव पूरी तरह से सड़कों से नहीं जुड़े हुए हैं। नालछा विकास खंड के अंतर्गत अवल्या और चैनाल दो गांव आते हैं। जो नालछा रेडियो केंद्र से उत्तर दिशा में बसे हैं। जहां पर रेडियो का प्रसारण स्पष्ठ है और ये गांव सड़क मार्ग से जुड़े हुए हैं। रेडियो केंद्र के पश्चिम दिशा की ओर स्थित गांव जीरापुरा और कागदीपुरा के साथ अन्य भी कई छोटे–छोटे गांव स्थित हैं। जहां सामुदायिक रेडियो का प्रसारण पूर्णतः स्पष्ट तो नहीं लेकिन बेहतर है। दक्षिण दिशा की ओर पनाला और ज्ञानपुरा स्थित हैं। लेकिन दक्षिण के ओर स्थापित गांवों में बहुत ही नीचे घाटियों के तलहटी में बसे हुए हैं। जिसके कारण रेडियो प्रसारण टूट–टूट कर आता है। प्रसारण बेहतर नहीं है। सुबह कुछ समय और शाम को 7 बजे के बाद ही प्रसारण बेहतर होता है। इसके अलावा पूर्व दिशा में बसे गांव उमरपुरा, भीरपुरा, घाटीपुरा और भीलूकूड़ा हैं। ये सभी गांव पहाड़ों पर काफी उचाईं पर बसे हुए हैं। रेडियो की क्षमता के अनुरुप यहां पर प्रसारण सभी गावों के मुकाबले बहुत ही निचले स्तर का है। प्रसारण कभी–कभी टूट–टूटकर आता है। साथ ही बहुत से ऐसे भी गांव भी हैं, जो अभी भी सड़क मार्ग से जुड़े नहीं हैं। इस प्रकार नालछा सामुदायिक रेडियो केंद्र से 10 के रेंज में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की पहुंच करीब 10 गांवों में स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है। सर्वे के लिए वे ही गांव चुने गए हैं, जहां पर स्पष्ठ प्रसारण के साथ वहां पहुंचने के लिए सड़क मार्ग उपलब्ध हों। अतः इस आधार पर उपरोक्त गावों का चयन किया गया है। ये गांव रेडियो केंद्र से पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में स्थित है। इन गावों की कुल जनसंख्या करीब 3000 से 3200 है।

भील समुदाय की रोजगार साधन और स्थितिः

भील समुदाय के लोग लंबे समय से सघन वन क्षेत्र और पहाड़ी इलाकों में ही रहते आ रहे हैं। इनका मुख्य रोजगार खेती और जंगलों में पाई जाने वाली औषधियों और अन्य सामग्रियों पर निर्भर है। खेती के मामले में ये काफी बेहतर जानकारी रखते हैं। आधुनिक संसाधन नहीं होने के बावजूद भी ये अपने जीविका के लिहाज से बेहतर उत्पादन कर लेते हैं। साथ ही जंगलों में होने वाले मौसमी फल आदि को भी बेंचते हैं। कुछ जनजाति समूह पशु भी पालते हैं, तो कुछ सब्जियां उगाते हैं। अब सामुदायिक रेडियो आने के बाद से सरकार के कार्यक्रमों के लिए लोगों को बुलाया जाता है। समय–समय पर दक्षता कार्यक्रम चला कर इनके कार्यकुशलता को तराशा जाता है। ताकि ये बेहतर कार्य कर सकें और जीविका का निर्वहन कर सकें।

सूचना और संचार माध्यमों से दूर भील समुदायः

नालछा को छोड़कर इससे जुड़े गांवों में संचार की स्थिति बहुत ही खराब है। यहां मोबाइल तो है, लेकिन उसका इस्तेमाल सिर्फ रेडियो सुनने के लिए करते हैं। इसके अलावा

बिजली की व्यवस्था पूरी तरह से बेकार है। इसके आने जाने का कोई समय नहीं हैं। इन्हें बिजली की आदत भी कोई खास नहीं है। नालछा और उसके आस–पास के किसी गांव में एक भी टेलीविजन नहीं हैं और ना ही कोई अखबार लेता है। आसपास के 10–12 किमी के इलाके में सिर्फ सामुदायिक रेडियो केंद्र ही एकमात्र मनोरंजन का साधन है। जिसपर 10 घंटे स्थानीय बोली में अलग–अलग स्वभाव के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। जिसे गांव वाले पूरी तन्मयता से सुनते हैं। सूचना क्रांति के युग में यहां संचार और सूचना का दूर दूर तक कोइ भी सरोकार नहीं। सामुदायिक रेडियो केंद्र खुलने के तीन साल बाद भी यहां के गावों में अभी तक रेडियो सेट भी वितरण नहीं हुआ है।

शोध प्रविधिः

उद्देश्यपूर्ण निर्दशन पद्वति के द्वारा नालछा सामुदायिक रेडियो केंद्र के चारों तरफ ऐसे गांव जहां पर रेडियो की पहुंच और वे गांव सही तरीके से सड़क मार्ग से जुड़े हों। उन गांवों का चयन किया गया। इस तरह से सात गांवों का चयन किया गया। जो रेडियो केंद्र से पास, थोड़ी दूरी पर और अधिक दूरी पर बसे हुए हैं। सैंपल के लिए ऐसी दूरी पर गांव चुनने का कारण सही परिणाम सटिक प्राप्त हो सके। चूकिं रेडियो के प्रसारण क्षेत्र के दायरे में आने वाले गांव में से हमें 200 उत्तरदाताओं का चयन करना था। इसके लिए व्यवस्थित निदर्शन पद्वति का प्रयोग किया गया। इसके तहत सबसे पहले नालछा निवार्चन विभाग से इन गावों की वोटर लिस्ट प्राप्त की गई। ताकि हमारे रिस्पांड की संख्या का अंदाजा लगाया जा सकें। लिस्ट के अनुसार सात गांवों के अंतर्गत करीब 35 वार्ड आते हैं। जहां पर रेडियो वन्या ही पहुंच स्पष्ट है और यहां लोग रेडियो नियमित रूप से सुनते भी हैं। इसी के साथ ये सभी वार्ड सड़क मार्ग से जुड़े भी हों। इस प्रकार समगुणांक विधि और सोउद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर सात गांवों के 36 वार्डों में प्रत्येक से 6–6 रिस्पांड का चयन किया गया। इसके उपरांत इनसे अनुसूची भरवाई गई। सिस्पांड चुनते समय इस बात का भी ध्यान दिया गया कि पुरूष के साथ महिलाएं भी अनुसूची भरवाने में सहयोग करें। इस प्रकार लक्ष्य के अनुसार 200 रिस्पांड से अनुसूची भरवाई गई। जिसका विस्तृत विवरण मौजूद है।

शोध के परिणामों की व्याख्या सारणी और ग्राफ के आधार पर :

सामुदायिक रेडियो के बारे में सबसे पहले जानकारी कहां से पता चली?	
अखबार	09 :
रेडियो	39 :
टेलीविजन	00:
आपसी चर्चा	52 :

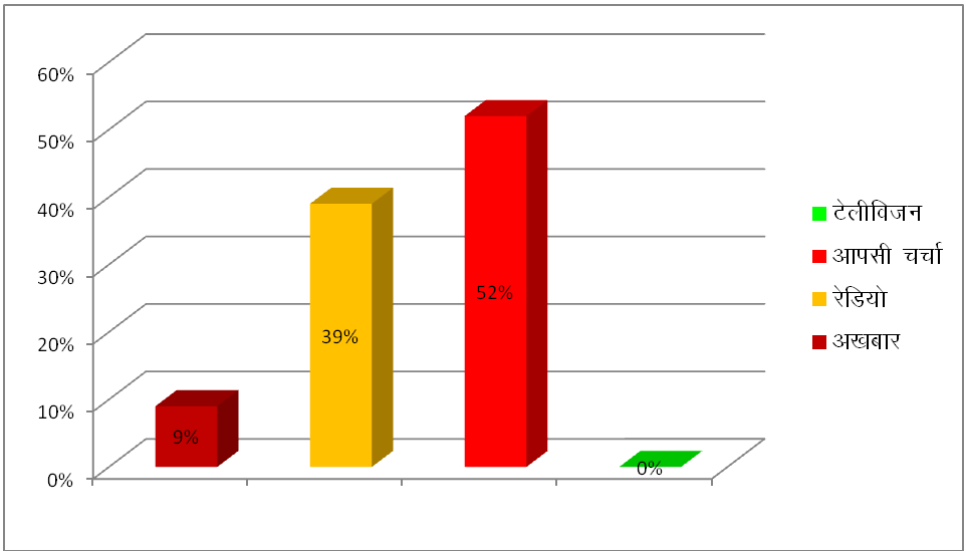

सारणी के अवलोकन से यह बात स्पष्ठ होती है कि दर्शाया है कि करीब 52 प्रतिशत लोगों को चर्चा से इसकी जानकारी मिली। तो 39 प्रतिशत लोग जिनके पास रेडियो भी था, वे रेडियो पर ही प्रसारण और प्रचार सुन सुनकर इसके बारे में जानने लगे। इसके अलावा 9 प्रतिशत लोगों को अखबार से भी जानकारी मिली।

आप प्रायः सामुदायिक रेडियो कब सुनते हैं?

सुबह	**12 :**
छोपहर	**34 :**
शाम	**48 :**
श्रात	**06 :**

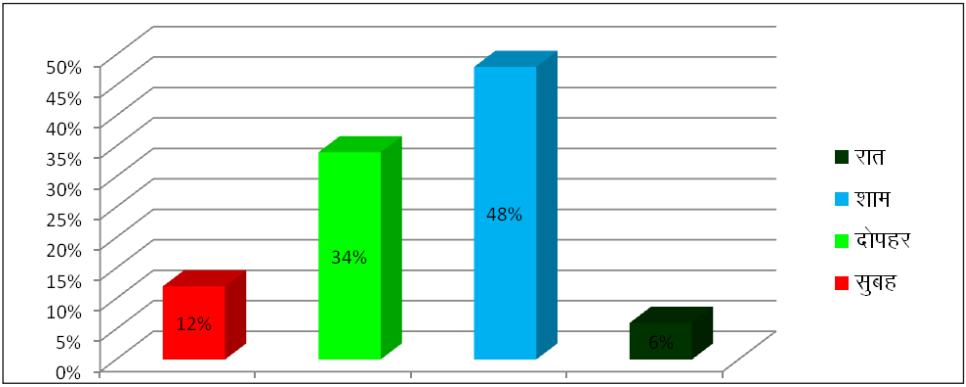

उपरोक्त सारणी और ग्राफ से स्पष्ट है कि वन्या सामुदायिक रेडियो केंद्र नालछा के श्रोता सबसे अधिक करीब 12 प्रतिशत सुबह के कार्यक्रमों को सुनना ज्यादा पसंद करते हैं। क्योंकि भील सुबह ही मजदूरी, खेती या फिर अपने काम पर निकल जाते हैं। वे कार्यस्थल पर ही रेडियो सुनते हैं। वहीं 34 प्रतिशत लोग दोपहर में रेडियो सुनना पसंद करते हैं। इनमे सबसे ज्यादा संख्या महिलाओं के साथ युवाओं की है। इसके कार्यक्रमों की पसंदगी भी अलग है। वहीं 48 प्रतिशत ऐसे लोग हैं, जो शाम को रेडियो सुनते हैं। क्योंकि घर की महिलाएं शाम के वक्त अपने घरेलू कामों में व्यस्त हो जाती हैं। जो समुदाय के लोग शाम कसे काम से लौटते हैं, वो भी चौपाल आदि पर रेडियो सुनन पसंद करते हैं। वहीं रात में मात्र 6 प्रतिशत श्रोता ही रेडियो सुनते हैं। इसमें भी युवा सबसे ज्यादा हैं।

आप कितने घंटे सामुदायिक रेडियो सुनते हैं?

1–2 घंटे	29 :
2–4 घंटे	43 :
4–6 घंटे	20 :
5 घंटे से अधिक	08 :

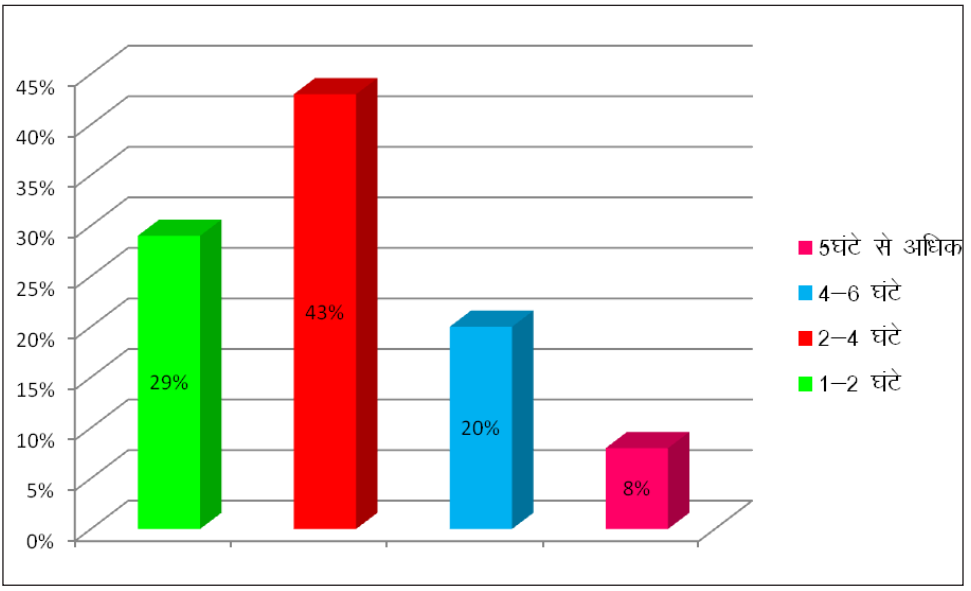

तलिका और ग्राफ से साफ है कि सबसे ज्यादा करीब दो से चार घंटे के बीच सामुदायिक रेडियो सबसे अधि सुनते हैं। करीब 43 प्रतिशत। क्योंकि ये वे लोग हैं जो सुबह अपने साथ रेडियो सेट ले जाते हैं। इस दौरान अनके पास सुबह का समय भी होता हैं और दूसरा इस दौरान कार्यक्रम अलग– अलग स्वभाव के प्रसारित होते हैं। दूसरे स्तर पर एक से दो घंटे सुनने वाले 29 प्रतिशत श्रोता हैं। 4–6 घंटे वाले 20 प्रतिशत श्रोता हैं। क्योंकि 10 घंटे प्रसारण में से 6 घंटे के करीब सुनना ये सभी के बस की बात नहीं है। इनमें वे युवा वर्ग शामिल है जो सुबह परिवार के साथ काम पर भी जाता है और शाम को साथियों के साथ समूह में अपना समय व्यतीत करता है। लेकिन इसके अलावा करीब 8 प्रतिशत संख्या ऐसी भी है जो 5 घंटे से भी अधिक रेडियो को सुनने का शौक रखते हैं।

आप सामुदायिक रेडियो के किन कार्यकमों को आप अधिक पसंद करते हैं?

कार्यकम	सर्वाधिक पसंद	थोडा बहुत पसंद	बिल्कुल पसंद नहीं
चिंतन एवं भजन	1:	6 :	2:
स्थानीय बोली, संगीत	16:	5:	3:
स्वास्थ्य संबंधी, बात पते की	17:	3:	1:
खेती–किसानी	17:	3:	2:
बढते कदम, योजनांए	3:	11:	2:
आज खास	1:	2:	5 :
कुल प्रतिशत 100	55 :	30:	15:

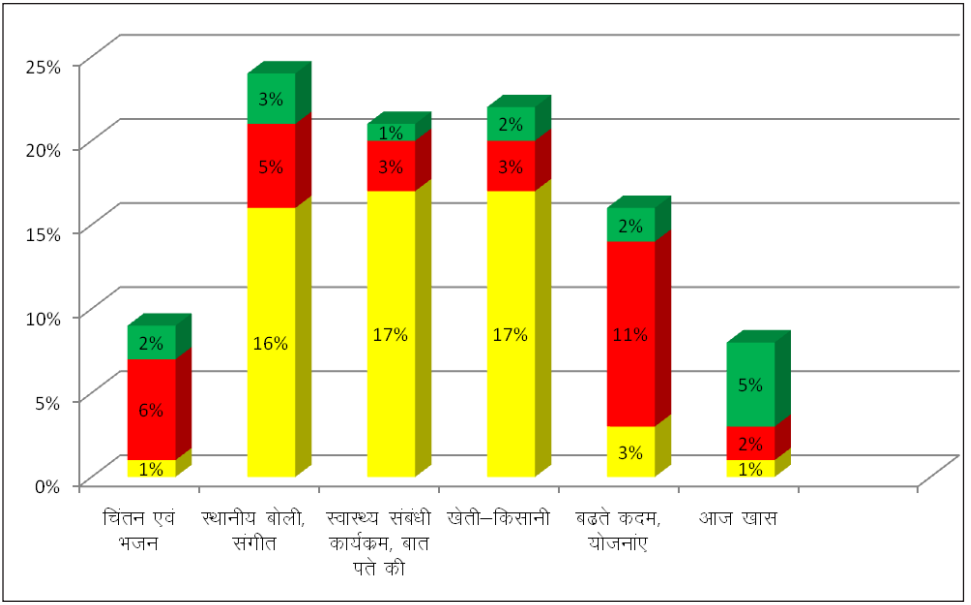

सामुदायिक रेडियो केंद्र की ओर से 10 घंटे के प्रसारण के दौरान अलग – अलग तरह के कई कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। उपरोक्त ग्राफ इन्हीं पसंदगी और ना पसंदगी को बता रहा है। ग्राफ के अनुसार कार्यक्रमों को सर्वाधिक पसंद करने वालों की प्रतिशतता 55 है। इसमें भी 16 प्रतिशत उन्हीं की बोली में आने वाले कार्यक्रम और 17 प्रतिशत स्वास्थ्य संबंधी और 17 प्रतिशत खेती–किसानी कार्यक्रमों को सर्वाधिक पसंद करते हैं। वहीं कार्यक्रमों को थोड़ा बहुत पसंद करने वालों कर प्रतिशतता 30 है। इसमें 11प्रतिशत बढ़ते कदम कार्यक्रम 06 प्रतिशत चिंतन एवं भजन पसंद करते हैं। इसके अलावा 11 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता हैं, जिनको कार्यक्रमों से कोई खास फर्क नहीं पड़ता है। उनके लिए रेडियो एक संसाधन की तरह है। इसका प्रयोग वे मनोरंजन के लिए करते हैं। असमें से 05 प्रतिशत लोग आज खास कार्यक्रम का बिल्कुल पसंद नहीं करते हैं।

क्या सामुदायिक रेडियो केंद्र का कोई कर्मचारी या अधिकारी आपसे रेडियो कार्यक्रमों को लेकर आपकी प्रतिकिया जानने की कोशिश की?

नियमित	**05 :**
कभी–कभार	**19 :**
कभी नहीं	**76 :**

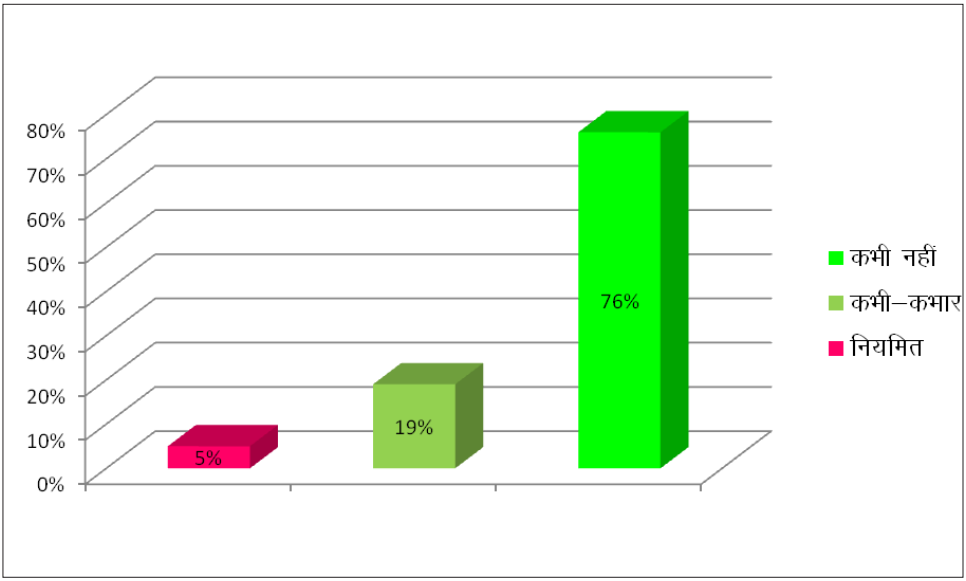

सारणी से स्पष्ट है कि रेडियो कार्यक्रमों को लेकर नियमित कोई भी फिडबैक नहीं लिया जाता है। इसी प्रकार 76 प्रतिशत श्रोताओं का कहना है कि कभी–कभार ही कोई अधिकारी कर्मचारी इसके बारे में जानने कुछ पूछने आते हैं। लेकिन पिछले एक साल से यहां कोई भी अधिकारी– कर्मचारी इस बारे में बात करने नहीं आए। इसी कारण कार्यक्रमों के नवीनीकरण के बारे में भी कुछ नया नहीं सोचा जा रहा है। चूंकि इसमें काम करने वाले लोग हमारे ही बीच के हैं तो उनसे तो रोज मुलाकात होती है। इसके अलावा 19 प्रतिशत लोगों का मानना है कि रेडियो केंद्र स्थापित होने के बाद से आज तक कोई भी अधिकारी कर्मचारी यहां नहीं आया और ना ही इसके कार्यक्रमों को लेकर किसी प्रकार की राय जानने की कोशिश की गई। यह वे लोग हैं जो सघन वन क्षेत्र के आस पास और घाटियों के पास रहते हैं। यहां अभी तक कोई भी अधिकारी नहीं गया। साथ ही प्रसारण भी स्पष्ट सुनाई नहीं देता है। बाकि 5 प्रतिशत को नियमित कुछ सीखने को मिल रहा है।

सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रमों से सबसे अधिक किस प्रकार का परिवर्तन आप अपने जीवन में पाते हैं?

बदलाव की प्रकृति	सबसे अधिक बदलाव	थोडा बहुत बदलाव	बिल्कुल नहीं
रहन–सहन	9 :	4:	2:
स्वास्थ्य	13:	3:	2:
खाने में पहनावे में	4:	8:	1:
बोल–चाल	5:	3:	2:
शिक्षा	16:	5:	4:
आर्थिक	4:	13:	2:
कुल प्रतिशतता 100	51:	36:	13:

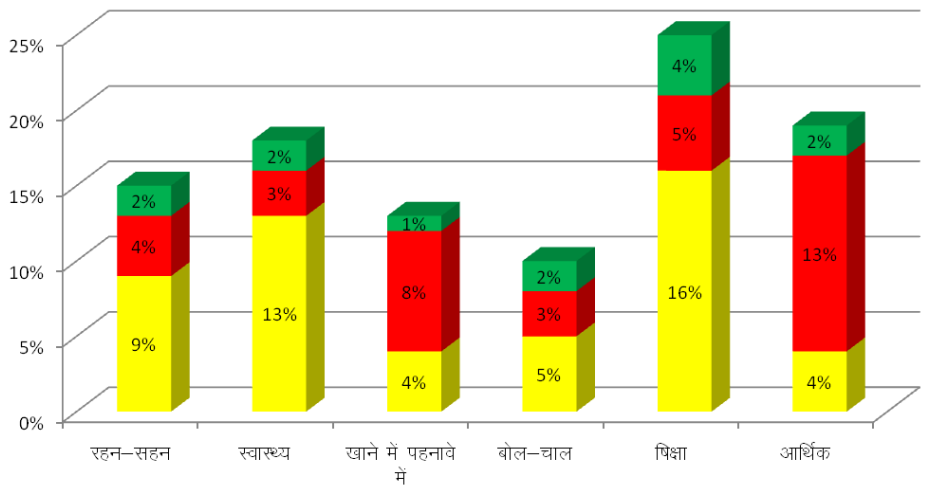

ग्राफ के अनुसार 51 प्रतिशत लोगों को सामुदायिक रेडियो से सबसे अधिक बदलाव दिखता है। उन्हें रहन–सहन, बोलचाल, स्वास्थ्य और शिक्षा में सबसे अधिक बदलाव दिखता है। वहीं 36 प्रतिशत लोगों को ये बदलाव थोड़ा बहुत लगता है। उन्हें आर्थिक और खान–पान में बदलाव नजर आता है। वहीं संस्कृति में बदलाव को लेकर लोगों की किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं देखी गई। इससे स्पष्ट है कि संस्कृति में कोई बदलाव नहीं हुए। गौरतलब है कि सामुदायिक रेडियों केंद्रों की स्थापना इन जानजाति समूहों की संस्कृति को संरक्षित करने के लिए ही हुई थी ना कि उसमें बदलाव करने की रही। वहीं 13 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इन कार्यक्रमों से कोई भी बदलाव नजर नहीं आता है।

निष्कर्षः

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त सारणी हमें अपने उद्देश्यों की ओर ले जाने का प्रयास करती है। सारणी से जनजाति समूहों को लेकर चल रहे विचार प्रतिशत और आंकड़ों के रूप मे सामने आ गए हैं।

- सारणी के पहले प्रश्न को देखें तो हम पाते हैं कि यहां रहने वाले अधिकतम लोगों को सामुदायिक रेडियो के बारे में जानकारी है। इसके पीछे सामुदायिक रेडियो के बारे में सही प्रकार से हुए प्रसार–प्रचार का असर है। वहीं दूसरा पहलू ये भी है कि नालछा में सामुदायिक रेडियो के अलावा मनोरंजन का दूसरा कोई साधन नही है। इससे लोग सुबह मजदूरी के वक्त और श्शाम को घरों और चौपालों पर एकत्रित होकर सामुदायिक रेडियो सुनते हैं।
- चूंकि चाडा में मनोरंजन का इकलौता साधन सामुदायिक रेडियेा है। अतः इसके बारे में जानकारी भी इससे ही मिलेगी। लेकिन लोगों पास प्रर्याप्त संख्या में रेडियो ना होने की स्थिति में इन्हें इसके बारे में संपूर्ण जानकारी नही मिल पाती है। लेकिन जनजातीय समुदायों में कुछ लोग जागरूकता के दम पर सामुदायिक रेडियो की जानकारी प्राप्त कर रहे हैं।
- गावों में मनोरंजन का केवल यही सही साधन होने के कारण इसका प्रसारण सातों दिन किया जा है। जिसे समुदाय के लोग दिलचस्पी से सुनते हैं। चूंकि भील जनजाति का मुख्य व्यवसाय कृषि और मजदूरी इसलिए जिनके पास रेडियो है, वे अपने साथ कार्यस्थल पर ही रेडियो सेट ले जाते हैं, वहां काम करते हुए सुनते हैं और मनोरंजन भी करते हैं। जनजातीय समूहों के लोग हर दिन औसतन 3 से 4 घंटे सामुदायिक रेडियो का सुनते हैं। जिसमें मनोरंजन के साथ सरकारी योजनाओं की भी जानकारी होती है। सामुदायिक रेडियो इनके विकास का मार्ग है।

- नालछा में रहने वाले भील जनजाति के लोग सबसे अधिक स्थानीय बोली के कार्यक्रमों को सुनना पसंद करते हैं।
- इसके अलावा उन्हें खेती–मजदूरी और सरकारी योजनाओं में स्वास्थ्य और शिक्षा के बारे में जानना सबसे अधिक पसंद हैं।
- नालछा के जनजाति समूहों के अनुसार सामुदायिक रेडियों के आने के बाद से रहन–सहन, जीवन स्तर, शिक्षा, स्वास्थ्य और बोलचाल में सुधार आया है।
- इसी के साथ उनका कहना है कि हमे इस बात की बेहद खुशी है कि सामुदाकि रेडियो आने से जहां एक तरफ हमारे जीवन–स्तर में सुधार आया है वहीं दूसरी तरफ हमारी सभ्यता और संस्कृतियों का संरक्षण भी हो रहा हैं जो आने वाले लंबे समय तक सुरक्षित रहेगी

संदर्भ–सूची

श्रीवास्तव, आरएन (1994) जनजातीय विकास के चार दशक, ज्ञानदीप प्रकाशन, इलाहाबाद

सोलंकी, मांगीलाल (1993) भील भगोरिया, मप्र आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल

शुक्ल, माधव (1997) बंदेली संस्कृति में जनश्रुतियां एवं मान्यताएं, चौमासा, मार्च, जुलाई, मप्र

तिवारी, शिवकुमार (1986) मप्र के आदिवासी, मप्र हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

तिवारी, शिवकुमार (1992) भारत की जनजातियां, नार्दर्न बुक सेंटर, नई दिल्ली

सीबी ऑनलाइन संस्कृति, (2007) अप्रतिबद्धता, समुदाय और सामुदायिक रेडियो क्षेत्र, 3 जनवरी 2007

माइकल, (1990) अ हिस्ट्री आूफ बर्लियन कॉम्युनिटी रेडियो, सितम्बर 1990

परिसर और सामुदायिक रेडियो नीति भारत सरकार

क्रेक डान, 2005, कॉम्युनिटी रेडियो, द नेशन, जून

जेसी वॉकर, 2001 रेवेल्स ऑफ द एयरः एन ऑल्टर्नेटिव हिस्ट्री आूफ रेडियो, जिर्राड ब्रुस,

अ पैशन फॉर रेडियोः रेडियो वेव्स एंड कम्युनिटी

यूनेस्को, हाऊ टू डे अ कम्युनिटी रेडियोःअ प्राइमर

सेठ आतितेश्वर, भारत सामुदायिक रेडियो आंदोलन

ग्रामवाणी, सामुदायिक रेडियोः एक सीआर स्टेशन की स्थापना

–शोधार्थी, मीडिया अध्ययन, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विवि, भोपाल

भिण्ड मण्डल का ऐतिहासिक चतुर्मुखी शिव विग्रह

डॉ. बृजेश कुमार शर्मा

भारत वर्ष अध्यात्म प्रधान देश है। भारतीय संस्कृति और जीवन दर्शन धार्मिक उत्कण्ठा से अनुप्रमाणित रहा है। इसमें नैतिक मूल्यों, सदाचरण और समस्त जगत को संचालित करने वाली एक मात्र शक्ति ऋत के प्रति समर्पण की भावना मानव सभ्यता जितनी ही पुरानी है और मन्दिर निर्माण इसी धर्म साधना के क्रमिक विकास का परिणाम है। भारत वर्ष के अन्य विशेष स्थानों की तरह चंबल संभाग और विशेष रूप से भिण्ड में धर्म साधना के सूत्र प्रागैतिहासिक काल से जुड़े हुये है। एवं प्रकृति पूजा के पश्चात शिव उपासना की असंख्य प्रमाण यहां वहुतायत से मिलते है। वैष्णव धर्म के साथ साथ शैवों के संगठन के प्रमाण सघन वन क्षेत्रों में मिलते है। शिव प्राचीन काल से ही हिन्दू धर्म के प्रभावशाली देवता रहे है। इनकी गणना त्रिदेवों में की गई है। भारतीय परम्परा में शिव को सृष्टि के संहार से सम्बद्ध किया गया है। किन्तु बाद में शैव पुराणों एवं आगम ग्रंथो में शिव को विराट सन्दर्भों मे रेखांकित किया गया है। उन्हे सृष्टि के संहार के साथ–साथ उसकी रचना एंव पालन से भी संबंद्ध किया गया है। शिव भारतीय कला में मुख्यतः तीन रूपों में अभिव्यक्त हुये है। प्रतीक (लिंग, मुखलिंग त्रिशूल) पशु (वृशभ या नन्दी) एवं मानव विग्रह भिण्ड क्षेत्र में शिव उपासना प्रमुख रूप से प्रतीक रूप में की जाती है। एवं अधिकांशतः मंदिरों में शिवलिंग के तीनों भाग ब्रम्हा, विष्णु एवं रूद्र को स्पष्ट रूप से अंकित किया गया है। भिण्ड जिले में शिव की इन्ही विशिष्टताओं को अभिव्यक्त करने वाले अनेक मंदिर है। जिसमें चतुर्मुखी महादेव का प्राचीन शिवलिंग है। यह मंदिर भारत के मध्यप्रदेश के जिला भिण्ड में चौम्हों ग्राम से सुदूर चर्मण्वती के अंचल में शिवजी चतुमुर्ख लिंग विग्रह के रूप में विद्यमान है। शिवजी के चारों मुखों की समीक्षा शिवपुराण की भाव सामग्री से पोशित हैं। जिसे मनीशी द्वापर युगान्त की प्रतिमा भी बताते हैं। शिवपुराण में इनके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरूष और अघोर बताए गए है। इस मंदिर के शिवलिंग में चार मुख्य है। जो चारों दिशाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। तांत्रिक साधना के लिए यह प्रतिमा उपयुक्त है। यह गुप्तकालीन शिवलिंग हैं। यह भारत का सर्वश्रेष्ठ सिद्धपीठ है। जनश्रुति के अनुसार आदिशंकराचार्य ने इसके दर्शन से प्रभावित होकर चार ज्योतिमठ प्रतिष्ठित किये है। तभी से यहां पदवीधारी शंकराचार्य सनानत धर्म की पताका फैला रहे हैं। चौम्हो का चतुर्मुखी शिव मंदिर श्री सिद्धेश्वरपीठ के नाम से प्रसिद्ध है। यह मंदिर भिण्ड जिले के अटेर जनपद के चौम्हों ग्राम में स्थित है। चंबल नदी के कछार के उँचे विशाल टीले पर बने इस मंदिर को कैलाश आश्रम की संज्ञा स्वामी प्रियतमानन्दसरस्वती जी महाराज ने दी है। भिण्ड मण्डल की पावन संत परम्परा में प्रथम सूचना स्वामी प्रियतमानन्दसरस्वती जी महाराज का है। जिनकी चिन्मयी सत्ता आज भी साधको के योग क्षेम का निर्वाह करती है। स्वामी जी राष्ट्रीय संत के रूप में विख्यात रहे है। उन्होने ही श्री चतुर्मुखी महादेव कैलाश आश्रम चौम्हो अटेर को साधना सिद्धी केन्द्र बनाया आपके जीवन

*इतिहास विभाग शा. एम. जे. एस. महाविद्यालय भिण्ड (म0 प्र0)

दर्शन को लक्ष्य कर अटेर निवासी महाकवि रामदत्त शास्त्री ने स्वामी प्रियतमानन्द सरस्वती चरितामृतम् संस्कृत महाकाव्य की रचना की। आचार्य रामकिशोर जी ने स्वामी प्रियतमानन्दसरस्वती सहस्रनामस्तोत्र' रचना से उनका ऐतिहासिक परिचय दिया इनकी अलौकिक विभूति की समाधि 'सिद्धेश्वरपीठ' के रूप से गुप्तकालीन चतुर्मुखी शिव मंदिर के पश्च भाग में स्थित है।

शिवजी की उपासना पद्धति का मूल आधार लोकमंगल है। लोक प्रबोध और लोक ह्रदय आत्म प्रबोध द्वारा शाश्वत रूप की प्राप्ति कराता है। साधकी की मार्मिक अभिव्यक्ति अनुभूति की सच्चाइयों का सहज में ही स्पर्श करती है। शुष्क बौद्धिकता और भौतिकता के अतिरेक से पीड़ित उपासक को चतुर्मुखी शिव साधना आत्म समृद्धि की शाशवत निधी का दर्शन करती है। मण्डल भिण्ड के अटेर जनपद में चौम्हों ग्राम है। इसके कछार में चतुर्मुखी शिव का दिव्य विग्रह है। यह भारत का ऐसा शिवलिंग है। जिसमें चार मुख्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते है। ये चार मुख पूर्व दक्षिण, पश्चिम, तथा उत्तर दिशा की ओर स्थित है। चतुमुर्खी शिव की शास्त्री उपासना का विशेष स्वरूप है। जिसको शास्त्र एवं पुराणों के अनुरूप अभिव्यक्त किया गया है। यह शिव बिग्रह भारत में साधना के रूप में प्रतिष्ठित हुये नहीं मिलते है। ग्वालियर के पुरातत्व संग्रहालय में गुप्तकाल का ये शिल्प अवश्य दर्शनीय हैं सुप्रसिद्ध विद्धवान आचार्य डॉ. रामकिशोर शर्मा प्राचार्य चौधरी यदुनाथ सिंह महाविद्यालय भिण्ड ने इस विग्रह की उपासनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है। चतुर्मुखी शिव सिद्धेश्वर के रूप में चौम्हो ग्राम के महादेव मंदिर में भक्तों को दिव्य आनंद की उपलब्धी कराते है। यहां सभी सिद्धियां विद्यमान हैं जो सूक्ष्म रूप से साद्यक की मनोकामनाओं को पूर्ण करती है। वाणभट्ट ने कादम्बरी में चतुमुर्ख शिव का उल्लेख किया है। कैलाश की समभूमि पर बना हुआ भगवान् शिव का एक मंदिर (सिद्धायतन) उस प्रदेश में अनेक प्रकार के वृक्ष भरे हुए थे। उसके सामने की ओर से कैलाश की आनन्दायिनी पवित्र वायु स्वस्छ हिम के जलकणों से शीतल एवं भुर्जवृक्षों के वल्कलों से रूक–रूक कर आ रही थी। उसके कारण कक्कील के वृक्ष हिल रहे थे। और नमेरू के वृक्षों की धूलि विखर रही थी। उस प्रदेश में अनेक प्रकार के वृक्षों की शोभा कही मरकत के समान हरे वृक्षों। की धूलि विखर रही थी। उस प्रदेश में अनेक प्रकार के वृक्षों की शोभा कहीं मरकत के समान हरे वृक्षों पर हारिल पक्षी कलरव कर रहे थे।

चतुःस्तम्भ स्फटिक मण्डपिका तल प्रतिष्ठित चतुर्मुख त्रयम्बकम–अवश्य ही यह चतुर्मुखी शिवलिंग का उल्लेख है जो कि चार छोटे खम्भों की मण्डपिका के नीचे बने हुए चबूतरे पर प्रतिश्ठित था। चतुर्मुखी शिवलिंग गुप्तकाल की विशेशता थी।

चतुर्मुखी शिव मूर्तियों में दक्षिणमुख उमा का बनाया जाता था, जैसा ऐलीफेण्टा का प्रधान शिवमूर्ति के दक्षिण भाग वाले मुख की आकृति से स्पष्ट है। भगवान शिव शंकर आशुतोश सर्वदुः खप्रमोश परात्पर पूर्णतम परमत्व के स्वरूप है। उनका चतुर्मुखी रूप साधक के लिये रचना धर्म की सिद्ध का अजस्र कृपा दाता है। श्री चतुर्मुखी शिव का विवरण–प्राची दिशा में शिव का तत्पुरूश मुख, दक्षिण दिशा में अधोरमुख, प्रतीची दिशा में सद्योजात मुख,

उदीची दिशा में वामदेव नाम का मुख है। शेते जगदस्मिन्निति शिवः इस व्युत्पत्ति से शिव का जगत् का अधिष्ठान होना सिद्ध होता है। अभिशेकप्रियः चतुर्मुखो शिवः चतुर्मुख शिव अभिषेक प्रिय है। ऊँ नमः शिवाय मंत्र से उनका साधक अभिशेक कर सकता है। उनके अभिषेक की यह सहज सुगम विधि है। शिवसहस्रनाम, रूद्राष्टाध्यायी से सुबोध साधक अभिषेक कर सदाशिव की अपासना करते है। आप ही वामदे, ज्येष्ठ , श्रेष्ठ, रूद्र, काल आदि नामों से प्रतिपादित है। इन नामों को बार–बार नमस्कार हैं। महेशान्नपरो देवो अर्थात महेश से बढ़कर (उत्तम) कोई देवता नहीं है। महादेव की दक्षिण मूर्ति की विशिष्टता महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बरी के महाश्वेता वृतान्त में प्रतिपादित की है। सम्पूर्ण तीनों लोकों द्वारा पूजे गये चरणों वाले चेतन तथा जड़ पदार्थों क गुरू चतुर्मुख भगवान शिवजी (की प्रतिमा) को देखा है। चतुर्मुखी शिव मंदिर का का विवरण कैलाश पर्वत वर्णन में बाण ने दिया है। चौम्हो ग्राम का महादेव मंदिर भी कैलाश आश्रम में स्थित है। इसका उल्लेख भी बाण ने ही किया है। शिवपुराण में शिव का प्राची तत्पुरूष स्वरूप, अघोर नामक दक्षिण दिशा कास स्वरूप वामदेव नामक उत्तरी दिक्षा का स्वरूप एंव सघोजातनामक पश्चिम दिशा का स्वरूप गुणों की महिमा से मण्डित हैं

महेश्वर का ईशान स्वरूप सबसे बड़ा है। जिसे शिव स्वरूप कहा जाता है। वह साक्षात् प्रकृति के भोक्ता क्षेत्रज्ञ में निवास करता है। परमेश्वर शिव ईशान का वर्ण शुद्धस्फटिस्क के समान उज्जवल, समस्त आभूशणें से विभूशित है। श्री सिद्धेश्वर चतुर्मुखी महादेव की साधना सर्वसिद्ध प्रदायक हैं चौम्हो स्थित कैलाश आश्रम साधना सिद्धी का दिव्यपुंज है। साधक को श्रीशिव जी की पूजा के बाद स्वामी प्रियतमानन्द सरस्वी सहस्रनामस्तोत्र का पाठ भी करना चाहिए राम भक्ति में हनुमान जी की पूजा अनिवार्य है। वैसे ही चतुर्मुखी शंकर की आराधना के बाद शिवसेवक पूज्य स्वामी जी में भी निष्ठा जरूरी हैं।

संदर्भ संकेत

1. तिवारी, डॉ मारूतिनन्दन, डॉ कमल गिरी– मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण,
2. शर्मा, डा0 रामकिशो –स्वामी प्रियतमानन्द सरस्वती सहस्रनाम स्तोत्रम् प्रकाशक अभिनव प्रकाशन भिण्ड
3. बाणभट्ट–कादम्बरी प्रकाशक चौखम्बा विद्याभवन बाराणसी सन 1960
4. महाकवि चतुर्वेदी रामदत्त –स्वामी प्रियतमानन्द सरस्वती चरितामृतम–प्रकाशक विनोवा संस्कृत विद्यालय भिण्ड
5. शर्मा डॉ0 रामकिशोर –श्री सिद्धेश्वर महादेव कैलाश आश्रम समीक्षा शोल लेख
6. शिवपुराण कैलाश संहिता
7. शर्मा डॉ0 कृश्ण स्वरूप – आचार्य रामदत्त चतुर्वेदी व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति शोध प्रबंध 2005 जीवाजी विश्व विद्यालय ग्वालियर

उत्तराखण्ड में पर्यटन की संभावनायें व विकास नीति

डॉ0 निर्मला लोहनी,*

डा0 सिराज अहमद,**

प्राचीन काल से ही मानव एक स्थान पर निवास न करके अपना घुमक्कड जीवन व्यतीत करता था। मेगास्थनीज, इब्बनबतूता एवं फिरदौसी जैसे अनेक लोगों ने अपने ज्ञान के लिए यात्राएं की लेकिन वास्को–डि–गामा, कोलम्बस, एंव अमेरिगों, के प्रयासों से नये–नये देशों की संस्कृति सामने आने लगी। जैसे–जैसे ज्ञान बढ़ा तथा मानव की नई–नई खोजों ने संसार की काफी समस्याओं का समाधान किया तथा मानव जीवन को आरामदायक बनाने का प्रयास किया। यातायात के तीव्रगामी साधनों तथा 90 दशक की आई0टी0 क्रान्ति ने विश्व को एक दूसरे के समक्ष ला दिया।

आज पर्यटन हमारी अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। विदेशी मुद्रा अर्जित करने, राष्ट्रीय आय बढाने और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने, खासतौर पर दूर दराज के और पिछड़े हुए इलाकों में रोजगार बढाने में पर्यटन की विशेष भूमिका है। प्रस्तुत शोधपत्र में उत्तराखण्ड में पर्यटन की संभावनाओं व पर्यटन को कैसे बढाया जा सकता है पर प्रकाश डाला गया है।

देवभूमि के नाम से प्रसिद्व उत्तराखण्ड राज्य कुल 13 जनपदों, उत्तरकाशी, चमोली, रुद्रप्रयाग, टिहरी गढवाल, देहरादून, गढवाल, पिथौरागढ, बागेश्वर, अल्मोंडा, चम्पावत, नैनीताल, ऊधमसिंह नगर, हरिद्वार को समेटे हुए है। इसकी जनसंख्या वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 1,01,16752 व क्षेत्रफल 53,483 वर्ग किलोमीटर है। हिमालय पर्वत की सुन्दर घाटियां एवं बर्फ से ढकी ऊँची पर्वत चोटियाँ सदैव ही पर्यटकों को आकृर्षित एवं उत्साहित करती है। राज्य की भूमि से भारत वर्श की अति पावन नदियां गंगा और यमुना का उद्गम स्थल भी यंही से है। राज्य के अनेक पर्यटक स्थल, वन्य प्राणी अभ्यारण्य एवं उद्यान तीर्थस्थल लोक संस्कृति व झीलें सभी पर्यटकों को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

पर्यटन की संभावनायें

ताल व झीलें– उत्तराखण्ड की झीलों की बात आती है तो नैनीझील (नैनीताल) ही सर्वप्रथम आता है। परन्तु इसी क्षेत्र में अनेक ऐसी झीलें हैं जो इससे प्राक्तिक सौंदर्य स्वच्छता, आकार में बढकर है। नैनीताल से मात्र 21 किलोमीटर मोटर सडक पर 1356 मीटर ऊँचाई पर कुमाऊँ की सबसे बडी झील भीमताल है। भीमताल से 4 किलोमीटर दक्षिण पूर्व मे 1341 मी0 की ऊँचाई पर नौकुचियाताल इस क्षेत्र की गहरी झील है। घने वनों से घिरी इस झील का सौंदर्य अद्भुत है नैनीताल से ही 23 किमी भीमताल से 10 किलोमीटर पश्चिम में लगभग 1450 मी0 की ऊँचाई पर स्थित सातताल झील प्रकृति की अद्भुत रचना है। इस झील समूह में सीताताल, रामताल, लक्ष्मणताल, भरततताल, शत्रुघनताल, हनुमानताल और पन्नाताल सम्मिलित है। इसी प्रकार गढ़वाल मण्डल में उत्तरकाशी में 10 हजार फीट की ऊँचाई पर घने भोज वनों से घिरा लगभग 3 किमी शटकोणी आकार में फैली डोडीतालझील है। इसी क्षेत्र में काणाताल तथा हिमाचल सीमा पर भडासरताल एंव वायाताल है। बद्रीनाथ से 20 किलोमीटर उत्तर पश्चिम में 14500 फीट की ऊँचाई पर हिमाच्छादित पर्वतों के बीच संतोपंथ ताल है। केदारनाथ धाम से 3 किलोमीटर उत्तर की ओर चौराबाडी सरोवर है, और 4 किलोमीटर आगे नील कमलों के लिए प्रसिद्व वासुकीताल, देवताल स्थित है। इसके अतिरिक्त उत्तराखण्ड अनेकों ताल एवं गरमपानी के कुण्डों से भरा पडा है।

---

*असिस्टेंट प्रोफेसर (भूगोल विभाग) इंदिरा प्रियदर्शिनी राजकीय स्नातकोत्तर महिला वाणिज्य महाविद्यालय हल्द्वानी (नैनीताल)

**असिस्टेंट प्रोफेसर, (भूगोल विभाग) राजकीय महाविद्यालय चौखुटिया (अल्मोड़ा)

फुलों की घाटिया एंव बुग्याल– संसार में केवल भ्यूडार घाटी अर्थात वैली ऑफ फलावर को ही लोग फूलों की घाटी के नाम से जानते हैं परन्तु उस क्षेत्र में इसके अलावा भी अनेकों फूल घाटियां हैं, जो आकार एवं फूलों की विविधता में कई गुना आगे है। जिनसे अभी भी पर्यटक अनभिज्ञ है। फूल घाटियों में पर्यटन का समय प्रायः जून प्रथम सप्ताह से अक्टूबर प्रथम सप्ताह तक है।

जनपद चमोली मुख्यालय गोपेश्वर में 1400 फीट की ऊँचाई पर रुद्र हिमांल फूल घाटी का पुष्प शृंगार देखते ही बनता है। जोशीमठ से आगे औली गुरसों की फूल घाटी, मदमहेश्वर की फूल घाटी एंव कल्पनाथ की फूल की घाटी है। उत्तरकाशी जनपद में पुरौला से आगे ओसला गाँव से 3 किलोमीटर हरकीदून मखमली पुष्पघाटी आरम्भ होती है। इसी जनपद में भटवाडी नामक स्थान पर मांझीवन वृक्षों की घाटी ब्रहमकमल, फेणकमल आदि मनोहारी फूलों के लिए जानी जाती है। गंगोत्री मार्ग पर सुक्खी और थराली फूल घाटी 5 किलोमीटर क्षेत्र में फैली है। गंगोत्री से केदारनाथ पैदलमार्ग पर कुशकल्याण, सहस्त्रताल, पपालीकांठा आदि अनेकों रंग बिरंगी फूल घाटियां है।

जनपद चमोली में ही थराली, देवाल, मुन्दौली होते हुए रुपकुण्ड फूलघाटी तथा वेदनी बुग्याल 16 हजार फीट की ऊँचाई पर 6–7 किलोमीटर क्षेत्र में विख्यात रुपकुण्ड तक फैला है। इसके अतिरिक्त कई क्षेत्रों में अनेक बुग्याल और फूल घाटियॉ फैली हुई है।

अभ्यारण्य व राष्ट्रीय पार्क– जनजीवन के साथ ही यहाँ दुर्लभ एवं आकर्शक वनस्पति वन्य जीवों को समेटे हुए पार्को, पशुविहार व अभ्यारण्यों का अतुल भंडार है। जनपद नैनीताल में कार्बेट राष्ट्रीय पार्क, चमोली में नन्दादेवी और फूलों की घाटी राष्ट्रीय पार्क के अतिरिक्त यहां पर्यटन की तमाम अनछुई संभावनायें हैं। जिनमें मुख्य इस प्रकार है देहरादून जनपद में मोतीचूर वन्य विहार 100 वर्ग किमी0, उत्तरकाशी में गोविन्द पशु विहार 953 वर्गकिमी, चमोली में केदारनाथ वन्यजीव विहार 957 वर्ग किमी, पौडी गढवाल में चीला वन्य विहार 249 वर्गकिमी0, सोना नदी वन्य विहार 600 वर्गकिमी0 क्षेत्र में फैले व अनेक विपुल वन्य जीवों पशु–पक्षियों और वनस्पतियों की प्राकृतिक सुशमा से भरपूर है।

उत्तराखण्ड राष्ट्रीय उद्यान व वन्य जीव विहार

क्र0 सं0	नाम	स्थापना वर्ष	क्षेत्रफल (वर्ग किमी0)	जनपद
1	कार्बेट नेशनल पार्क	1935	521	नैनीताल, पौडी गढवाल
2	नंदा देवी राष्ट्रीय उद्यान	1982	630	चमोली
3	राजाजी राष्ट्रीय उद्यान	1983	82	देहरादून, हरिद्वार, पौडी गढवाल
4	फूलों की घाटी राष्ट्रीय उद्यान	1982	87	चमोली
5	गंगोत्री राष्ट्रीय उद्यान	1992	2390	उत्तरकाशी
6	गोविन्द राष्ट्रीय उद्यान	1992	472	उत्तरकाशी
7	गोविन्द वन्य जीव विहार	1955	953	उत्तरकाशी
8	केदारनाथ वन्य जीव विहार	1972	957	चमोली
9	अस्कोट वन्य जीव विहार	1986	600	पिथौरागढ
10	सोना नदी वन्य विहार	1987	301	पौड़ी गढवाल
11	विन्सर वन्य जीव विहार	1988	46	अल्मोडा
12	मसूरी वन्य जीव विहार	1993	11	देहरादून

इन राष्ट्रीय उद्यानों एवं वन्य जीव विहारों में विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षियों एवं वन्यजीवों के सौन्दर्य से पर्यटक अभिभूत हो सकता है। जिनमें मुख्य रुप से मोनाल, कस्तूरीमृग, भरल सेराउमृग, थार–धुरबाध, मृग सांभर, चीतल, काकड़, शेर, गुलदार, काला भालू, जंगली मुर्गे आदि विचरण करते देखे जा सकते है।

लोक संस्कृति एवं वन्य जीवन– ऐतिहासिक मंदिरों, स्मारकों, खण्डहरों के साथ ही यह क्षेत्र अपनी विभिन्न लोक संस्कृतियों और अद्भूत जीवन शैली का खजाना है। सीमान्त जनपद चमोली ,पिथौरागढ के राजी (वनरावत) मुनस्यारी की शौका, धारचूला में व्यास सोर घाटी की भोटिया, नैनीताल तथा देहरादून की तराई में थारु और बुक्सा रवाई क्षेत्र में जौनसारी, उत्तरकाशी में भागीरथी तथा यमुनाघाटी में जाड तथा जनपद चमोली में माणा की घाटी मार्च्छा तथा नीति घाटी की तोच्छा समुदाय की अपनी पृथक–पृथक लोक संस्कृति और जीवन शैली के साथ ही कुमाऊँनी व गढवाली संस्कृतियों का अनूठा संगम है। इसके साथ ही तमाम व्यापारिक एवं सांस्कृतिक मेंले, उत्सवों, तीज, त्यौहारों का अपना विशिष्ट महत्व है। इसमें यहां के हस्तशिल्प कला एवं हथकरघा वस्तुओं की प्रधानता रहती है। इस प्रकार संसाधनों की कमी नहीं वरन् आवश्यकता है पर्यटन के विकास की समग्र नीति की।

प्रमुख पर्यटक स्थल– इस प्रदेश को देवभूमि कहा गया है धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आधुनिक पर्यटन के आयाम इस प्रदेश को देश के पर्यटन उद्योग–क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान दिलाते हैं। इस प्रदेश में धार्मिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक पर्यटन की प्रमुख रीढ़ है, नंदा देवी, नंदप्रयाग, रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग ,बिष्णुप्रयाग, मदमहेश्वर, लाखामण्डल, महासमंदिर, आदिबद्री, नैनादेवी, फूलों की घाटी, राजाजी नेशनल पार्क, कफनी ग्लेशियर, रुपकुण्ड, कैम्पटीफाल, नारायण आश्रम, मिलम ग्लेशियर, आदि। इस क्षेत्र के पर्यटन को बढावा देने के लिए निम्न चार पर्यटक कम्प्लैक्स में बाँटा जा सकता है।

1. **नैनीताल टूरिस्ट कम्प्लैक्स**– नैनीताल भवाली ज्योलीकोट, मुक्तेश्वर व रामगढ आदि पर्यटक केन्द्र भीमताल, नौकुचियाताल, सातताल, आदि झीलें इस कम्प्लैक्स के प्रमुख आकर्षण हैं। इन्हें संभाल कर संरक्षित व सुरक्षित रखना पर्यटन के विकास के लिए आवश्यक है। कार्वेट नेशनल पार्क विश्वविख्यात वन्य प्राणी पर्यटन स्थल है।
2. **अल्मोंडा टूरिस्ट कम्प्लैक्स**– इस टूरिस्ट कम्प्लैक्स में अल्मोडा, रानीखेत, कौसानी, पूर्णांगिरी, बैजनाथ, जागेश्वर आदि पमुख पर्यटन आकर्षण है।
3. **मसूरी–देहरादून टूरिस्ट कम्प्लैक्स**– इस टूरिस्ट कम्प्लैक्स में देहरादून, मसूरी कैम्पटीफाल, टिहरी और उत्तरकाशी व श्रीनगर के खूबसूरत पर्यटन स्थल हैं।
4. **चार धाम यात्रा टूरिस्ट कम्प्लैक्स** – भारत की पवित्रतम नदियों में से गंगा, यमुना के स्रोत गंगोत्री (गौमुख) व यमुनोत्री तथा मिलम व पिण्डारी हिमनद इस क्षेत्र के पर्यटन विकास संभावनाओं के आधारी हैं इसके अन्तर्गत बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री, हरिद्वार, ऋषिकेश प्रमुख पर्यटक व धार्मिक स्थल आते है। इसके अतिरिक्त

देव प्रयाग, रुद्रप्रयाग विष्णुप्रयाग, ब्रह्मप्रयाग, व नन्दप्रयाग की पवित्रतम पर्यटन की असीम संभावनाओं को समेटे हुए है।

उत्तराखण्ड में आने वाले पर्यटकों की संख्या :

वर्ष	राष्ट्रीय पर्यटकों की संख्या (मिलियन)	अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटका की संख्या (मिलियन)	कुल पर्यटकों की संख्या (मिलियन)
2000	11.8	0.057	11.137
2001	10.55	0.055	10.605
2002	11.65	0.056	11.706
2003	12.93	0.064	12.994
2004	13.83	0.075	13.905
2005	16.28	0.093	16.373
2006	19.36	0.096	19.456
2007	22.15	0.106	22.256
2008	23.06	0.112	23.172
2009	23.15	0.118	23.268
2010	30.97	0.136	31.106
2011	26.67	0.143	26.813
2012	28.29	0.125	28.415
2013	19.94	0.097	20.037
2014	21.99	0.102	22.092

स्रोत्र :– पर्यटन मन्त्रालय, यस बैंक विशलेषण

राज्य में वर्ष 2000 में आने वाले लगभग 11 मिलियन घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों की संख्या वर्ष 2012 तक 28 मिलियन हो गयी। किन्तु वर्ष 2013 में राज्य में आयी बाढ़ और भूस्खलन के कारण उस वर्ष पर्यटकों की संख्या में 30 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई। किन्तु अगले ही वर्ष 2014 में पुनः राज्य ने 10 प्रतिशत की वृद्विप्राप्त कर ली। पर्यटकों की संख्या में हो रही वृद्वि राज्य में पर्यटन विकास सम्बन्धी सार्थक योजनाओं के निर्माण एवं उनके क्रियान्वयन का सकारात्मक प्रतिफल है। इसलिए हमें राज्य सरकार द्वारा बनायी गयी योजनाओं पर भी दृष्टि रखनी होगी। पर्यटन के विकास के लिए पर्यटन नीति बनानी होगी।

पर्यटन नीति

1. उत्तराखण्ड में धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक महत्त्व के स्थलों मनोरंजन व साहसिक पर्यटन स्थलों का गहन सर्वेक्षण किया जाए तथा प्रत्येक स्थल को पर्यटन स्थल के रुप में विकसित करने हेतु मास्टर प्लान तैयार किया जाए।

2. उत्तराखण्ड में मध्यम वर्गीय पर्यटन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखतें हुए फैब्रीकेटेड भवनों का निर्माण किया जाए। इसका भरपूर फायदा स्थानीय बेरोजगार युवाओं को दिया जाना चाहिए।

3. उत्तराखण्ड में ऐसे स्थानों पर जो कि भूकम्पीय एवं परिस्थितिकीय से अति संवेदनशील हैं। उनमें पाँच सितारा होटलों का निर्माण न कराया जाए।

4. उत्तराखण्ड के पर्यटक स्थलों के राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी प्रचार प्रसार के लिए ठोस रणनीति बनाई जाए।

5. उत्तराखण्ड के परिप्रेक्ष्य में विकास की नीति के तहत ग्रामीण अंचलों का विकास सर्वमान्य है न कि आर0सी0सी0 के स्तम्भों का इस हेतु पर्यटन के विशेषज्ञों को जिनका ज्ञान पहाडों से संदर्भित हो, विचार विमर्ष कर उनके ज्ञान का समुचित उपयोग कर पर्यटन विकास को वास्तविक स्वरुप दिया जाना चाहिए।

6. उत्तराखण्ड में पर्यटन के विकास के लिए स्थानीए वस्तुओं व हस्तशिल्प का उपयोग भी पर्यटन के लिए आवश्यक है। इस हेतु शहद, ठेकी, उन स्थलों पर होने वाली सब्जियों आदि का उपयोग क्षेत्रीय महिलाओं द्वारा प्राचीन तरीकों से खाना बनाने की पद्वति अल्पना के अन्तर्गत चौकी लिखना आदि पर्यटन को एक नयी दिशा देगी।

7. छोटी–2 पहाडियों को रोपवे से जोडना जहाँ से कि पहाडों का सुन्दर दृष्य अवलोकनीय है बढावा दिया जाना चाहिए।

8. साहसिक पर्यटन, शिलारोहण, पर्वतारोहण, जलक्रीडा, आदि और नैनीताल, रानीखेत में गोल्फ व पिथौरागढ, नैनीताल, में पेराग्लाइडिंग इत्यादि को प्रोत्साहन दिया जाए तो पर्यटन व्यवसाय पर बहुत कुछ किया जा सकता है।

9. प्रदूषण रहित पर्यटन को बढावा देने हेतु स्वैच्छिक संगठनों व राज्य की जनता को सचेत करने की आवश्यकता है। उन्हें इस कार्य हेतु सरकार द्वारा मानदेय देकर प्रोत्साहित किया जाना एक अभिनव प्रयोग होगा।

10. उत्तराखण्ड वासियों को पर्यटनमय होना होगा यह भी आवश्यक है कि पर्यटन के विभिन्न आयाम, इतिहास, लोक सांस्कृतिक परम्पराओं एवं अन्य धरोहरों को संरक्षित कर रोचकता से प्रस्तुत करना होगा।

11. पर्यटन से सम्बन्धित ऋण उपादान योजना के अन्तर्गत सब्सिडी जो आवास, परिवहन,

ट्रेवल ऐजेन्सी आदि पर दी जाती है वह यहाँ बेरोजगार युवाओं व टूरिज्म डिप्लोमा धारकों को ही दिया जाना चाहिए।

12. उत्तराखण्ड के पर्यटक आकर्षणों के देश–विदेश में प्रचार प्रसार की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए पत्र–पत्रिकाएं व समाचार पत्रों व मीडिया प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं।

13. राज्य के पर्यटन को सतत विकास से जोड़ा जाना चाहिए ।

निष्कर्ष रुप में यह कहना उचित होगा कि उत्तराखण्ड की पर्यटन की अपार क्षमता का पूर्ण प्रयोग करने से प्रतिवर्श अत्यधिक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। फलस्वरुप स्थानीय लोगों को अतिरिक्त रोजगार मिलेगा, स्थानीय हस्तशिल्प एवं हथकरघा कला को प्रोत्साहन मिलेगा, आय वृद्विहोगी और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मजबूत होगी। विभिन्न संस्कृतियों का आदान–प्रदान होगा व राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्रीयता की भावना मजबूत होगी।

सन्दर्भ –ग्रन्थ

1. आनन्द एम0एम0 (1976) "भारत में पर्यटन एवं होटल उद्योग–प्रबन्ध में एक स्थिति अध्ययन", प्रिन्टिस हॉल आफ इण्डिया।
2. अग्रवाल परवीज (1981) "क्षेत्रीय पर्यटन का विकास", इकोनोमिक्स टाइम्स (परिशिष्ट)
3. अपराना राज (2004) "सस्टैनेबल टूरिज्म–कोनसैप्ट इस्सू" नैशनल सेमिनार, आल–इण्डिया ऐसोसियेशन उत्तरांचल।
4. जगवीर सिंह (2004) "पर्यटन से सूचना तकनीकी का प्रयोग एवं वाधाये" पेपर पब्लिस्ड नेशनल सेमीनार एच0एन0बी0 गढवाल यूनिवर्सिटी, श्रीनगर उत्तरांचल।
5. जगवीर सिंह (2005) "पर्यटन भूगोल" शिवालिक प्रकाशन 27/16 शक्तिनगर नजदीक नागिया पार्क, दिल्ली 110007
6. निशांत सिंह (2004) "वन्य–जीवन संरक्षण" राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली – 110002
7. ताजरावत (2002) "पर्यटन विकास के विविध आयाम" तक्षशिला प्रकाशन – नई दिल्ली–11000
8. के0के0 दीक्षित (2003) पर्यटन के विविध आयाम तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली–110002
9. भगवती प्रसाद पुरोहित (1996) "उत्तराखण्ड के तीर्थ स्थल" उत्तराखण्ड शोध संस्थान की पत्रिका लखनऊ, भारत
10. दिवान नगर कोटि (1996) "भारतीय मध्य हिमालय में पर्यटन" उत्तराखण्ड शोध संस्थान की पत्रिका लखनऊ, भारत
11. एस0एस0 पांगती (1996) "उत्तरांचल में पर्यटन विकास" उत्तराखण्ड शोध संस्थान की पत्रिका लखनऊ भारत।
12. नौटियाल, शिवानन्द, (1988) "गढवाल दर्शन" सुलभ प्रकाशन, 17 अशोक मार्ग लखनऊ
13. नौटियाल, शिवानन्द, (1988) "कुमाऊ दर्शन" सुलभ प्रकाशन, 17 अशोक मार्ग लखनऊ

भारत का धर्मनिरपेक्ष वास्तुशिल्प

डॉ० सूरज पाल साहू*

प्राचीन भारत के धर्मनिरपेक्ष वास्तुशिल्प का अधिकांश भाग बच नही पाया क्योंकि वह लकड़ी से बनाया गया था। पत्थर भारी और समय साध्य था, वह गरमाता था और खासकर बंद निर्माण के लिए अनुपयोगी था। इसलिए पत्थर का उपयोग उन भवनों को बनाने में किया जाता था, जहां खुले में कार्यकलाप आयोजित होते थे। ग्रीक और चीनी यात्रियों की आत्मकथाएं, साहित्य और राज्य दरबारों के इतिहास, प्राचीन मूर्ति अवशेष और गुफा चित्राकारी–सभी इंगित करते हैं कि भारत में धर्मनिरपेक्ष भवनों की कमी नहीं थी, उनमें से अनेक अलंकारों से सज्जित एवं प्राकृतिक रंगों की चित्राकारी से चित्रित थे।

उदाहरण के लिए, पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं कि आम प्रवेश दरवाजे जिन्हें तोरण कहा जाता था, अनेक राजाओं के द्वारा सम्पूर्ण भारत में बनवाये गए थे। उनमें से कुछ इस्लामिक आक्रमणों के दौरान नष्ट कर लिए गए और कुछ को नया रूप देकर शाकों के महल में लगवा दिया गया था। इस पर भी, जैसे तैसे कुछ बचे रह गए और वे ही इस बात के प्रमाण हैं कि भारत में इनके निर्माण की उच्चकोटि की दक्षता उपलब्ध थी। इन तोरणों ने ही प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत की बड़ी राजधानियों में प्रवेश करने वालों का स्वागत किया था।

दिल्ली में, 5वीं और 6वीं शताब्दी के गुप्तकालीन अवशेष खास प्रभावी हैं बिल्कुल गुजरात के वाडनगर के तोरणों के सदृष्य, जिनमें से एक ही बचा हुआ है। उसका निर्माण काल 9 से 10वीं शताब्दी के करीब है। 12 से 13 वीं सदी के सोलंकियों की राजधानी में चार ऐसे द्वार हैं जिनमें से प्रत्येक पर आकर्शक नक्काशी की गई है। इसी प्रकार चार सुन्दर तोरण 13वीं सदी के काकथियों की राजधानी वारंगल में आज भी खड़े हैं। 14वीं शताब्दी में वारंगल का अधिकांश ढहा दिया गया था, परन्तु भग्नावशेष वास्तुशिल्प के विशाल सम्मुच्चय होने के संकेत देते हैं। उस सम्मुच्चय में प्रार्थनागृह, राजशाही मंडप और संभवतया आम सभागृह का समावेश है।

बंगाल के सुलतान के समय तोरण की प्रथा जारी रही। शेरशाह सूरी और मुगलों ने आयताकार आकार को अर्द्ध गोलाकार या स्तूपाकार या महराबों में बदला था परन्तु श्रीरंगम, तामिलनाडू में तोरणों के भव्य एवं विशाल स्वरूप आज भी स्थित है।

पत्थर और कभी–कभी ईटें, मोहनजोदड़ों की तर्ज पर सीढ़ीदार कुआं एवं धरातल से नीचे स्नानागार अथवा तैरने के तालाब के निर्माण में उपयोग की जातीं थीं। 9वीं सदी के बाद तो उनका उपयोग ज्यादा दी होने लगा था। मोदेहरा, गुजरात के समान ऐसे कुयें कभी तो मंदिर के समीप बनवाये जाते और कभी कुछ राजसी महलों के समुच्चय में। पटना की रानी के सीधे कुयें केसश्य चिताकर्शक प्रतिमाओं की कतार और अदजल के साथ अलंकृत

*असि0 प्रोफेसर ललित कला विभाग बरेली कालेज, बरेली

आले तथा सुन्दर झरोखे सहित अनेक कुयें उपलब्ध हैं। राजस्थान में बूंदी शहर में थोड़े कम परन्तु कलात्मक और मनभावन उदाहरण उपलब्ध हैं। चौहानों से संबंधित अनेक रूचिपूर्ण निर्माण अजमेर–दिल्ली के इलाकों में पाये गए हैं।

अलबरूनी ने इतिहास के अभिलेखों में खासकर सीधदार कुएं और बावली का वर्णन किया है। बावलियां राजसी एवं जनता, दोनों, के उपयोग के लिए बनवाई जाती थीं। उत्तर पश्चिमी भारत में और हरियाणा के फरूखनगर में ऐसे ही कुछ निर्माण जल–व्यवस्थापन योजना के अंग के समान प्रतीत होते हैं।

प्राचीन भारत के विश्वविद्यालयों के भग्नावशेष पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है यथा–तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला या सारनाथ। इन विश्वविद्यालयों में गणित, ज्ञानशास्त्र, तर्कशास्त्र, प्रकृति विज्ञान और औषधिविज्ञान के साथ विभिन्न विशयों पर अध्यापन उपलब्ध होता था। नालंदा तो ''कालेज कैम्पस'' की याद ताजा करता है। नालंदा में निवास के साथ–साथ अध्यापन के भवन के अवशेष प्राप्त हैं। इस प्रकार से इन ऐतिहासिक स्थलों को ''धार्मिक'' बतलाना, स्पष्ट है, भ्रामक होगा।

यद्यपि बड़े तौर पर, भारत के किलों को इस्लामी योगदान का मानने की प्रथा सी रही है, परन्तु राजपूत किलों को इस सामान्य रिवाज से अलग ही देखा जाता है। भारत में पहाड़ों पर शताब्दियों पूर्व से बने हुए किलों को चिन्हित किया जा सकता हैं, जिन्हें इस्लामिक राजाओं ने फतह किया था। इस प्रकार के किलों के उदाहरण मध्य भारत में कालिंजर तथा अजयग में अभी भी उपलब्ध हैं, उनमें से अनेक किलों को पहले से ही त्याग दिया गया था। बाद के काल में राजपूतों ने किलों में विशाल राज महलों को बनवाना सीखा जिनमें गर्मी से बचाव के तरीके और अधिकतम प्रकाश और वायु की सुनिश्चितता की तकनीक खोजी गई। अधिकांश महलों में खूब सजावट की जाती थी। कला एवं सजावट की अंतरदृष्टि का पता इनसे चलता है जिन्हें राजशाही का संरक्षण प्राप्त रहता था।

इसलिए बहुत ही बेतुका है कि पश्चिमी कमला कर्मज्ञों ने कैसे भारतीय धरोहरों को धर्म की परिधि में रखने की चेष्टा की थी ? यहां तक कि जब पश्चिमी कला इतिहासकारों ने अपना ध्यान केवल मंदिरों और स्तूपों पर खासकर केंद्रित किया परन्तु भयंकर भूल तब की जब अन्य स्मारक और उनके निर्माण की प्रेरणा दोनों को अपने विश्लेषणों से बाहर किया।

गाँधी के स्वराज्य की अवधारणा का उदात्तीकरणः राम राज्य

शक्ति मोहन नौटियाल*

स्वराज्य शब्द एक सनातनी शब्द है, जिस का तात्पर्य स्वयं का स्वयंम पर नियंत्रण। गाँधी जी एक ऐसी शासन व्यवस्था की परिकल्पना करते हैं। जिसमें व्यक्ति किसी बाहरी सत्ता के नियंत्रण में न होकर के स्वयं के नियंत्रण में होगा। इस स्वनियत्रण का निहितार्थ अनियंत्रित स्वतंत्रता कदापी नहीं है बल्कि इस का निहितार्थ आत्म नियंत्रण अवश्य होगा। गांधी जी अपने पत्र यंग इण्डिया में स्वराज्य की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहते है– ''स्वराज शब्द एक पवित्र शब्द है। वह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ है आत्म शासन और आत्म संयम है। अग्रेजी शब्द 'इंडिपेन्डेस' शब्द अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरकुंश आजादी या स्वच्छता का अर्थ देता है। वह अर्थ स्वराज शब्द में नही है।[1]

स्वराज शब्द की व्यापकता पर यदि दृष्टि पात करें तो स्पष्ट होग कि ऐसी शासन व्यवस्था जो भारतीय जन मानस की सामूहिक इच्छा शक्ति का प्रतिफल है जो भारतीय आम नागरिको की आय सहमति के अनुसार भारतीय परम्परा से युक्त शासन व्यस्था है। इस शासन व्यवस्था को हर एक उस भारतीय की सहमति प्राप्त होगी जो जन्म से भारतीय हो या आ करके भारत में बस चुका हो और वह अपने कायकी श्रम द्वारा इस राष्ट्र की सेवा करने का आत्म बल रखता हो, वही मतदान करने का भागीदारी भी होगा। गांधीजी स्वयं के शब्दों में स्वराज का निहिर्ताथ स्पष्ट करते हुए कहते है, "स्वरराज से मेरा अभिप्राय है लोक सहमति के अनुसार चलने वाला भारत वर्ष का शासन। लोक सम्मति का निश्चय देश के बालिग लागों की बडी से बडी तादात के मत के द्वारा हो , फिर वे चाहे सित्रियां हो या पुरूष, इसी देश के हो या इस देश में आकर बस गये हो। ये लोग ऐसे हो जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और मतदान सूची में अपना नाम लिखा लिया हो।"[2]

गांधी जी भारत वर्ष के लिये ऐसे स्वराज का चित्र निरूपित करते है। जहाँ नागरिक निजी स्वार्थ की जगह राष्ट्र की भलाई के लिए अपना सर्वस्व देने को तत्पर हो। जहाँ के नागरिकों का चरित्र धर्म सम्मत हो गांधी जी नागरिको के चरित्र का धर्म सम्मत होना आवश्यक मानते है क्योकि यदि नागरिकों का चरित्र धर्म सम्मत नहीं होगा तो ऐसा शासन स्वराज का परिचायक न हो करके अराजकता का परिचायक अवश्य होगा, इस बात का स्पश्टीकरण हमें गांधी जी के इस वक्तव्य में देखने को मिलता है जिसमें वे कहते है– ''स्वराज्य की रक्षा केवल वही हो सकती है जहां देशवासियों की ज्यादा बड़ी संख्या, ऐसे देश भक्तों की हो, जिनके लिए दूसरी सब चीजों से अपने निजी लाभ से भी–देश की भलाई का ज्यादा महत्व हो। स्वराज का अर्थ है देश की बहुसंख्यक जनता का शासन। जाहिर है कि जहां बहुसंख्यक जनता नीतिभ्रष्ट हो या स्वार्थी हो, वहां उसकी सरकार अराजकता की स्थिति पैदा कर सकती है, दूसरा कुछ नही।''[3]

---

*सौधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, एच0एन0बी0 गढवाल, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल

1. गांधी जी भारत के लिए ऐसे स्वराज का दृश्य तैयार करते है जहा गरीब से गरीब व्यक्ति की भागीदारी होगी जीवन यापन करने के लिए जिन वस्तुओं का उपभोग राजा व अभिजन वर्ग करता है वही गरीब से गरीब व्यक्ति को भी प्राप्त होगी। जहां किसी प्रकार का भेदभाव दूर दूर तक नजर न आता हो। गांधी जी यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि ऐसे स्वराज की बात में नहीं करता हूँ जहां हमें राजाओं और अमीरों जैसे प्रसाद मे रहने को मिले, लेकिन वे यह अवश्य स्वीकार करना चाहते हैं कि आम जनता को जीवन की वे सामान्य आवश्यकताऐं अवश्य मिलनी चाहिए जो अमीर व्यक्ति को प्राप्त है। इस बात का स्पष्ट वर्णन हमें गाँधी जी के इस वकत्व्य में इस प्रकार से मिलता है– ''मेरे सपनों का स्वराज गरीबों का स्वराज होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का अपभोग राजा और अमीर व्यक्ति करते हैं, वही गरीबों को भी सुलभ होना चाहिए, इसमें फर्क के लिए स्थान नहीं हो सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिये। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नहीं है। हमें महल में रख दिया जाए तो हम घबरा जायेगें लेकिन आप को जीवन की वे सामान्य सुविधायें अवश्य मिलनी चाहिये, जिनका उपभोग अमीर आदमी करता है। मुझे इस बात में बिल्कुल सन्देह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तब तक पूर्ण स्वराज नहीं होगा, जब तक वह आपकों ये सारी सुविधायें देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता।''[4]

गाँधी जी के स्वराज में आप जनमानस राज्य की किसी भौतिक शक्ति के अधिपत्य में नहीं रहेगा चाहे वह राज्य की शक्ति विदेशियों के द्वारा संचालित हो या स्वदेशियों के द्वारा संचालित। क्योंकि गाँधी ही सवयं नागरिकों के व्यक्तिगत जीवन में राज्य का किसी भी प्रकार के नियंत्रण को स्वराज की संज्ञा कतई प्रदान नहीं करते हैं। वे कहते हैं–''स्वराज का अर्थ नियंत्रण से मुक्ति होने के लिऐ लगातार प्रयत्न करना फिर वह नियंत्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी।''[5]

गाँधी जी ऐसे स्वराज की कल्पना करते हैं जहाँ न तो जातीवाद आधारित भेदभाव होगा और नाहिं धार्मिक असहिष्णुता। सब को समान न्याय प्राप्त होगा। जहाँ ऊँच नीच की मानसिकता दूर दूर तक नजर नहीं आयेगी। वे कहते हैं– ''हमारे सपनों के स्वराज्य में जाति धर्म के भेदों का कोई स्थान नहीं हो सकता। उस पर शिक्षितों या धनवानों का अधिपत्य नहीं होग। वह स्वराज्य सब के लिये , सबके कल्याण के लिये होगा। सबकी गिनती में किसान तो आते हैं, किन्तु लूलें, लंगड़ो, अन्धे और भूख से मरने वाले लाखों करोड़ों मेहनतकश मजदूर भी अवश्य आते हैं।'' [6]

गाँधी जी स्पष्ट मन्तव्य था कि भारत के लिऐ ऐसा स्वराज नहीं होना चाहिए जिसमें बहुसंख्यक धर्म वाले लोगों का अधिपत्य अल्पसंख्यक धर्म के मतवालम्बियों पर हो यदि ऐसा होता है तो वे ऐसे स्वराज को स्वीकार करना कतई पसंद नहीं करेंगे। इस बात का स्पष्ट उदाहरण उनके इस मनतवय में मिलता है–'' कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय स्वराज तो ज्यादा संख्या वाले समाज का यानी हिन्दुओं का ही राज्य होगा। इस मान्यता से ज्यादा बड़ी

कोई दूसरी गलती नहीं हो सकती। अगर यह सिद्वहो तो अपने लिए मैं ऐसा कह सकता हूँ कि मैं उसे स्वराज्य मानने से इनकार कर दूँगा और अपनी सारी शक्ति लगाकर उसका विरोध करूँगा। मेरे लिए हिन्द स्वराज का अर्थ सब लोगों का राज्य, न्याय का राज्य है''।[7]

गाँधी जी साध्य और साधन दोनों की सुचिता पर बल देते हैं। उनका स्पष्ट मानना है स्वराज को प्राप्त करने का साधन सत्य और अहिंसा है। असत्य और हिंसा के बल पर प्राप्त किया गया स्वराज उनकी दृष्टि में कतई स्वीकार्य नहीं है। क्योंकि उनका मानना है कि स्वराज का संचालन भी सत्य और अहिंसा के द्वारा करना होगा, और उसे कायम भी इन्ही दो तत्वों के द्वारा रखना होगा। वे कहते हैं– ''मेरी कल्पना का स्वराज्य तभी आयेगा जब हमारे मन में यह बात अच्छी तरह जम जाऐ कि हमें अपना स्वराज सत्य और अहिंसा के शुद्ध साधनों द्वारा ही हासिल करना है। उन्ही के द्वारा हमें उसका संचालन करना है और उन्ही के द्वारा हमें उसे कायम रखना है।''[8]

गाँधी जी के स्वराज की अवधारणा का उदात्तीकरण रामराज्य है, गाँधी जी का रामराज्य इस नैतिक सता का परिचायक है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति प्रेम, न्याय ,अहिंसा पूर्ण आचारण से युक्त होगा। ऐसा राज्य संसदीय शासन व्यवस्था के द्वारा निरूपित कानून के द्वारा संचालित न हो करके नैतिक सत्ता से संचालित होगा।

इस बात की प्रमाणिकता हमें गाँधी जी के द्वारा हरिजन नामक पत्र में लिखे गये उनके लेख से स्पष्ट होती है वे कहते हैं–

''राजनीतिक स्वाधीनता से मेरा मतलब यह नहीं कि विद्रिश पार्लियामेण्ट या रूस के सोवियत शासन या इटली के फासिस्ट राज्य या जर्मनी की नाजी हुकुमत की नकल की जाऐ। उनकी प्रणाली उनकी प्रकृति के अनुकूल है। हमें अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रणाली अपनानी चाहिये। वह क्या हो सकती है, यह बताना मेरे बूते की बात नहीं। मैने उसे राम राज्य कहा है, अर्थात शुद्ध नैतिक सत्ता के आधार पर आम जनता की सवोपरी सत्ता होगी।''[9]

गॉधी जी का रामराज्य जो वास्तव में उनके स्वराज का उदत्तीकरण है उसके स्वभाव प्रकृति एवं उसके स्वरूप का अध्ययन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से कर सकते है–

1. रामराज्य स्वराज का आदर्श स्वरूप है जिस का तात्पर्य धर्म के राज्य से है जिसका स्वभाव प्रेम, अहिंसा ओर जनता की सर्वोचता है।
2. यह राज्य प्रत्येक व्यक्ति के स्वराज से उत्पन्न जनसत्तात्मक राज्य है और उस राम राज्य की परिणति प्रत्येक व्यक्ति अपनी नागरिकता के नाते अपने धर्म के पालन में निहित करें।
3. राम राज्य मे किसी भी व्यक्ति को अपने अधिकार का जिर्क करने की जरूरत नही होगी क्योंकि सच्चें अधिकार का पालन उसके द्वारा धारण किये गये धर्म में निहित है।

4. रामराज्य में एक और सम्पन्नता और दूसरी और दूसरी ओर व्यथित करने वाली गरीबी नही होगी ओर न ही इसमें कोई भूख से मरने वाला होगा। यह राज्य पशु बल भय के स्थान पर लोगों में सहयोग, विवेक और प्रेम पर अविलम्बित रहेगा।

5. गांधी जी का राम राज्य सर्व धर्म समभाग का पोशक है जिसमे समस्त धर्म के मतवालम्बियों और समस्त वर्ग व वर्ण के लोग समानता मूलक जीवन जीते है।

6. रामराज्य का अर्थ है कम से कम राज्य जिसमें लोग आपस मे मिलकर अपना कार्य करेंगे। यहां का कानून का भय नही रहेगा बल्कि लोगों लोगों के द्वारा चलाये गये सुधारों के अनुकूल कानून मे सुधार करने के लिये व्यवस्थापिका सभायें और व्यवस्था के लिये अधिकारी कार्य करेंगें।

7. रामराज्य केवल एक देश की जनता के लिये नही बल्कि सारी दुनिया के लिये उत्तम राज्य का आदर्श होगा। यदि एक जगह यह प्रयोंग सिद्वहो जाता है। तो उसकी छूत समस्त संसार मे फैली जानी चाहिये।[10]

सन्दर्भ–ग्रंथ

1. गांधी एम0के0 स्वराज का अर्थ, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2011 पृष्ठ संख्या 5
2. गांधी जी, ग्रामस्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, संस्करण 2013 पृष्ठ 1
3. गांधी जी, ग्रामस्वराज्य, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, संस्करण 2013 पृष्ठ 5
4. गांधी एम0के0 स्वराज का अर्थ सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन नयी दिल्ली, संस्करण 2011 पृष्ठ 6
5. चर्तुवेदी सतीश, स्वेदेशी एवं गांधी चिंतन पोइन्टर पास्लेर्शस, जयपुर संस्करण 2008, पृष्ठ 65
6. चर्तुवेदी सतीश, स्वेदेशी एवं गांधी चिंतन पोइन्टर पास्लेर्शस, जयपुर संस्करण 2008, पृष्ठ 65
7. गांधी जी मेरे सपनों का भारत नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, संस्करण 2013 पृष्ठ 9
8. गांधी जी मेरे सपनों का भारत नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, संस्करण 2013 पृष्ठ 11
9. गांधी जी सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबार, संस्करण 2012 पृष्ठ 84,85
10. मशरूवाला किशोरलाल घ गॉधी विचार–दोहन, सस्ता साहित्य मंडल, प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2011 पृष्ठ 69, 70, 71

बौद्ध साहित्य एवं स्त्री–एक अध्ययन

रेखा राजपूत*

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बुद्ध का अभ्युदय भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। बौद्ध धर्म यद्यपि प्रारम्भ से ही सैद्धान्तिक रूप से समतावादी रहा है[1]। गौतम बुद्ध की करूणा एवं उदारता ने समान भाव से समाज के सभी वर्गों को लाभान्वित किया। परिस्थितिजन्य, एकाकीपन एवं दुखों से निवृत्ति, श्रेष्ठ जीवन अनन्तः निर्वाण की प्राप्ति की आशा ने पवित्र, अपवित्र, विवाहित, अविवाहित सभी वर्गों की स्त्रियों को बौद्ध धर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया।

गौतम बुद्ध तथा उनके प्रिय शिष्य आनन्द का नारियों के प्रति अत्यन्त सकारात्मक दृष्टिकोण था। यद्यपि प्रारम्भ में बुद्ध ने संघ में स्त्रियों को प्रवेश की अनुमति प्रदान नही दी थी क्योंकि उनका विचार था कि संघ में स्त्रियों को प्रवेश देने से संघ भोग–विलास के केन्द्र बन जायेगें उन्होंने आनन्द से कहा था कि आनन्द –यदि तथागत प्रवेशित धर्म विनय में नारियाँ घर से बेघर हो प्रवज्या न पाती तो ब्रह्मचर्य चिर स्थायी होता, सदधर्म एक हजार वर्ष ठहरता। परन्तु चूँकि आनन्द ! नारियाँ घर से बेघर हुई हैं इसलिये अब यह ब्रह्मचर्य चिर स्थायी न होगा, सदधर्म पाँच सौ वर्षों ही ठहरेगा[2]। लेकिन जब उनके शिष्य आनन्द एवं उनकी विमाता प्रजापति गौतमी ने बुद्ध से प्रार्थना करते हुए कहा कि महिलायें भी आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हैं अतः उन्हे भी संघ में प्रवेश दिया जाये, इससे उन्हे वंचित न किया जाये तब बुद्ध ने संघ में नारियों के प्रवेश की अनुमति आठ नियमों के साथ प्रदान की ।

इन नियमों के अनुसार एक चिरदीक्षित भिक्षुणी (जो 100 वर्षो से संघ में प्रवजित हो) को भी सहःदीक्षित भिक्षु से अभिवादन करना आवश्यक था साथ ही इस धर्म का सत्कार, गौरव, मान एवं पूजन करते रहना होगा। इसका जीवनपर्यनत कभी उल्लंघन न हो,[3] भिक्षुणी को प्रव्रजित होने के लिए भिक्षु संघ एवं भिक्षुणी संघ दोनों सें अनुमति प्राप्त करनी होती थी जबकि भिक्षु भिक्षुणियों की अनुमति के बिना ही संघ में प्रवेश कर लेते थें[4]। किसी भी भिक्षुणी को ऐसे स्थान में वर्षा–वास करनें की अनुमति नही थी जहाँ कोई भिक्षु निवास करता हो[5], वर्षावास समाप्त होने पर भिक्षुणी को अपने पाप (यदि कोई हो तो) भिक्षु एवं भिक्षुणी दोनों संघों के समक्ष स्वीकार करने पड़ते थे, [6] किसी अपराध की दोषी होने पर भिक्षुणी को दोनों संघो से क्षमा याचना करनी होती थी, [7] भिक्षुणी भिक्षु संघ को धार्मिक प्रवचन नही दे सकती थी जबकि चयनित भिक्षु प्रवचन देने के अधिकारी थे ,[8] दो वर्शों तथा छह धर्मों में शिक्षाप्राप्त एवं शिक्षमाणा भिक्षुणी को दोनों संघों में उपसम्पदा करनी चाहिए एवं दो वर्शों तक छह धर्मों में शिक्षाप्राप्त एवं शिक्षमाणा भिक्षुणी को दोनों संघों में पक्षमानता करनी चाहिए[9],। कैसा ही कारण उपस्थित होने पर भी भिक्षुणी को किसी भिक्षु के प्रति आक्रोश या अपमान के शब्द

*शोध छात्रा प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रयुक्त नही करने चाहिए। आज से भिक्षुओं के प्रति भिक्षुणियों का कुछ कहना निशिद्ध किया जाता है। हाँ भिक्षुणियों द्वारा प्रमाद होने पर, भिक्षु उनको कुछ कह सकतें हैं,[10] इस धर्म का भी भिक्षुणियों को सत्कार, गौरव, मान एवं पूजन के साथ पालन करना होगा। परन्तु इन आठ नियमों के साथ संघ में प्रवेश की धारणा बुद्ध की थी अथवा परवर्ती भिक्षुओं की यह कहना बहुत मुश्किल है।

यद्यपि यह नियम निश्चित ही भेदभाव पूर्ण थे परन्तु फिर भी स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति प्राप्त होना ही महत्वपूर्ण था, जिसनें उन्हे एक सम्मानजनक मार्ग दिखाया[11]। जिस पर चलकर स्त्रियाँ अपनी एवं अन्य लोगों की अध्यात्मिक उन्नति का प्रयत्न कर सकती थी । बुद्ध द्वारा स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति दिये जाने के कारण उन्हे शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला जिससे बहुत सी नारियाँ ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई धार्मिक तथा दार्शनिक विषयों में ज्ञान प्राप्त करने लगी। थेरीगाथा में पचास ऐसी थेरियों के (स्थिविर–स्त्रियों) के उल्लेख मिलतें हैं जो आजीवन ब्रह्मचारिणी रही थी और इनमें से अठारह स्त्रियों नें वैवाहिक जीवन के पश्चात भिक्षु व्रत ग्रहण किया था और अपनी विद्वता से संघ को गौरवान्वित किया इनमें शुभा, सुमेधा और अनुपमा के नाम उल्लेखनीय है। ये स्त्रियाँ अपने उच्च ज्ञान के कारण " थेरी " का पद प्राप्त करने में समर्थ हुई थी ।

बौद्ध ग्रन्थों में खेमा, सुभद्रा, अपरा, उदुम्बरा, चन्दना, सुक्का, जयन्ती आदि नारियों के नाम मिलते हैं जो अपने ज्ञान, विद्वता एवं तर्क विद्या के लिए प्रसिद्ध थी । बिम्बिसार की पत्नी भिक्षुणी खेमा विनय में पारंगत थी वह अत्यन्त विदुषी, सुशिक्षित एवं प्रतिभाशाली महिला थी एवं उसकी विद्वता की प्रसंशा सुनकर कौशल नरेश प्रसेनजित स्वयं उसकी सेवा में गये थे और अनेक दार्शनिक विषयों पर विचार – विमर्श किया था[12]। संयुक्तनिकाय के अनुसार भिक्षुणी सुक्का वाकपटु एवं वाग्मिता में अत्यन्त प्रवीण थी। धम्मदिन्ना "धम्म" में पारंगत थी उसे उन भिक्षुणियों में सर्व प्रधान माना जाता था जो महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं प्रचार करने के लिए उपर्युक्त क्षमता रखती थी। जयन्ती ज्ञान और दर्शन में पारंगत थी उसने स्वयं भगवान महावीर से वाद–विवाद किया था। चन्दना नामक नारी ने सांसारिक भोग विलास का जीवन त्यागकर जैन धर्म स्वीकार कर लिया था। संयुक्तनिकाय में उल्लेख मिलता है कि सुभद्रा नामक भिक्षुणी व्याख्यान देने में प्रसिद्ध थी। इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थों में अन्य विदुषी नारियों के नाम मिलते हैं जो विनय पिटक में पारंगत थी एवं उसका अध्यापन भी बड़ी योग्यता के साथ कर सकती थी । इस युग में नारियाँ साहित्यिक शिक्षा ही प्राप्त नही करती थी अपितु वे नृत्य, संगीत एवं चित्रकला आदि विद्याओं में भी निपुणता प्राप्त करती थी। इतना ही नही बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार करने में भी कतिपय विदुशी नरियों का सराहनीय योगदान रहा है।

सामान्यतः भारतीय समाज में पुत्र का जन्म वांछित था और पुत्र के होते हुए पुत्री सम्पत्ति की अधिकारिणी नही हो सकती थी।[13] पुत्री जन्म पर पसेनदी को सांत्वना देते हुए बुद्ध कहते हैं कि –एक पुत्री बुद्धिमान हो सकती है वह अपनी सास का आदर करने वाली,

पतिव्रता हो सकती है एवं उसका भावी पुत्र महान कार्यों को सम्पन्न कर सकता है।[14] बुद्ध के ये वचन ततकालीन समाज की आदर्श पत्नी एवं पुत्री की धारणा को व्यक्त करते हैं । बुद्ध ने यह भी स्वीकार किया कि पुरूषों के आध्यात्मिक उत्थान में स्त्रियों की भूमिका सहयोगी की होनी चाहिये। पत्नी का सर्वप्रथम कर्तव्य पति के प्रति पूर्ण समर्पण था, जो उसके लिए सदैव पूजनीय था। पति के प्रति समुचित निर्वाह से उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती थी[15]।

तद्युगीन समाज में सामान्यतः एक पत्नी की प्रथा थी परन्तु अनेक सन्दर्भ बहुपत्नी प्रथा की ओर इशारा करते हैं न केवल बड़े–बड़े राजघरानों में अपितु सामान्य घरों में भी लोग एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करते थे। जातकों में राजाओं की अनेक पत्नियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। महात्मा बुद्ध के समकालीन अनेक राजाओं बिम्बिसार, अजातशत्रु, उदयन, तथा प्रसेनजित की अनेक पत्नियाँ थी। ब्राह्मण महागोविन्द की चालीस[16] एवं रथपाल की अनेक,[17] और उग्ग गहपति की चार पत्नियाँ [18] थी। अर्न्तजातीय विवाह भी यदा–कदा होते थे। यदि पति बहुत सी पत्नी रख सकते थे तो पत्नी को भी पारंपरिक रूप से सम्बन्ध विच्छेद एवं पुर्नविवाह का अधिकार प्राप्त था परन्तु सम्बन्ध–विच्छेद एवं पुर्नविवाह[19] निन्दनीय माना जाता था। सामान्यतः पत्नियाँ पति के मार्ग का ही अनुसरण करती थी[20]।

स्त्रियों का सामाजिक सम्मान किसी पुरूष से जुड़ा होता था जो उसका पिता, पति अथवा पुत्र कोई भी हो सकता था[21]। मिलिन्दपण्ह में विधवा स्त्रियों की गणना उन दस व्यक्तियों में की गई है जो समाज में अपमानित होते है, नीच समझे जाते हैं, बुरे माने जाते हैं एवं जिनके विषय में कोई चिन्ता नही करता है[22]। ऐसी स्त्रियाँ सदैव भारतीय समाज में अभिशप्त जीवन जीने के लिये बाध्य रही है पति की मृत्यु के उपरान्त या तो वे समाज में गर्हित जीवन व्यतीत करती थी अथवा पति के साथ चिता में स्वयं को समाप्त कर देती थी। विधवा पुर्नविवाह को भारतीय समाज में कभी भी सम्मान की दृष्टि से नही देखा गया।

मिलिन्दपण्ह में वेसन्तर राजा द्वारा अपनी पत्नी को दान में दिये जाने का उल्लेख मिलता है[23]। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियाँ पुरूष की सम्पत्ति समझी जाती थी और उन्हे किसी भी प्रकार से उपयोग में लाने का अधिकार समाज ने दे दिया था। लड़कियों का विवाह (बाल–विवाह) छोटी अवस्था में होता था इसकी सूचना भी मिलिन्दपण्ह से प्राप्त होती है[24]।

भारत में लौह तकनीक के विकास ने कृषि, उत्पादन, शिल्प एवं उद्योगों की प्रगति ने विशिष्ट भूमिका निभाई और समतावादी वैदिक समाज में वर्गाधारित सामाजिक स्तरीकरण के नवीन परिवर्तन की आधारशिला रखी। सामान्यतः महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर वर्गों के अभ्युदय का सीधा प्रभाव पड़ा। ब्राह्मण, क्षत्रिय जैसी उच्च वर्ग की स्त्रियों की आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी नही रही वे घरेलू कार्यों तक सीमित थी इसके विपरीत निम्न वर्ग की स्त्रियाँ सदैव विभिन्न कार्यों में संलग्न रहती थी । वे सूत कातना एवं कपड़ा बुनना जानती थी,[25] कपास के खेतों की देखभाल करती थी,[26] संगीत की विभिन्न विधाओं (कलाओं) में निपुण एवं इसी व्यवसाय से जीविकोपार्जन करने वाली अनेक स्त्रियों

के संदर्भ बौद्ध ग्रन्थों में उपलब्ध हैं स्त्री नट,[27] संगीतकार,[28] नर्तकी,[29] घरेलू दासी[30] एवं वैश्याओं[31] के सन्दर्भों से उनकी जीविका की कल्पना की जा सकती है।

महात्मा बुद्ध के समय नगरीय सभ्यता का प्रभाव था। इस काल में अनेक समृद्ध नगरों का वर्णन मिलता है। नगरों में आमोद–प्रमोद की सभी सुविधायें उपलब्ध थी । समाज में गणिकाओं को विशिष्ट स्थान प्राप्त था, गणिकाएँ नगर की शोभा मानी जाती थी वे नगर वधू कहलाती थी। वैशाली की गणिका आम्रपाली अत्यन्त सुन्दरी, रमणीया, नयनाभिराम, सुन्दरवर्णा, गायन–वादन एवं नृत्य विशारद , अभिलाषित तथा बहुदर्शनीया थी। ये स्त्रियाँ राजकुल तथा सम्भ्रान्त वर्ग के लोगों का अपनी कला द्वारा मनोरंजन किया करती थी। महात्मा बुद्ध ने आम्रपाली गणिका का भोजन निमन्त्रण और आतिथ्य स्वीकार करके उसकी प्रतिश्ठा को प्रतिश्ठापित किया था। आम्रपाली ने (अम्बपाली वन) भिक्षु संघ को दान कर दिया था।

यद्यपि स्त्रियाँ अनेक व्यवसायों में संलग्न थी तथापि उन्हे किसी महत्वपूर्ण सामाजिक या राजनैतिक पद प्राप्त होने के संकेत कम प्राप्त होते हैं। गौतम बुद्ध ने प्रशासनिक कार्यों में रूचि नही ली किन्तु राजनैतिक विचारकों में से कुछ लोग स्त्रियों के प्रशासन में भाग लेने के पक्ष में थे। जातक में प्राप्त एक सन्दर्भ के अनुसार बनारस के राजा के सन्यास लेने के बाद प्रजा के अनुरोध पर उसकी रानी द्वारा प्रशासन का दायित्व संभालने का विवरण प्राप्त होता है,[32] परन्तु समाज की सामान्य विचारधारा स्त्रियों राजनीति एवं प्रशासन में भाग लेने के विरूद्ध थी [33]।

इस प्रकार बौद्ध अवधारणा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि अति संवेदन शील बुद्ध मानव जीवन की व्याधियों से अति व्यथित थे[34] एवं बुद्ध ने स्वीकार किया कि बौद्ध धर्म में प्रव्रजित स्त्रियाँ धार्मिक जीवन के सभी लक्ष्यों सहित सर्वोच्च लक्ष्य " अर्हत " को भी प्राप्त कर सकती है[35]। बुद्ध की समदृश्टि में स्त्री एवं पुरूश दोनों ही निर्वाण प्राप्त करने के अधिकारी थे[36]। बौद्ध धर्म के अनुसार कर्म को महत्व दिया गया था एवं स्त्रियों को स्वतन्त्रता देने की दिशा में भी कुछ प्रगति हुई। वस्तुतः स्त्रियों की मुक्ति की तीव्र इच्छा ही बुद्ध वचनों एवं सिद्धान्तों के प्रति उनके आकर्षण का मुख्य कारण थी। गौतम बुद्ध ने इस बात पर भी बल दिया कि स्त्रियाँ भी पुरूषों के अनुसार पिछले कर्मों का फल प्राप्त करती है और अपने अच्छे या बुरे भविष्य के लिए स्वयं उत्तदायी हैं। परन्तु यह विचारणीय है कि संघ व्यवस्था में भिक्षुणियों का स्थान भिक्षुओं से निम्न था एवं भिक्षुणी संघ की स्थापना को लेकर गौतम बुद्ध की दुविधापूर्ण मनोवृत्ति, संघ में स्त्रियों को आठ नियमों को स्वीकार पर प्रवेश, एवं उन्हे अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण स्थान देना ऐसी चुनौतियाँ थी जिनका बौद्ध भिक्षुणियों ने सामना किया ।

स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध यद्यपि तद्युगीन समाज में था एवं स्त्री एवं पुरूषों को दी जाने वाली शिक्षा में कोई भेदभाव नही था। कतिपय प्रबुद्ध स्त्रियों के सन्दर्भ भी बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त

होते हैं यही नही थेरवादी साहित्य में कुछ ग्रन्थ स्त्रियों द्वारा उपदिष्ट हैं। निस्संदेह संगीत एवं नृत्य की शिक्षा भी उन्हे दी जाती थी परन्तु उनके छिटपुट सन्दर्भ इस बात का प्रमाण है कि स्त्री शिक्षा को गम्भीरता से नही लिया गया ।

मिलिन्दपण्ह से स्त्री के सामाजिक अपकर्श के संकेत प्राप्त होते[37] हैं। स्त्रियों का सामाजिक सम्मान किसी पुरूष से जुड़ा होता था। एक विधवा स्त्री निन्दित, अपमानित एवं अप्रतिष्ठित जीवन जीने के लिए बाध्य थी एवं छोटी अवस्था में लड़कियों के विवाह (बाल–विवाह) यह दर्शाते हैं कि उनकी शिक्षा समुचित रूप से नही हो पाती होगी। स्त्रियों को पुरूशों की सम्पत्ति समझा जाता था जिसे वह अपनी इच्छा से दान कर सकता था।

यद्यपि स्त्रियाँ अनेक व्यवसायों में संलग्न थी तथापि उन्हे उच्च पद प्राप्त होने के संकेत बहुत कम प्राप्त होते हैं। मिलिन्दपण्ह में प्राप्त व्यवसायों की सूची में उनका उल्लेख अंतिम व्यवसायों में होना इस बात की पुष्टि करता है कि स्त्रियों को समाज में कम महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त थे। संभवतः निर्धन वर्ग की स्त्रियाँ कृषि एवं उत्पादन के अन्य कार्यों में अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पुरूषों की सहायक के रूप में जुटी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियाँ दयनीय एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से गर्हित जीवन व्यतीत करने वाली समझी जाती थी। तत्कालीन समाज में गणिकाओं और गणिका से उत्पन्न पुत्र को हेय दृष्टि से नही देखा जाता था। आम्रपाली तथा सालवती उस काल की राजनर्तकियाँ थी जिनको राज्य की ओर से सम्मान तथा आदर प्राप्त था। राजवैद्य जीवक का जन्म राजगृह की गणिका सालवती के गर्भ से हुआ था। किन्तु सामान्य गणिकाओं का जीवन इतना आसान नही था। साधारणतया उनके इस कार्य को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखा जाता था।

इस प्रकार बौद्ध सिद्धान्तों से प्रभावित होकर राजपरिवार, श्रेष्ठ, अभिजात वर्ग के साथ ही सामान्य परिवार की विवाहित–अविवाहित नारियाँ यहाँ तक कि वैश्याएँ भी सांसारिक जीवन से मुक्ति पाने हेतु बौद्ध संघ में शामिल हुई। बुद्ध द्वारा स्त्रियों को संघ में प्रवेश दिये जाने की अनुमति के कारण स्त्रियाँ स्वतन्त्रता एवं सम्मान की पात्र बनी एवं उन्हे बौद्ध परम्परा में भिक्षुणी बनने का अधिकार प्राप्त हुआ[38]। यद्यपि उनके कार्य घरेलू, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित रहे थे तथापि स्त्रियों के उत्कर्ष की पुष्टि होती है। उत्थान की इस प्रक्रिया के समानान्तर ही युगों से चले आ रहे सामाजिक प्रतिबन्ध स्त्रियों की स्थिति में किसी प्रभावी परिवर्तन की प्रक्रिया को बाधित करते रहे। यद्यपि बौद्ध धर्म में स्त्रियों के अनुभव की प्रधानता रही है संघ में प्रवेश लेने एवं सम्मानजनक स्थिति बनाये रखने के लिए उन्हे सदैव संघर्षरत रहना पड़ा[39]। फिर भी महात्मा बुद्ध द्वारा महिलाओं एवं पुरूषों दोनों के लिए संघ के द्वार खोलना तत्कालीन समाज के लिये असाधारण बात थी जिसे बुद्ध के आलोचकों ने एक उग्र कदम बताया। किन्तु बुद्ध एवं आनन्द द्वारा उठाये गये ऐसे कदम महिलाओं के सदगुणों एवं आध्यात्मिक सम्भावना को पहचानने की ओर किये गये प्रयासों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

सन्दर्भ – सूची

1. वत्स, एस एवं मुद्गल शकुन्तला (संपा0) वूमेन एण्ड सोसायटी इन एंश्येन्ट इंडिया, हरियाणा, 1999, पृ0–185
2. चुल्लवग्गपालि, (विनय पिटक), भिक्षुणीस्कन्धक, 10.1 (संपा0 एवं अनु0)–स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृ0–571–577
3. चुल्लवग्गपालि (विनय पिटक), भिक्षुणीस्कन्धक, 10.1, पृ0–571–577
4. तदैव
5. तदैव
6. तदैव
7. तदैव
8. तदैव
9. तदैव
10. तदैव
11. अल्टेकर, ए0,एस0, दि पोजीशन आव वुमेन इन हिन्दु सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1959, पृ0– 209
12. संयुक्तनिकायपालि वाल्यूम–3, 12–20 (संपा0 एवं अनु0) स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2002, भगवती सूत्र, पृ0–257
13. दीघनिकायपालि, वाल्यूम–2 (संपा0) रीज डेविडस, टी0 डब्ल्यू0 एवं जे0 एस्टलिन कार्पेन्टर, पी0, टी0, एस0 लन्दन, 1990–1991 पृ0–331
14. संयुक्तनिकायपालि, वाल्यूम –1, पृ0–86
15. अंगुत्तरनिकायपालि, वाल्यूम–4 (संपा0 एवं अनु0) स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2002, पृ0–92–93
16. दीघनिकायपालि (संपा0 एवं अनु0) स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1996 पृ0–239
17. मज्झिमनिकायपालि (संपा0 एवं अनु0) स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1998, पृ0–64
18. अंगुत्तरनिकायपालि, वाल्यूम–4, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1998, पृ0–210
19. अंगुत्तरनिकायपालि, वाल्यूम–2, पृ0– 245
20. दीघनिकायपालि, वाल्यूम–2, पृ0–296
21. अल्टेकर, ए0,एस0, दि पोजीशन आव वुमेन इन हिन्दु सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1959, पृ0 – 353
22. मिलिन्दपण्ह, वाल्यूम –5.3.2, (संपा0) स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1979, पृ0–205

23. मिलिन्दपण्ह, वाल्यूम–5.3. 1, पृ0– 196

24. मिलिन्दपण्ह, वाल्यूम –2.2.6 पृ0– 37

25. अंगुत्तरनिकायपालि, वाल्यूम– 2, पृ0– 245

26. अंगुत्तरनिकायपालि, वाल्यूम–3, पृ0– 293

27. धम्मपाद टीका (संपा0 एवं अनु0) रीज डेविडस, लन्दन, 1931, (अनु0) एफ0 मैक्समूलर एवं वी0 फाउजबाल सेक्रेडबुक आव दि ईस्ट वाल्यूम–10, आक्स्फोर्ड, 1898 पृ0–348

28. मज्झिमनिकायपालि, वाल्यूम–1, पृ0–504, महावग्गपालि, वाल्यूम–3, पृ0–07

29. जातक अट्ठकथा, (अनु0) भदन्त आनन्द कौसल्यायन, (संपा0) शिव शंकर त्रिपाठी, साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद, 2007, पृ0–539

30. थेरी गाथा , (सम्पा0) ओल्डेनबर्ग, लन्दन, पृ0– 145, 341

31. धम्मपाद टीका, 21–23, महावग्ग, वाल्यूम–8, 1.4

32. जातक अट्ठकथा, वाल्यूम–4, 5

33. मज्झिमनिकायपालि, वाल्यूम–3, पृ0–65–66

34. सिन्हा, एस0 एन0 एवं बसु एन0 के0 वूमेन इन एन्श्येन्ट इंडिया, दिल्ली, 2002, पृ0–160

35. अंगुत्तरनिकायपालि वाल्यूम–4, पृ0–276, विनयपिटक, वाल्यूम–2, पृ0–254

36. ए0 एस0 अल्टेकर, दि पोजीशन आव वूमेन इन हिन्दु सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1959, पृ0–239

37. शुक्ला, रेनू ,मिलिन्दपण्ह–एक अध्ययन, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0 लि0) अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली, 2004, पृ0–179

38. रोमिला थापर, एन्श्येन्ट इंडियन सोशल हिस्ट्री, (सम इन्टरपिटेशन) ओरियन्ट लिंगमेन, नई दिल्ली, 1978, पृ0–33

39. शुक्ला, रेनू ,गुरूकुल पत्रिका, गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, (सम्पा0) डा0 महावीर, नवम्बर–दिसम्बर, 2005, पृ0–71

"मुगलकाल में नारी की स्थिति का अध्ययन"

प्रियंका सिजरिया*

शोध सारांश

मुगलकाल में प्राचीन भारत की तुलना में नारियों की स्थिति में अत्यंत गिरावट आयी। वैदिक युग के समाप्त होते ही नारियों की स्थिति में परिवर्तन आता गया। इस्लाम धर्म के अभ्युदय होने से भारतीय समाज में भी काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। मुगलकाल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा, बहुविवाह, सती प्रथा और जौहर प्रथा जैसी कुरीतियां जारी रही, और नारियो के प्रति सम्मान भी कम हो गया। इस काल में लड़की का जन्म अशुभ माना जाता था। इस काल में नारियों की स्थिति पत्नि के रूप में अच्छी नही थी। माँ के रूप में नारियो को सम्मान प्राप्त था।

मुगलकाल में स्त्रियों की वीरताओं का भी इतिहास रहा है। जिसका प्रमुख उदाहरण गोडवाना की रानी दुर्गावती थी जो एक वीर योद्धा के साथ साथ प्रशासक भी रही। स्त्रियों की भूमिका रण क्षेत्र के बाहर योद्धाओं के होसले बड़ाने में भी सहायक रही है जिनसे प्रभावित होकर बड़े बड़े युद्ध जीते गये। इस काल मे भी स्त्रियों का उच्च चरित्र एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसलिये मुगलकाल को मुख्यतः उतार–चढ़ाव का काल कहा जाता है। मुगलकाल में प्राचीन भारत की तुलना में स्त्रियों की स्थिति में अत्यंत गिरावट आ चुकी थी। वैदिक काल में स्त्रियों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उन्हे सब प्रकार के सामाजिक उत्सवों तथा यज्ञादि में सम्मिलित होने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। वैदिक काल में स्त्रियां विदुषी होने के प्रमाण मिले है तथा उनके मंत्र अब तक हमें वैदिक संहिताओं में उपलब्ध होते है। लोप मुद्रा, गार्गि, घोष इत्यादि विदुषी महिलाओं के उदाहरण है। उत्तर वैदिक युग के समाप्त होते ही स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन देखा गया है। भारत में मुसलमानों के आगमन से स्त्रियों की दशा में निरन्तर हास होता चला गया। वास्तव में इस्लाम धर्म के अभ्युदय होने से भारतीय समाज में काफी परिवर्तन आ गया। मुगलकाल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आयी। मुगलकाल में बाल विवाह,सती प्रथा,जौहर प्रथा और परदा प्रथा के चलते नारियों के प्रति सम्मान भी कम होता चला गया।[1] मुगलकाल में महिलाओ की स्थिति की व्याख्या हम निम्न प्रकार से कर सकते है ।

मुगलकाल में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति– मुगलकाल में सल्तनत की अपेक्षा स्त्रियों की अवस्था अपेक्षाकृत अधिक सन्तुलित थी। बाबर ने तैमूर और चंगेज खाँ की परम्पराओ का अनुशरण किया और अपनी स्त्रियों को राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया।[2] परन्तु बाबर ने संप्रभुता का अधिकार उन्हे नही दिया ।[3] बाबर की माँ कुतलुक निगार सदैव युद्धो में बाबर के साथ रही ।[4] बाबर की पत्नी महीम बेगम ने अपने पति का कठिनाइयो में हमेशा साथ दिया । हुमायुँ के शासनकाल में खानजादा बेगम ने जो बाबर

*शोधार्थी, इतिहास, जीवजी विश्वविद्यालय ग्वालियर

की बड़ी बहन थी दरबार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया । महीब बेगम की मृत्यु के बाद उसे पादशाह बेगम की उपाधि से विभूशित किया।[5] अकबर के समय में उसकी सौतेली माँ माहचचक बेगम का नाम उल्लेखनीय है, वह एक महत्वाकांक्षी महिला थी । अकबर की प्रमुख दाई महाम अनगा भी एक प्रभावशाली महिला थी । 1601 ई. में दूसरी बार जब सलीम ने विद्रोह किया तब सलीमा बेगम और गुलबदन बेगम ने सलीम को अकबर से क्षमादान दिलाया ।[6]

जहांगीर के शासनकाल में सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में नूरजहां अत्यंत प्रभावशाली रही। जहांगीर की मृत्यु के बाद शाहजहां के गद्दी पर बैठने के बाद नूरजहां ने राजनीति से सन्यास ले लिया। शाहजहां के शासनकाल में मुमताज महल ने भी राजनीति में अपना प्रभाव बनाये रखा।[7] औरंगजेब की पुत्रियों ने भी राजनीति में रूचि दिखलाई। इस काल में राजकीय परिवार की स्त्रियों को विविध उपाधियों से सम्मानित किया जाता था।[8] जैसे मरियम मकानी, मरियमुस जनानी, बिलकिस मकानी, सबसे महत्वपूर्ण उपाधि जहांगीर ने मेहरूनिसा को नूरमहल और नूरजहां दी। शाहजहां ने अपनी पत्नी अर्जुमन्दबानू बेगम को मुमताज महल की उपाधि दी और उसकी स्मृति में ताजमहल बनवाया। इसी प्रकार मुहम्मद शाह की माँ को हसरत बेगम और मलिकाये जमानी की उपाधियां दी गई ।

मुगलकाल में स्त्री शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया। अकबर ने स्त्रियों को शिक्षित करने के लिये फतहपुर सीकरी में एक स्कूल खोला।[9] शाहजहां और औरंगजेब ने अपनी पुत्रियों को पढ़ाने के लिये शिक्षित महिलाओं को रखा। मुगल हरम में गुलबदन बेगम सबसे शिक्षित महिला थी। गुलबदन बेगम की बहुमूल्य कृति हुमायुंनामा है। नूरजहां फारसी और अरबी में पारंगत थी, वह कविताये भी करती थी। कुछ मुगल स्त्रियों ने शिक्षा के प्रसार के लिये स्कू भी खोले। कई मुगल स्त्रियों ने ललित कलाओं में भी रूचि दिखाई और उनके विकाश में योगदान भी दिया ।

मुगलकाल में मुस्लिम स्त्रियों में परदा धारण करना अनिवार्य था। जिस कारण अकबर जैसे शासक ने भी परदा प्रथा पर एक फरमान जारी करवाया "यदि कोई स्त्री गलियां एवं बाजारों में बगैर घूघंट के दिखाई दे या जानबूझकर उसने परदा को हटाया हो तो उसे वैश्यालय ले जाया जाये और इस पेशे को अपनाने के लिये बाध्य किया जाये।" डेलेट का कहना है कि मुस्लिम स्त्रियां कभी बिना परदे के बाहर नही आती थी जब तक कि वे निर्लज्ज या निर्धन न हो।[10] पीट्रा डेलावाले ने लिखा है कि मुस्लिम स्त्रियां जब तक बेईमान या गरीब न हो बाहर नही आती थी ।[11]

इस्लाम के अंतर्गत पुरुश को एक से अधिक विवाह करने की अनुमति थी। अकबर पहला ऐसा शासक था जिसने बहुविवाह में सुधार लाने का प्रयास किया। उसका कहना था कि एक पुरुश के लिये एक स्त्री पर्याप्त है , परन्तु उसने भी बहुत विवाह किये। जिस समय दरबार में एक पत्नी के रखने पर बल दिया जा रहा था तब मिर्जाअजीज कोका ने कहा था

कि कम से कम चार पत्नियां तो रखनी चाहिये और उसने तर्क दिया " एक पुरूष को एक पत्नी भारत की रखनी चाहिये जो सन्तान उत्पति करे, एक खुरासान की होनी चाहिये जो ग्रहस्थी का कार्य करे,एक ईरान की होनी चाहिये जिसके साथ पुरूष बातचीत कर सके, और एक ट्रांस आग्सायना की होनी चाहिये जो तीनो को कोड़े लगाकर नियंत्रित कर सके और घर में शान्ति स्थापित कर सके ।[12]

मुस्लिम समाज में स्त्री की आर्थिक स्थिति को सुरक्षित रखने के लिये पति को एक विशेश धन पत्नी को दहेज ' महरे मिस्ल ' के रूप में देने के लिये अनिवार्य किया गया ।[13] मुस्लिम समाज में विधवा अपने पति की सम्पत्ति पर तब तक अधिकार रख सकती थी जब तक कि उसके दहेज की रकम की अदायगी न हो जाये। जीवन साथी चुनने के साथ साथ विवाह के निर्णय में भी स्त्री की स्वीकृत आवश्यक थी। मुगलकाल में मुस्लिम समाज में एक ओर तो नारियों की दशा हीन थी। दूसरी ओर मुस्लिम स्त्रियों ने शिक्षा, शासन तथा युद्धों में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

मुगलकाल में हिन्दु महिलाओं की स्थिति – मध्ययुगीन समाज में हिन्दु नारी की स्थिति बड़ी दयनीय एवं शोचनीय थी। भारत में मुसलमानों के आगमन के कारण स्त्रियों की दशा में काफी परिवर्तन आया। हिन्दु समाज में नारी जीवनपर्यन्त पुरूष वर्ग के अधीन रही। धार्मिक ग्रन्थो के अनुसार स्त्रियां सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में पुरूषों से हीन समझी जाती थी । हिन्दु समाज पर मुस्लिम समाज का व्यापक प्रभाव पड़ा। किसी भी लड़की का जन्म पुत्र के जन्म की तुलना में शुभ नही माना जाता था। कर्नल टाड के अनुसार राजपूत इस धारणा से ग्रसित थे कि वह दिन पतन का होता है जब एक कन्या का जन्म होता है। मध्ययुग में स्त्रियों की दशा में हास होने लगा। घर से बाहर निकलते समय वे दुपट्टा या ओढ़नी धारण कर लेती थी। परदा प्रथा धनी और समद्धिशाली तक ही सीमित थी। निर्धन स्त्रियां विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो में रहने खेतो में काम करती थी जो आर्थिक कारणों से परदा धारण करने में असमर्थ थी।[14] इससे पता चलता है कि मुस्लिम और हिन्दु दोनो समाज की स्त्रियां परदा प्रथा का पालन करती थी ।

बचपन से ही लड़की को परिवार के बड़ो, बूढ़ो का सम्मान करने की शिक्षा दी जाती थी। तुलसीदास जी ने रामचरित में लिखा है – एकै धर्म एक वृत नेमा, कार्य वचन मम पति पद प्रेमा। अर्थात् स्त्रियों को अपने पति की ईश्वर के समान पूजा करने की आशा की जाती थी। और अपने पति की आज्ञा का पालन करना पड़ता था। साधारणतः स्त्रियों के साथ मृदु व्यवहार किया जाता था। राजाओ और अमीरों तक ही बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। अधिकतर लोग केवल एक ही विवाह करते थे। लड़कियों के विवाह में दहेज देने की प्रथा थी। यह प्रथा धनी वर्ग के हिन्दू में अधिक थी। पुरूष वर्ग के विवाह की उम्र और स्त्री के विवाह की उम्र 3:1 मे थी। मुसलमानों के भारत आने के बाद बाल विवाह की प्रथा को बड़ावा मिला। डॉ रेखा मिश्रा ने लिखा है कि हिन्दु समाज में मुगलकाल की एक विशेषता थी ।[15] लड़कियों का विवाह 9 या 10 वर्ष की उम्र में हो जाता था । 9 वर्ष की आयु तक कन्या का

विवाह कर देने वाला पिता अत्यंत सौभाग्यशाली समझा जाता था । अकबर की इच्छा थी कि विवाह के समय लड़के की उम्र 16 वर्ष और लड़की की उम्र 14 वर्ष निर्धारित कर दी जाये लेकिन उसे इस कार्य में सफलता नही मिली ।[16]

मुगलकाल मे हिन्दु समाज में सती प्रथा का भी उल्लेख मिलता है। हिन्दु स्त्री की सबसे बड़ी विपत्ति उसके पति की मृत्यु थी मध्यकाल में निम्नवर्ग के लोगो को छोड़कर हिन्दु विधवाओं को पुर्नविवाह की अनुमति नही थी। विधवा को अपने पति के मृत शरीर के साथ जलना पड़ता था। ऐसा न करने पर उसे अपमानजनक और संकट का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। समाज ऐसी विधवाओ को घृणा की दृष्टि से देखता था। अधिकतर ब्राहण, क्षत्रिय और वैष्य परिवार की स्त्रियां सती होती थी। धार्मिक ग्रन्थो में उल्लेख है कि सती हो जाने वाली स्त्रियों को स्वर्ग प्राप्त होता है।[17] अकबर ने सती प्रथा को रोकने के लिये एक आदेश जारी किया। उसका निर्देश था कि सती होने के लिये किसी को विवश न किया जाये।[18] हुमायु , जहांगीर और औरंगजेग ने भी इस प्रथा को रोकने के लिये भरसक प्रयास किये।

मुगलकाल मे राजपूत स्त्रियो में जौहर प्रथा भी व्याप्त थी। राजपूत जिस समय रणभूमि में न्यौछावर हो जाते थे उस समय उनकी स्त्रियां हसते हसते अग्नि को समर्पित हो जाती थी। इस प्रथा ने हुमायु को भी प्रभावित किया। जब बहादुर शाह ने चित्तोड़ पर अधिकार कर लिया था तब रानी कर्णवती ने हजारो राजपूत स्त्रियो के साथ जौहर की रस्म अदा की थी।[19] अबुल फजल ने भी चित्तोड़ पर मुगलो के अधिकार के पश्चात् वहा की राजपूत स्त्रियों के जौहर के विशय में उल्लेख किया है ।

किसी भी काल की संस्कृति का मूल्यांकन उस समय की स्त्रियों की स्थिति से लगाया जा सकता है। मुगलकाल में राणासांगा की पत्नि रानी कर्णवती का नाम प्रसिद्व है। उसने अपने पति को अधिक प्रभवित किया। उसने अपने दो पुत्रो विक्रम और ऊद के लिये बड़ी बड़ी जागीरे सुरक्षित करवाई। रानी दुर्गावती अपने पति की मृत्यु के बाद अपने नाबालिग पुत्र वीर नरायन की संरक्षिका बनी और राज्य का शासन अपने हाथ में लिया।[20] जब तक वह प्रभावशाली रही और उसके राज्य में कोई विद्रोह नही हुआ ।

पन्द्रहवी शताब्दी मे बहुत सी स्त्रियां भिन्न भिन्न विषयो और कलाओं में पारंगत थी। हिन्दु समाज के उच्च वर्ग में बहुत सी संभ्रात और सुशिक्षित महिलाये भी थी जैसे देवलरानी, रूपमती, मीराबाई आदि। मुगलकाल में रीतिकालीन कवियों का उदय हुआ, जिन्होने स्त्रियों के श्रृंगार पर कविताये लिखी, जिसमें प्रवीण राय पटूर, रूपमती ओर तरंग प्रमुख थी।[21] शाहजहां के शासनकाल में काकरेची नाम की प्रमुख कवियत्री थी ।औरंगजेब के शासनकाल में नाथी नाम की कवियत्री ने विष्णु की भक्ति में कविताये लिखी ।

स्त्रियों को प्राचीनकाल में स्वतंत्रता और सम्मान का अधिकार मिला हुआ था। परंतु धीरे – धीरे सामाजिक क्षेत्र मे स्त्रियों के अधिकार समाप्त हो गये। परदा प्रथा और बाल विवाह के कारण स्त्रियों की स्वतंत्रता सीमित हो गई, इसलिये उन्हे अधिक शिक्षा नही मिल

सकी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मुगलकाल में हिन्दु की स्थिति में सल्तनत युग की अपेक्षा परिवर्तन तो आया फिर भी मुगलकाल में नारियों की स्थिति अच्छी नही थी ।

संदर्भ– ग्रन्थ

1. अवध विहारी पाण्डेय –लैटर मीडियेवल इंडिया पृ, 667
2. रेखा मिश्रा – वीमेन इन मुगल इण्डिया , पृ.16
3. आर.सी.त्रिपाठी – सम ऐस्पेन्टस ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन पृ.109
4. बाबरनामा, बेबरिज, जिल्द 1 पृ.21
5. एस.के.बनर्जी , हुमायुं बादशाह जिल्द 2 पृ. 314–315
6. अकबरनामा अनुवाद , बेबरिज, जिल्द 3 पृ. 1140
7. पीटर मण्डी , जिल्द 2 पृ. 212–213
8. इरविन , लेटर मुगल्स , जिल्द 2 पृ. 265
9. एस.एम.जाफर. पृ. 203
10. जोन्स डेलेट ,दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल, अनुवाद जे.एस.हायलेंड और एस.एन. बनर्जी बम्बई , 1928 पृ. 80
11. ट्रेवल्स ऑफ पिट्रा डेलावले इन इण्डिया, अनुवाद, जी हेवर्स और सम्पादित एडवर्ड ग्रे हक्लयूट सोसाइटी,1892 जिल्द 1 पृ. 44–45
12. मिर्जा अजीज कोका –मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास प्रो. पी.डी.पाठक पृ. 73
13. कुरान, iv , पृ. 4
14. डेलिट, पृ. 81,प्रो.एन.ओझा, सम ऐस्पेक्टस आफ लि माडर्न इण्डियन सोशल लाइफ, पटना सन् 1960 पृ. 37
15. रेखा मिश्रा, आपसिट पृ. 131
16. आइने अकबरी जिल्द 1 पृ. 201 ब्लाकमैन जिल्द 1 पृ. 195
17. के.एम.अशरफ – दिल्ली सल्तनत , पृ. 153
18. बदायुनी, जिल्द 2 पृ. 388
19. ईश्वरी प्रसाद, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ हुमायुं , कलकत्ता सन् 1956 पृ. 7– 72
20. अकबरनामा, जिल्द 2 पृ. 326 ,केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ,जिल्द 4 पृ. 87
21. रेखा मिश्रा, आपसिट पृ. 141–142

ग्वालियर चम्बल संभाग की औद्योगिक संरचना व विकास

डॉ. सुनीता चौहान*

सारांश यह है कि रियासतों के प्राकृतिक संसाधन वर्तमान शताब्दी के प्रारंभिक काल में भी संचित भण्डार के रूप में पड़े रहे है। जबकि कलकत्ता और दामोदर घाटी बम्बई तथा अहमदाबाद बड़े औद्योगिक प्रदेशों के रूप में विकसित हो रहे थे। सन् 1947 के बाद भी वर्तमान मध्यप्रदेश चार राज्यों के रूप में रहा भूतपूर्व मध्यप्रदेश, मध्यभारत, विन्ध्यप्रदेश तथा भोपाल। इन सभी भागों का नियोजित विकास स्वतंत्र इकाइयों के रूप में चलता रहा। वर्ष 1956 में जब वर्तमान मध्यप्रदेश का जन्म हुआ तब एक बड़े राज्य के रूप में यहाँ संसाधनों का मूल्यांकन और उपयोग प्रारंभ हुआ। मध्यप्रदेश की रियासतें अपेक्षकृत विकासोन्मुख थीं। तथा ग्वालियर, इन्दौर, उज्जैन, रतलाम इत्यादि नगर छोटे–छोटे औद्योगिक केन्द्र बन गये थे। किन्तु यहाँ के सभी उद्योग उपभोक्ता सामग्री से संबंधित थे। जैसे ग्वालियर में कपड़ा, चमड़ा, शक्कर इत्यादि के उद्योग स्थापित हो गये थे। ग्वालियर एवं चम्बल संभाग की औद्योगिक स्थिति के सम्पूर्ण इतिहास के अध्ययन के पश्चात संभाग की औद्योगिक प्रगति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इन्हीं दो भागों के आधार पर संभाग के औद्योगिक विकास की वर्तमान स्थिति की विस्तृत व्याख्या की जा सकती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले ग्वालियर संभाग ग्वालियर स्टेट का एक भाग उत्तरी हिस्सा था। वर्ष 1857 से 1947 तक स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1947 तक स्वतंत्रता के प्रत्येक आन्दोलन में यह क्षेत्र अग्रणी रहा। ब्रिटिश शासनकाल में उसका दण्ड इसे आर्थिक उपेक्षा के रूप में मिला और इस क्षेत्र के जो परम्परागत उद्योग थे वे भी प्रायः लुप्त हो गये।

Keywords: m?kkx] fodkl] e/; insz'k] tula[;k

ग्वालियर एवं चम्बल संभाग का सामान्य परिचय : ग्वालियर एवं चम्बल संभाग देश के ह्रदय स्थल मध्यप्रदेश में स्थित है। इस संभाग का विस्तार 20.60 उत्तरी अक्षांश से 26.80 उत्तरी अक्षांश के मध्य 76.48से 78.54 पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। इस प्रकार ग्वालियर एवं चम्बल संभाग का विस्तार उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक है। यह संभाग समुद्र तल से लगभग 315.5 वर्ग कि.मी. की ऊंचाई पर स्थित है तथा कर्क रेखा इस संभाग के समीप से ही गुजरती है। यह संभाग 28,408 वर्ग कि.मी. के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है।[1] क्षेत्रफल की दृष्टि से ग्वालियर संभाग को प्रदेश में नवां स्थान प्राप्त है। चम्बल संभाग को प्रदेश में क्षेत्रफल की दृष्टि से 11वां स्थान प्राप्त है। ग्वालियर संभाग के पूर्व में

---

*जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर

1. भदौरिया अन्नपूर्णा ग्वालियर चम्बल सम्भाग की लोक संस्कृति संस्करण 2004 जे.एम.डी. प्रकाशन नई दिल्ली पृष्ठ न.2
2. संभागीय सांख्यिकी पुस्तका वर्ष 2011–2012 पृष्ठ न.1
3. नरेन्द्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा प्रकाशक नमिता सिंह संस्करण 2000 पृष्ठ 32

उत्तरप्रदेश के झांसी जनपद तथा पश्चिम में जालौन जनपद की सीमा लगी हुई है। उत्तर दिशा में प्रदेश का चंबल संभाग भिण्ड, श्योपुर तथा मुरैना तथा श्योपुर जिले के दक्षिण का हिस्सा राजस्थान का बांरा, कोटा एवं धोलुपर जिले की सीमा को स्पर्ष करता है।

ग्वालियर एवं चम्बल संभाग का क्षेत्रफल प्रदेश के कुल क्षेत्रफल का लगभग 6.45 प्रतिशत भाग है। क्षेत्रफल की दृष्टि से गुना संभाग का सबसे बड़ा जिला है। यह जिला 11.065 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है जबकि दतिया जिला क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे छोटा है। जनसंख्या की दृष्टि से ग्वालियर सबसे बड़ा तथा दतिया संभाग का सबसे छोटा जिला तथा अशोकनगर ग्वालियर संभाग का सातवा जिला है एवं चम्बल सम्भांग में तीन जिले मुरैना, भिण्ड एवं श्योपुर सम्मिलित है।[2]

ग्वालियर संभाग में पांच जिले सम्मिलित है। जिला ग्वालियर, शिवपुरी, दतिया अशोकनगर एवं गुना (वर्ष 200203) में गुना जिले को दो भागों में विभाजित कर दिया गया है। जिला गुना एवं जिला अशोकनगर। इसके अतिरिक्त चम्बल सम्भाग में मुरैना श्योपुर एवं भिण्ड जिसमें श्योपुर जिला मुरैना जिले का ही हिस्सा है।

ग्वालियर जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल 4565 है जिसके अंतर्गत 3 तहसीलें, तथा 4 विकासखण्ड हैं। शिवपुरी जिले में 7 तहसीलें तथा 8 विकासखण्ड है जबकि दतिया जिले में 3 तहसीलें एवं 3 विकासखण्ड हैं तथा गुना जिले में 9 तहसीलें एवं 9 विकासखण्ड है तथा अशोकनगर जिले में 3 तहसीलें एवं 5 विकासखण्ड है।

चम्बल संभाग का भौगोलिक क्षेत्रफल 3529 है। जिसके अंतर्गत मुरैना जिलें में 6 तहसीलें, 5 विकासखण्ड है। श्योपुर जिले में 4 तहसीलें, तथा भिण्ड जिले में 5 तहसीलें 7 विकास खण्ड आते है।

ग्वालियर संभाग का कुल क्षेत्रफल जिलेवार निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

ग्वालियर संभाग का जिलेवार क्षेत्रफल

क्रमांक	जिला संभागीय	भौगोलिक क्षेत्रफल
1.	ग्वालियर	4565
2.	शिवपुरी	10278
3.	दतिया	2038
4.	गुना	11065
5.	अशोकनगर	953

स्त्रोत– जिला सांख्यिकीय पुस्तिकायें, जिला–ग्वालियर, शिवपुरी, दतिया गुना तथा अशोकनगर वर्ष 2011 के आधार पर संकलित जानकारी। जिला सांख्यिकीय कार्यालय ग्वालियर, शिवपुरी, दतिया, गुना (म.प्र.)

ग्वालियर एवं चम्बल संभाग का आर्थिक परिचय :

ग्वालियर एवं चम्बल संभाग प्रदेश के एक महत्वपूर्ण संभाग है। इस संभाग के ग्वालियर जिला प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों में से एक है। शिवपुरी और दतिया जिला औद्योगिक दृष्टि से कम विकसित है किन्तु गुना जिले में राघौगढ़ के समीप एक एनएफएल रासायनिक कारखाना खुलने से यह उद्योग नगरी के रूप में बढ़ता जा रहा है जबकि ग्वालियर जिला पूर्व रियासत की राजधानी होने के कारण भी अधिक विकसित नगर बना। ग्वालियर संभाग में कपड़ा उद्योग, कपड़ा बनाने की मशीने, चमड़ा उद्योग, चीनी मिट्टी के बर्तन, मैदा, सूजी उद्योग से संबंधित इकाईयां पूर्व रियासत के पहले स्थापित थीं। एवं चम्बल सभांग में भिण्ड, मुरैना एवं श्योपुर तीन जिले है जिसमें मुरैना का बामौर एवं भिण्ड का मालनपुर राश्ट्रीय एवं अतंर्राष्ट्रीय स्तर औधोगिक क्षेत्र है। जे.के टायर, एल.एन.टी. स्टील प्लॉट, म.प्र. दुग्ध डेयरी, रेल्वे स्लीपर आदि मुख्य कारखानें है तथा बामौर का सीमेन्ट कारखाना वर्तमान में बंन्द है। इसके अतिरिक्त मालनपुर में केडबरी, नोवा, हॉट लाईन, सूर्या, एटलस, तेवा (भारत एवं इजराइल का औधोगिक प्रतिष्ठान) ल्यूपिन, रेनबेक्सी, मोदी थ्रेड, एवं विक्रांत सिथेटिक रेशे इत्यादि।

मध्यप्रदेश निर्माण के पश्चात् उपरोक्त यातायात सुविधाओं के कारण अन्य उद्योग भी स्थापित हुये। इनमें प्रमुखतः धातु उद्योग, शक्कर उद्योग, खाद्य तेल, बिस्कुल उद्योग, बिजली का सामान बनाने एवं ट्रांसफार्मर बनाने के उद्योग भी विकसित हुए। साथ ही कुछ वर्ष पूर्व ही ग्वालियर जिले में सिथौली में रेल्वे स्प्रिंग कारखाने की स्थापना एवं आंतरी में रेलवे के सीमेंट स्लीपर बनाने की फैक्ट्री भी स्थापित हुई है। इसके अतिरिक्त ग्वालियर एवं चम्बल संभाग में अनेक लघु एवं कुटीर (मध्यम) उद्योग हैं जिसमें दुग्ध, खनन, रासायनिक उद्योग, औषधि उद्योग, दियासलाई उद्योग, लुगदी उद्योग आदि कार्यरत है। अतः संभाग का ग्वालियर जिला प्रमुखतः कपड़ा उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ कपड़ा बनाने के चार कारखाने मौजूद थे सिमको, स्टील फाउण्ड्री, जियाजीराव कॉटन मिल्स एवं ग्वालियर रेयान लेकिन एक सूती कपड़ा मिल जो जियाजीराव कॉटन मिल के नाम से जानी जाती थी, वर्ष 1992 से बंद पड़ी हुई है और दूसरी मिल ग्रेसिम भी बंद कर दी गई। इस नगर के औद्योगिक रूप से विकसित होने का मूल कारण इसका दिल्ली, बम्बई रेलमार्ग पर स्थित होना है जिससे उद्योगों के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने में सहायता मिलती है। साथ ही, इन सुविधाओं के उपलब्ध होने के कारण उत्पादित माल को बेचने के लिए देश के अनेक बाजार भी उपलब्ध हो जाते हैं जिससे उत्पादों की खपत के लिए भटकना नहीं पड़ता है। इन उद्योगों की स्थापना से संभाग की जनसंख्या को पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध हो रहे हैं तथा उनका कुशलतम उपयोग भी हो रहा है। साथ ही उपलब्ध सुविधाओं के कारण निजी पूंजी भी उद्योग की ओर आकर्षित हो रही है, इससे इस संभाग में औद्योगिक विकास की पर्याप्त संभावनायें उपस्थित हो रही है।

मध्यप्रदेश में कुटीर उद्योग की प्राचीन परम्परा है। नियोजित विकास काल में इनके अतिरिक्त लघु उद्योगों के विकास पर भी विशेष ध्यान दिया गया और राज्य के औद्योगिक प्रतिरूप में इन उद्योगों का विशेष महत्व है, क्योंकि वृहद् तथा मध्यम वर्ग के उद्योग केवल वही स्थापित होते है, जहां विशाल प्राकृतिक तथा अन्य ससांधन हों, किन्तु लघु उद्योगों के विकास से सीमित संसाधनों के होने पर भी औद्योगीकरण सम्भव होता है। साथ ही लघु उद्योग सम्पूर्ण प्रदेश में वितरित हो सकते है, जिससे प्रदेश का सन्तुलित विकास सम्भव होता है। इनके स्थापन से प्रदेश की जनसख्या की कुशलता का उपयोग होता है तथा रोजगार के साधन बनते है। साथ ही निजी पूंजी भी उद्योागों में आकर्षित होती है। लघु उद्योगों में अधिकतर उपभोक्ता सामग्री, छोटी मशीनें, बिजली का छोटा सामान, हाथकरघा कपडा, चमडें इत्यादि का सामान बनाया जाता है, जिनकी खपत स्थानीय अथवा निकटवर्ती बाजार में हो जाती है। जिससे परिवहन के साधनों पर वहन का भार भी कम हो जाता है।

शोध के उद्देश्यः

1. ग्वालियर एवं चंबल संभाग की आर्थिक एवं औद्योगिक संरचना का विश्लेषण करना।
2. ग्वालियर एवं चंबल संभाग की औद्योगिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना।
3. ग्वालियर एवं चंबल संभाग में औद्योगिक संरचना के विकास की स्थिति ज्ञात करना।
4. यह ज्ञात करना कि राज्य सरकार स्थापित उद्योगों की संरचना एवं विकास के लिए क्या सुविधाऐं एवं रियायतें प्रदान कर रही है।
5. यह ज्ञात करना कि राज्य सरकार स्थापित उद्योगों की संरचना एवं विकास में कहां तक सफल रही है।

वित्तीय संस्थायें :

वित्तीय सुविधा में व्यापारिक बैंकों का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्पादन, व्यापार, व्यवसाय, कृषि, उद्योग एवं निजी व्यवसाय सभी पर बैंकिंग व्यवस्था द्वारा प्रदत्त ऋण सुविधा का प्रभावपूर्ण असर होता है। ब्रिटिश शासनकाल के पूर्व हमारे देश में बैंकिंग का कोई विकास नहीं था और यह कार्य पूर्णतः महाजनों एवं साहूकारों को करना पड़ता था। आधुनिक बैंकिंग व्यवस्था का प्रारंभ सन् 1803 में बैंक ऑफ बंगाल के साथ हुआ तथा स्वतंत्रता के पश्चात् सन 1949 में बैंकिंग नियमन कानून द्वारा उसे सुदृढ़ किया गया। बैंकिंग प्रणाली के विकास एवं देश के आर्थिक विकास में उसके योगदान का प्रारंभ वास्तव में 19 जुलाई 1969 को देश के बड़े चौदह बैंकों, जो लगभग बैकिंग व्यवस्था में 80 प्रतिशत भागीदार थे, के राष्ट्रीयकरण से हुआ।[1]

सामाजिक न्याय सहित आर्थिक विकास की दिशा में बैंकिंग क्षेत्र का प्रभावशाली योगदान स्वीकार किया। नई छठवी योजना (198085) में यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि अब इस क्षेत्र को कमजोर वर्गों का हितैशी बनना चाहिये और इसलिए कृषि, लघु एवं कुटीर उद्योग, फुटकर उद्योग, व्यक्तिगत व्यवसायिक क्षेत्र एवं रोजगार क्षेत्र में प्रयुक्त सामान्य आदमी के उत्थान के लिए ''कुल बैंक ऋण के एक तिहाई स्थान पर चालीस प्रतिशत'' इन क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जाना चाहिये साथ ही ग्रामीण, अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में इनका विस्तार कर शहरी ग्रामीण स्तर बराबर तथा क्षेत्रीय असंतुलन दूर करना उद्देश्य रहेगा। इसके साथ ही 'इन क्षेत्रों में ब्याज विकेन्द्रीकरण अथवा कम ब्याज वाले ऋण सुलभ कराने पर'' जोर दिया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों के छोटे किसानों, लोक–कलाकारों, आदिवासियों, हरिजनों तथा साधनहीन निर्धन लोगों की मदद के लिए वहाँ कार्यरत लीड बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक जो अहम भूमिका निभा रहे हैं, उसमें वहाँ के आम आदमी की हालत बेहतर हुई और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक नया धरातल मिला है। ये बैंक जहाँ एक ओर शासन के 20 सूत्रीय कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में मदद कर रहे हैं, वहीं एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रमों, ग्रामीण उद्योग धंधों, अपंग तथा अपाहिजों को रोजगार की व्यवस्था करने आदि संबंधी महत्वपूर्ण कार्यों में भी अपना भरसक योगदान दे रहे हैं।

आधुनिक बैंकिंग संस्था का उदय इस शताब्दी के आरंभिक वर्षों में हुआ, और उसका सूत्रपात सन 1907 में लश्कर में बैंक ऑफ बंगाल की एक शाखा की स्थापना के साथ हुआ। बाद में इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम के पारित किये जाने के समय जिसके परिणामस्वरूप 27 जनवरी 1921 को इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया स्थापित किया गया। यह बैंक अन्य प्रादेशिक बैंकों के साथ अर्थात् दि बैंक ऑफ बॉम्बे और बैंक ऑफ मद्रास में सन् 1920 में मिला दिया गया।

शोध की सीमाऐं :

प्रस्तुत शोध अध्ययन की कुछ सीमायें एवं जटिलतायें होती है। जिसके कारण शोधार्थी को कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। एक व्यक्ति की क्षमताओं का सीमित होना भी इन कठिनाईयों का एक कारण है। यद्यपि शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबंध में शोध की गरिमा को ध्यान में रखते हुए तथ्यों के संकलन में सर्तकता एवं शुद्धता को विशेष रूप से निष्कर्षों को प्राप्त करने का यथा संभव प्रयास किया गया है। औद्योगिक संरचना के अन्तर्गत विभिन्न उद्योगों के सम्मिलित होने के कारण अनुसंधानकर्ता को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ा । औद्योगिक संरचना तथा उनसे संबंधित औद्योगिक इकाईयाँ दूर–दूर तक फैली हुई है। अतः अनुसंधानकर्ता को उद्योगों से सम्बन्धित कर्मचारियों से साक्षात्कार प्राप्त करने के लिये बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा।

शोधार्थी को द्वितीयक समंक के संकलन में थोड़ी कठिनाईयों का सामना करना

पड़ा क्योंकि उद्योग से सम्बन्धित कार्यालयों में भी कुछ वर्षो की सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी अतः प्रस्तुत शोध में अध्ययन की सीमाओं को अध्ययन का एक अपरिहार्य भाग मानते हुए शोध कार्य पूर्ण किया गया

fu"d"k

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि ग्वालियर संभाग यातायात की सुविधा से सम्पन्न संभाग है इसलिए यहाँ सड़क एवं रेल सुविधाओं के माध्यम से व्यापार का क्षेत्र अत्यन्त विकसित है और इन्हीं सुविधाओं के माध्यम से बड़ी मात्रा में विभिन्न स्थानों से वस्तुओं का आयात व निर्यात रेल के द्वारा किया जाता है तथा संभाग के अन्य नगरों तथा छोटे–बड़े स्थानों को सड़क मार्ग से उपयोग के लिए वस्तुयें एवं सेवायें उपलब्ध कराई जाती है।

ग्वालियर एवं चम्बल संभाग यातायात सुविधाओं से सम्पन्न होने के कारण प्रदेश का एक प्रमुख व्यापारिक नगर बना हुआ है। ग्वालियर एवं चम्बल संभाग में व्यापारिक दृष्टि से जहाँ बड़ी मात्रा में वस्तुओं का आयात किया जाता है वहीं यहाँ बने उत्पादों को देश–विदेश के विभिन्न स्थानों पर निर्यात कर दिया जाता है। इनमें प्रमुखतः कपड़ा, लौह उत्पाद, चमड़े का सामान, शक्कर, पॉटरीज, अनाज, तेल आदि उत्पाद हैं इसीलिए इस संभाग की गणना एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के रूप में की जाती है।[1]

नगरीय विकास एंव वित्तीय विकेन्द्रीयकरण वर्तमान समय में अति आवश्यक है। नगरीय विकास औद्योगिक विकास पर निर्भर करता है और औद्योगिक विकास वित्तीय विकास पर निर्भर करता है। या कहे एक दूसरे के पूरक घटक है।[1]

सम्भाग के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में परिवहन के साधनों का विशेश महत्व है। किसी संभाग के आर्थिक जीवन में यातायात के साधनों का उतना ही महत्व है जितना कि शरीर में रक्त संचालित करने वाली धमनियों का। वास्तव में एक आधुनिक अर्थव्यवस्था यातायात के साधनों के अभाव में सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। यातायात के साधनों का वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय तथा वितरण में व्यापक योगदान रहता है। यातायात के विकसित साधनों के द्वारा कच्चा माल, ईधन, मानवीय श्रम तथा अन्य संसाधनों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से भेजकर मांग तथा पूर्ति का संतुलन बनाया जा सकता है। परिवहन के साधनों के अभाव में विकास की प्रक्रिया रूक जाती है तथा उत्पादन वितरण एवं विपणन का कार्य शिथिल हो जाता है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. डॉ. शर्मा हरिश्चन्द्र : भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2002
2. कुर्रेशी नईम : ग्वलियर विरासत चम्बल, पोस्ट प्रकाशन ग्वालियर, वर्ष 1992

3. बघेल एवं पाण्डे : सामाजिक अनुसंद्यान, साहित्य भवन, आगरा, वर्ष 2004

4. डॉ. अग्रवाल अनुपम : अर्थशास्त्र, उपकार प्रकाशन, आगरा, वर्ष 2002

5. डॉ. राधेशरण : भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना और संस्कृति के मूल्य तत्व, मध्यप्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल 2000

6. मुखर्जी रविन्दनाथ : सामाजिक शोध के मूल्य तथ्य, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली 1992

7. डॉ. पटेल दरमन्तदास : भारत में ग्रामीण विकास के प्रमुख अवयव, राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान, हैदराबाद 2004

8. सिंह एस.सी. : आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली – 2011

9. डॉ. अग्रवाल जी.के. एवं शुक्ला डी.पी. : सामाजिक शोध, आगरा बुक स्टोर, आगरा 2008

10. सुन्दरम के.पी.एस. : भारतीय अर्थव्यवस्था, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

11. डॉ. संजय मजूपूरिया : ग्वालियर का इतिहास और उसके दर्शनीय स्थान, सुधा प्रकाशन, ग्वालियर 1994

12. अनुराग षर्मा : आर्थिक विकास एवं प्राकुतिक संसाधन प्रथम संस्करण 2010 इषिका पब्लिषिंग हाउस जयपुर पृष्ठ न. 3,4।

13. शर्मा, अनुराग : आर्थिक ,विकास एवं प्रकृतिक संसाधन, प्रथम संस्करण 2010 इषिका पब्लिसिंग हाउस जयपुर पृष्ठ न. 112

14 गौतम राकेश : म.प्र. एक परिचय प्रकाशक टाटा मेग्राहिल प्रायवेट लिमिटेड नई दिल्ली संस्करण 2011, पृष्ठ न. 15.6

15. डी. एस बघेल : औद्योगिक समाजशास्त्र संस्करण 2009 विवेक प्रकाषन दिल्ली पृष्ठ न. 25

''डॉ. रामविनयसिंह का गीत–लोक''

गणेश भागवत*

महान् गीतकार आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री ने गीत को परिभाषित करते हुए लिखा है कि– ''**भाव स्वरों में छलकर गीत बन जाता है, जैसे आत्मा और परमात्मा में दूरी भावात्मक है, देश–कालगत नहीं, ऐसे ही स्वर और भाव की दूरी भी है, त्रिगुणात्मक आवरण का भंग होते ही आत्मा और परमात्मा एकाकार हो जाते है, ज्ञान और कर्म के किनारे डुबोकर गीत के अमृत धार उमड़ पड़ती है।**''1

गीत के विषय में डॉ. राधाबल्लभ त्रिपाठी ने लिखा है–

''तदेवान्त्यानुप्रासध्रुवकान्वितं गीतम्''! 2

डॉ. रामविनयसिंह के शब्दों में ''गीत निसर्ग का स्पन्दन है और निसर्ग गीत की स्थूल अभिव्यक्ति, जब सृष्टि की आदिम निर्माण–प्रक्रिया में पर्वतों के वक्ष पर हस्ताक्षर करतीं नदियों ने अपने निनाद से पत्थरों के हृदय में ध्वन्यात्मक सन्धान किया होगा, जब किसी शीतल हवा के मन्द झकोरों ने अपने संस्पर्श से किसी वृक्ष की कमनीयता को पुलकित किया होगा, जब किसी समुद्र की लहरों ने किनारे पर सिर पीटकर एक अन्तःस्वर का स्वैर उद्घोश किया होगा, जब किसी शाख पर बैठे विहंगम ने मीठे बोल से प्रकृति के निरकांक्ष भाव को अपनी और खींचकर साकांक्ष कर दिया होगा, कदाचित् गीत का प्रथमावतरण तभी हो गया होगा। कोई संदेह नहीं कि प्रकृति के साथ उद्भूत गीत की मानवी अभिव्यक्ति कालांतर में मानव बुद्धि के सापेक्ष हुई और इसी की शाब्दी उपस्थिति वैदिक मंत्रो की हृदयानुरंजिनी स्वर लहरियों में अनुभूत की गई। यही से सामेभ्यो गीतमेव च की पुष्टि हो गई और वैदिक उद्गीत गीत के प्रारम्भिक स्वरुप के प्रमाणक हो गये।''3

वैदिक पथ से चलती हुई यह गीतधारा लोक में अवतरित हुई तो सर्वप्रथम आचार्य जयदेव ने गीतगोविन्द के माध्यम से इसका स्वागत किया। बीसवीं शताब्दी में ''भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, जानकी बल्लभ शास्त्री, आचार्य प्रभात शास्त्री, आचार्य बच्चूलाल, आचार्य श्रीनिवासरथ, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, डॉ. भास्कराचार्य त्रिपाठी, डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, डॉ. रामविनय सिंह'' प्रभृति प्रशस्त कवियों ने अपनी लेखनी से निरन्तर गीत विधा में श्रीवृद्धि की।

डॉ. रामविनय सिंह के गीत संकलन शाश्वती मे मातृभक्ति, देश भक्ति, समकालीनकटुयर्थाथ वर्णन, वैयक्तिक प्रेमाभिव्यक्ति, सौन्दर्य चित्रण, जीवन दर्शन, कारुण्याभिव्यक्ति, राष्ट्रदुरावस्था चित्रण, प्रणय निवेदन आदि विषय अभिव्यक्ति हुए है।

कविवर विनय जी ने भारत मातृभूमि को धन्य मानते हुए भारत की संस्कृति को चित्रित किया है–

*शोध छात्र, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार, (उत्तराखण्ड)

सखे! धन्येयं भारतभूः!
भाब्दैराख्यातुं न भाक्यते
धरणी भटप्रसूः!!
छेवसेविता कम्या रम्या
नम्या वसुन्धरा
यत्र च सततं क्रोडे क्रीडति
विद्या पराऽपरा
आकृष्टा जाता पुराऽपि
साम्प्रतं किं व्योमवधूः!4

भौतिकतावाद के इस समय में कवि समकालीन कटुता को चित्रित करने से पीछे नहीं रहते, बल्कि किस प्रकार व्यक्ति मानवीय संवेदनाओं से दूर हो गया है–

क्वागतोऽहं साम्प्रतं रे!
अश्रुवक्षसि दुष्यते सा साधना–रेखा,
पवनताडितसागरोच्छलदम्बुसंरेखा
स्नेहघनमयजीवनं ज्वालायते,
ननु साम्प्रतं रे !5

मदिरचपलनयने गीत संस्कृत जगत् में विशेष प्रसिद्ध रहा जिसे गीतकार ने कवि सम्मेलनों, अन्य अवसरों पर अपने सुमधुर कंठ से प्रस्तुत किया। प्रणय निवेदन का उत्कृष्ट गीत है–

नयने त्वमसि त्वमसि मे प्राणे
त्वमसि हृदय–गगने
अयि मदिरचपलनयने!!
मन्दं मन्दं स्पृशति सगन्धं गन्धवहो देहम्
भ्रमराली भ्रमति भ्रमविस्तृतमन्वेश्टुं गेहम्
अयने त्वमसि त्वमस्युड्डयने
स्वप्नकुसुमचयने
इह भावाकुलभुवने! 6

अपने गीतों में रामविनय जी ने कवितारुपनिरुपम ऋतुवर्णन, राष्ट्रमंगलकामना आदि विषयों को भी चित्रित किया है। कवि ने अपनी रचना का परिचय 'गीतम्' गीत में दिया है–

अहमनामकभावनायास्स्नेहसंसारोऽस्मि,
नवविधातुः कामनायास्सृष्टिसत्कारोऽस्मि
अश्रुसिक्तकपोलचंचंलता भाम्पा
कम्पमीलितनेत्रयोर्ननु न
नव्यश्रृंगारोऽस्मि!7

कविवर ने धनाक्षरी के द्वारा 'स्वतंत्रता' गीत में मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है–

तरलतरंगभंगभूशिताम्बुपतिरिव
मानसेऽद्य मोमुदीति मानिनी मनोज्ञता,
जलददलानि दलितानि चलरश्मिभिश्च
ज्ञानदीपदीपिता सुदामिनी सुरम्यता,
राजराजभावनाविभानिभानिभालितेशु
दयहृदयेशु रसभामिनी रसंगता,
राजते वने घने च नम्यनयनेऽयनेऽपि
प्रेमपथगाामिनीव कामिनी स्वतंत्रता।8

वर्षाऋतु का मनोहारी वर्णन–

मेदुरायते मधुरं गानम्, कलरवायते नीलवितानम्
भावाभावविभाविसुकृदभ्यः पथि पथि सुखं प्रयच्छति।9

अन्ततः कहा जा सकता है कि डॉ. रामविनयसिंह के गीत आदर्श और यथार्थ को एकाकार कर देने वाले गीत हैं, मानव मन की समस्त उदात्त और युगीन चिन्तनाओं को स्वर माधुरी प्रदान करने वाले गीत है, जीवन को सरस संजीवनी देने वाले गीत है।

सन्दर्भ –ग्रन्थ

1. स्वरम्भरा –डॉ. रामविनयसिंह, संस्करण–2011, विन्सर पब्लि. देहरादून, पृ.13–14.
2. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र–3/1/5–राधावल्लभ त्रिपाठी.
3. वैचारिकी– डॉ रामविनयसिंह संस्करण 2011 विन्सर पब्लि. देहरादून, पृ. 92.
4. शाश्वती– डॉ रामविनयसिंह संस्करण 2003, देववाणी परिषद् दिल्ली, पृ.25.
5. शाश्वती– पृ.26.
6. शाश्वती– पृ.44.
7. शाश्वती– पृ.61.
8. शाश्वती– पृ.73.
9. शाश्वती– पृ.40.

वाल्मीकि रामायण में दृष्य वस्तु बिम्ब

देवराज मैठाणी*

वस्तुतः किसी वस्तु को स्पष्ट करने के लिए दृष्य बिम्बों की योजना की जाती है। एक प्रकार से हम देखते हैं कि जहाँ पर सहज रूप में दृष्य बिम्बों की श्रृंखला बन जाये, उसे सहज दृष्य बिम्ब या दृष्य वस्तु बिम्ब भी कह सकते हैं।

दृष्य बिम्ब में महत्वपूर्ण यह है कि उसमें जीवन के किसी अंग का सजीव चित्र प्रस्तुत किया जाता है। आँखों के आधार पर जब किसी प्रसंग या वस्तु को शब्द चित्र में देखा जाता है तब वहाँ दृष्य बिम्ब होता है। दृष्य बिम्ब आकार वाला होता है। दृष्य बिम्ब का कविता में सबसे ज्यादा प्रयोग किया जाता है। जैसे कोई चित्रकार रेखा के द्वारा चित्र बनाता है उसी प्रकार कवि शब्दों के माध्यम से किसी घटना को या प्रसंग को आँखो के समक्ष उपस्थित करता है उसे दृष्य बिम्ब कहते हैं जैसे यहाँ पर पंचवटी के पर्वतों का दृष्य चित्रण प्रस्तुत करते हुए वाल्मीकि ने उन्हें मानो रंगे–बिरंगे हाथी के सदृश्य उनका रूपाङ्कन कर दिया हो –

सौवर्णै राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे तथा भ्रुभैः।
गवाक्षिता इवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः।।

अर0/सर्ग – 15/15

स्थान–स्थान पर सोने–चाँदी तथा ताँम्बे के समान रंगवाले सुन्दर गैरिक धातुओं से उपलक्षित ये पर्वत ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो झरोखे के आकार में की गयी नीले, पीले ओर सफेद आदि रंगों की उत्तम श्रृङ्गार रचनाओं से अलंकृत हाथी शोभायमान प्रतीत हो रहे हों।

कवि चाहे किसी सजीव का चित्रण करे या निर्जीव का, पर उसकी चेतना जड़ को भी चैतन्य रूप में ही परिवर्तित कर देती है। सूर्यास्त का होना और रात का आना सभी देखते होंगे, किन्तु उस दृष्टि से नहीं जिस दृष्टि से उन्हें कवि देखता है।

वस्तुतः बिम्ब का अभिप्राय आकृति से है, सूर्य बिम्ब चन्द्र बिम्ब जैसे शब्दों का प्रयोग आकाश मण्डल में दृष्य सूर्य और चन्द्रमा के मण्डल के लिए करते हैं। अतः काव्य बिम्ब का अर्थ भी काव्य में निर्मित वस्तु की आकृति से लिया जाता है। सूर्य व चन्द्र के बिम्ब भौतिक जगत् की वस्तु है। कुछ स्थान पर कवि ने श्वेत कान्ति का वर्णन प्रभावी ढंग से किया है जो वर्ण विन्यास की दृष्टि से प्रभावशाली हो जाता है। चन्द्र बिम्ब के अन्तर्गत हम उदित चन्द्र की फैली चाँदनी का बिम्ब देख सकते हैं –

भांखप्रभं क्षीरमृणालवर्ण
मुद्गच्छमानं व्यवभासमानम्।

*शोध छात्र संस्कृत विभाग डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलेज, देहरादून।

ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः
पोप्लूयमानं सरसीव हंसम्।।

सु0/सर्ग–2/58

अर्थात् शंख और मृणाल की सी कान्ति वाला चन्द्र आकाश में वैसे ही उदित हुआ है जैसे किसी सरोवर में कोई हंस तैर रहा हो। यहाँ सरोवर में हंस के तैरने से हल्के गतिशील अप्रस्तुत बिम्ब के द्वारा कवि ने एक साथ हंस, शंख, दूध और मृणाल इन सब समानवर्ती श्वेत उपमानों को चन्द्र की धवलता को अधिक उद्भासित करने हेतु हमारे समक्ष उपस्थित कर दिया है।

दृष्य बिम्ब के अन्तर्गत चाक्षुश बिम्ब पर आश्रित बिम्बों का वर्णन होता है क्योंकि इसमें दृष्य बिम्बों का वर्णन अपेक्षित रहता है, तत्पश्चात् आकृतियुक्त स्थिर व गत्वर चित्रों को शब्द शैली के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। कवि अपने काव्य में वर्ण्य वस्तु को अधिक आकर्षक बनाने के लिए बिम्बों का प्रयोग करता है और बिम्बों के प्रयोग में भी चाक्षुश बिम्ब का प्रयोग सर्वाधिक करता है। क्योंकि अन्य बिम्बों जैसे श्रवण, घ्राण, स्पृष्य श्रोतृत्व की अपेक्षा चाक्षुश बिम्ब पाठक तथा श्रोता तक पहुँचाने में अधिक प्रभावशाली रहता है।

आदि कवि द्वारा आदिकाव्य रामायण में बिम्बों के प्रयोग से ऐसा लगता है मानो उनके शिल्प में स्वयं स्वर्णिमद्युति विराजती है। आदिकवि की दिव्य दृष्टि में मृग ही स्वर्णमय नहीं, अपितु वन, वृक्ष रथ, अश्व, महल, शस्त्र इत्यादि सभी हेममय है। इसी भाँति मय की माया से स्वर्णमय वृक्ष अपने स्वर्णमय पुष्प गुच्छों से और स्वर्णिम लताओं के साथ वैदूर्यमणि की वेदिकाओं पर सुशोभित हो रहे हैं तथा उसके हेममय पुष्पों पर स्वर्णमय भौरों का गुञ्जायमान हो रहा है। वहाँ के सरोवर काञ्चनमय वृक्षों से आच्छादित है। प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के पड़ने पर वहाँ का संपूर्ण वातावरण स्वर्णमय हो जाता है। उस सरोवर के भीतर मानो बड़े–बड़े उजले मत्स्य तथा स्वर्णिम कमल अपनी दीप्ति बिखेर रहे हों। वहाँ बने भवन रजत और स्वर्णमय है एवं सोने से निर्मित खिडकियों में मानो मोती की सी जालियाँ लगी हुई हैं –

आपीडैश्च लताभिश्च हेमाभरण भूशितान् ।
तरूणादित्यसंकाशान् वैदूर्यमयवेदिकान ।।
विभ्राजमानान् वपुशा पादपांश्च हिरण्मयान
नीलवैदूर्यवर्णाश्च पद्मिनीः पतगैर्वृत्ताः।।

किश्कि0/सर्ग–50/27–28

समुद्र लाङ्घने के समय मैनाक पर्वत हनुमान जी के आतिथ्य सत्कार व सहायता प्रदान करने के लिए उसी प्रकार महासागर के जल को भेदकर बहुत ऊँचा उठ गया था जिस प्रकार उद्दीप्त किरणों वाले दिवाकर (सूर्य) मेघों के आवरण को भेदकर उदित्त होते हैं। उस

मैनाक पर्वत की कान्ति मानो सूर्य के सदृश प्रतीत हो रही थी –

भाातुकुम्भमयैः वद्वग्ः सकिंनरमहोरगैः।
आदित्योदयसंकाशैरूल्लिखद्भिरिवाम्बरम्।।

सु0/सर्ग 1/104

मैनाक पर्वत के शिखर सुवर्णमय थे। उन पर किन्नर और बड़े–बड़े नाग निवास करते थे। सूर्योदय के समान तेज पुञ्ज से विभूशित वे शिखर इतने ऊँचे थे कि आकाश में रेखा सी खींच रहे थे। उस पर्वत के उठे हुए सुवर्णमय शिखरों के कारण शस्त्र के समान नील वर्णमाला आकाश सुनहरी प्रभा से उद्भासित होने लगा। उन परम कान्तिमान और तेजस्वी सुवर्णमय शिखरों से वह गिरिश्रेष्ठ मैनाक सैकड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान हो रहा था इस प्रकार आदि कवि की संपूर्ण कविता में स्वर्णिमद्युति विराजती है।

इसी भाँति पूँछ मे आग लगा देने के उपरान्त जब हनुमान जी लंका में प्रविष्ट हुए तो मानो ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे लंका में अंशुमान सूर्य पुलकित हो रहे हों–

प्रदीप्तलाङ्गूलकृतार्चिमाली
प्रकाशितादित्य इवार्चिमाली।

सु0/सर्ग– 53/44

उस समय जलती हुई पूँछ से जो ज्वालाओं की माला सी उठ रही थी उससे अलंकृत हुए वानरवीर तेजः पुञ्ज से देदीप्यमान सूर्यदेव के समान प्रकाशित हो रहे थे।

आगे भी यहाँ पर हम एक सुन्दर मिश्रित बिम्ब का चित्रण देख सकते हैं। वायुनन्दन कपिवर हनुमान जी ने औचित्त्य बल पौरूष से सम्पन्न रावण को अशोक वाटिका में इस प्रकार देखा–

दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभाशितम्।
गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रयमाणाभिरग्रतः।।
मथितामृतफेनाभमरजो वस्त्रमुत्तमम्।।

सु0/सर्ग–18 23, 1/2

अर्थात् वह आगे–आगे चलने वाली रमणीय वनिताओं के हाथों में धारण किए गए अनेक दीप मालिकाओं के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है। तब उसने मथे हुए दूध के फेन के सदृश मानो श्वेत वस्त्र धारण कर लिए हो। यहाँ पर कवि ने सूर्य व स्वर्ण और अग्नि ज्वाला की सदृश प्रतिभा का संश्लेषण करके पीत के साथ श्वेत का मनोहारी मिश्रण प्रस्तुत किया है।

आदिकवि ने अपने महाकाव्य में कई वर्णों का संश्लिष्ट चित्र बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। शिल्प की सादगी ऐसे स्थलों पर भी निरन्तर बनी रहती है। कवि द्वारा बहुधा रक्तमाला और रक्त चंदन का सामान्य प्रयोग किया गया है। पात्रों के अलंकरण प्रसंग में ही

ऐसे कई प्रयोग मिलते हैं जैसे कि 'रक्त माल्यदाव' और शोणित की समन्वित रक्तिमा के साथ कृष्ण तथा पीत का संश्लिष्ट प्रयोग युद्धार्थ प्रस्थान कर रहे कुम्भकर्ण के हाथ में लोहे का बना हुआ तीक्ष्ण शूल जो चमकीला व तपाये हुए सुवर्ण से निर्मित था वह इस प्रकार संश्लिष्ट बिम्ब के साथ अलंकृत हो रहा था।

प्रायः वर्णविन्यास की दृष्टि से आदि कवि वाल्मीकि ने मृग के स्वरूप व उसकी देह कान्ति का बड़ा ही मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है –

मणिप्रवरवद्दग्द्रग्रः सितासितमुखाकृतिः।
रक्तपद्योत्पलमुख इन्द्रनीलोत्पलश्रवाः।।

अर0 / सर्ग–42 / 16

उस समय उस मृग ने बड़ा ही अद्भुत रूप धारण कर रखा था। मुख मण्डल पर सफेद और काले रंग की बूँदे थी, मुख का रंग लाल कमल के समान था। उसके कान नीलकमल के तुल्य थे और गर्दन कुछ ऊँची थी। उदर का भाग इन्द्रनीलमणि की कान्ति धारण कर रहा था। पार्श्व भाग महुए के फूल के समान श्वेतवर्ण के थे। शरीर का सुनहरा रंग कमल के केसर की भांति सुशोभित हो रहा था।

कहीं–कहीं पर तो वाल्मीकि एक ही वस्तु के कई सूक्ष्म वर्णभेद एक साथ उपस्थापित करते हैं जैसे वर्णभेद के वर्णन में नील, रक्त श्वेत कमलों के लिए नीलोत्पल, रक्तोत्पल, कुमुद का प्रयोग करते हैं –

पद्मसौगन्धिकैस्ताम्रां भाुक्लां कुमुदमण्डलैः।
नीलां कुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णाः कुथामिव।।

अर0 / सर्ग 75 / 20

कवि ने यहाँ पर विविध रंगों से पम्पा की छवि का वर्णन किया है। अरूण कमलों से वह (पम्पा) ताम्रवर्ण की, कुमुद–कुसुमों के समूह से शुक्लवर्ण की तथा नील कमलों के समुदाय से नीलवर्ण की पम्पा (सरोवर) सुशोभित हो रहा था।

इसी के सदृश कवि ने पम्पा सरोवर को भी नव वस्त्रों से विभूषित एक नवयुवती की भाँति चित्रित किया है। तिलक, बिजौरा, वट, लोध, खिले हुए करवीर पुष्पित नागकेसर, मालती, कुन्द झाड़ी, भंडीर (बरगद) वञ्जुल, अशोक, छितवन, कुलक, माधवी लता तथा अन्य नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित हुई पम्पा भाँति–भाँति की वस्त्राभूशणों से सजी हुई युवती के समान जान पड़ती थी –

तिलकैर्वीजपूरैश्च वटैः भाुक्लद्रुमैस्तथा।
पुश्पितैः करवीरैश्च पुंनागैश्च सुपुशितैः ।।

अर0 सर्ग– 75 / 23

आगे भी लंका युद्ध के उपरान्त अग्निदेव द्वारा सीता की प्रमाणिकता के पश्चात जब राम ने स्वीकार उस समय चरित्र शुद्ध का प्रदीप्त रूप हम निम्नरूप में देख सकते हैं –

तरूणादित्यसंकाशां तप्तकाञ्चनभूशणाम् ।
रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ।।

यु0 / सर्ग– 118 / 3

यहाँ पर सीताजी प्रातःकालीन सूर्य की भाँति अरूणापीत कान्ति से प्रकाशित हो रही है। सोने के आभूषण उनकी कान्ति को अत्याधिक बढ़ा रहे हैं। सिर पर काले घुंघराले केश तथा उनके श्रीअंङ्गो पर लाल रंग की रेशमी साड़ी विभूशित हो रही है। अनिन्द्य सुन्दरी सती–साध्वी सीता अग्नि प्रवेश करते समय जैसा रूप और वेश था उसी प्रकार ही रूप सौन्दर्य से प्रकाशित हो रही थी।

इस प्रकार कवि वाल्मीकि कृत रामायण महाकाव्य अन्य परवर्ती कवियों के लिए कवियों के लिए एक पथ प्रदर्शक का काम करता है क्योंकि कालिदास बाण, भास आदि के काव्यों में दृष्य बिम्बों का आधिकाधिक प्रयोग हुआ है। आदि कवि ने संश्लिष्ट बिम्बों का चित्र खींचते हुए अद्भुत कवित्व का परिचय दिया, यही कारण है कि वे परवर्ती कवियों के लिए एक प्रेरणास्रोत बनकर उभरे। रामायण में उन्होंने विभिन्न दृष्य बिम्बों का आदर्श स्थापित किया है। उनकी कविता कामिनी स्वर्णमयी होकर समस्त विश्व में द्युतिमान् है। बिम्बों के द्वारा शब्दचित्र मानो पाठक से मुखरित हो रहे हों, वास्तविक रूप से दृष्य बिम्ब के क्षेत्र में आदि कवि ने एक महनीय कार्य सम्पन्न किया। यह कहना भी अतिशियोक्ति न होगी कि बिम्बोपस्थापन में आदि कवि अद्वितीय है। उनके जैसे शब्द चित्र को उपस्थापित करना शायद ही किसी के वश में हो, वास्तव में वे अद्भुत कला के धनी थे।

संदर्भ –ग्रन्थ

1. वाल्मीकि रामायण गीता प्रेस गोरखपुर (सैंतालीसवाँ पुर्नमुद्रण) 3 / 15 / 15
2. वही 5 / 2 / 58
3. वही 4 / 50 / 27–28
4. वही 5 / 1 / 104–105, 53 / 44
5. वही 5 / 18 / 18, 23, 1 / 2
6. वही 3 / 42 / 16
7. वही 3 / 75 / 20
8. वही 3 / 75 / 23
9. वही 6 / 118 / 3

मौर्यकाल में कृषकों की सामाजिक स्थिति

पारूल सोती*

प्राचीन काल से ही 'कृषक' भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड रहे है। 'मौर्यकाल' भारत में कृषि और कृषक की अर्थव्यवस्था का सर्वेक्षण तथा कृषकों के सामाजिक जीवन के आकलन की दृष्टि से ग्रहणीय है। इस समय समाज में कई महत्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों ने स्थान ग्रहण किया तथा समाज का अंग बन गए। विस्तृत साम्राज्य तथा विशाल उत्पादक व्यवस्था को ही पर्याप्त नहीं समझा गया। अपितु राज्य के अनके आर्थिक गतिविधियों को अपने हाथों में ले लिया जिसमें कृषि प्रमुख थी। कौटिल्य के अनुसार आदर्श कृषि व्यवस्था करना राज्य का कर्तव्य था, इसलिए उसने सीताध्यक्षों की नियुक्ति की तथा उनके कर्तव्यों को विस्तार से बताया।[1] ऐस ही उच्च अधिकारियों की नियुक्ति के विषय में वर्णन मेगस्थनीज के विवरण से भी मिलता है।[2] इसी तरह मौर्यों द्वारा कृषि को प्राथमिकता देने के कारण एक व्यवस्थित उत्पादित व्यवस्था कायम हो और एक विशाल कृषक समाज उभरकर सामने आया।

भारतीय समाज की रीढ़ समझे जाने वाले कृषक किसी एक वर्ण या जाति को सम्बोधित नहीं करते थे। हम देखेंगे कि समाज के चारों वर्ण के लोगों ने कृषि व्यवसाय को अपनाया चाहे वो भूमिदान प्राप्त बड़े–बड़े भूस्वामी, ब्राहमण और क्षत्रिय हों, या फिर परम्परागत वार्ताजीवी वैष्य हों या दास और श्रमिक के रूप में कार्य करने वाले शूद्र हों। मेगस्थनीज ने भारतीय समाज को सात वर्गो में विभाजित करते हुए लिखा है कि ''दूसरी जाति के किसान है जो अन्य व्यवसायों के लोगों की अपेक्षा सुंख्या से अधिक जान पड़ते हैं। वे अपना सारा समय खेती में लगाते है क्योंकि वे युद्ध करने तथा अन्य राजकी सेवाओं से पूर्णतः मुक्त है।[3]'' इसी प्रकार एरियन के अनुसार भारत के बहुत से लोग किसान है जो कि अन्नोत्पादन से जीवन निर्वाह करते है।[4]

मौयकाल में पूर्वकाल के अनुसार चारों वर्णो के सदस्य कृशिवृत्ति में संलग्न थे। इसके प्रमाण अर्थशास्त्र[5] से भी मिलते है, जिसमें कौटिल्य राजा को सलाह देते है कि वह ऋत्विक, आचार्य, पुरोहित तथा क्षौत्रिय आदि ब्राहमणों के लिए भूमिदान करे, किंतु उनसे कर आदि न ले और उनकी भूमि भी वापस न ले। अतः उक्त से स्पष्ट है कि ब्राहमणों के अधीन कृषि भूमि थी, जिस पर या तो वे स्वयं या बटाईदारों, दासों या श्रमिकों द्वारा खेती कराते होगें। इसी प्रकार क्षत्रिय वर्ण भी कृषि से जुड़ा हुआ था जिसमें राज्य गोपों, विभागाध्यक्षों, स्थानिकों आदि को भूमिदान में देते थे किंतु वे इस प्रकार प्राप्त भूमि को बेच अथव गिरवी नहीं रख सकते थे। वह उस भूमि पर कृषि करवा सकते थे या राजस्व ग्रहण कर सकते थे। वैष्य वर्ण तो परम्परागत वार्त्ता व्यवसाय में संलग्न था ही सामान्यतः समाज के स्वतंत्र कृषक वैष्य वर्ण से ही होते थे, जो कि भौतिक उत्पादन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक थे। कौटिल्य

*कन्या गुरूकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

के वैष्य कृषक सामान्यतः मेगस्थनीज के खेतीहारों से मिलते है।[6] शूद्रो द्वारा कृषि कार्य करने का उल्लेख भी समकालीन साक्ष्यों से मिलता है। शूद्र वर्णों के कृत्यों का निरूपण करने में कौटिल्य ने धर्मशास्त्र में परिभाषित शब्दों का प्रयोग किया है कि शूद्र का निर्वाह द्विजों की सेवा से होता है,[7] किंतु वे शिल्पियों, नर्तकों, अभिनेताओं आदि का व्यवसाय करके भी अपना निर्वाह कर सकते हैं।[8] वे व्यवसाय के लिए स्पष्टतः स्वतंत्र थे और इनमें द्विजों की सेवा करना भी आवश्यक नहीं था।[9] इसका आभास अर्थशास्त्र में वर्णित जनपद निवेश वाले भाग से हो जाता है, जिसमें राजा को निर्देश दिया गया है कि उसे नवीन ग्रामों की स्थापना करनी चाहिए, जिसमें अधिकांश शूद्र कृषक रहते हों।[10]

अधिकांश विद्वानों ने 'शूद्रकर्शक' शब्दों का द्वन्द्व समास 'शूद्रकर्शकप्रायम' माना है।[11] इनके अनुसार शूद्र किसान नहीं ये और कुछ लोगों ने शूद्र शब्द को कृषक का विशेषण माना है।[12] अर्थशास्त्र में भी इस शब्द खण्ड का प्रयोग कहीं नहीं हुआ। अतः इसके अर्थ में मतान्तर है। एक स्थल पर कृषक को कर्मकार अर्थात भाड़े का मजदूर कहा है। सम्भवतया शूद्र से दास कर्मकार और कृषक से वैष्य किसानों का बोध होता है।[13] निःसंदेह कौटिल्य की नीति से बहुत से शूद्र स्वतंत्र कृषकों की स्थिति में पहुंच गये तथा राज्य की आय का माध्यम बने।[14] लेकिन इनकी सामाजिक स्थिति वैसी ही रही जैसे सूत्रकाल के अंतिम दिनों में थी।

समाज में निश्चित ही शूद्रों की स्थिति हीन थी। इन्हें संस्कार करने तथा वैदिक यंत्रों को सुनने सुनाने का अधिकार न था। उच्च वर्ण के व्यक्ति उनसे किसी प्रकार का घनिष्ठ सम्पर्क रखना पसंद नहीं करते थे। कौटिल्य ने लिखा है कि यदि नीच जाति का कोई व्यक्ति उच्च जाति के व्यक्ति की निन्दा करें तो उसे समान व्यवहार के लिए उच्च जाति के व्यक्ति की अपेक्षा अधिक दण्ड देना चाहिए।

कौटिल्य ने ऐसे संघों का उल्लेख किया है जो कृषि, पशुपालन और व्यापार द्वारा जीवन निर्वाह करते थे। निःसंदेह इनमें वैष्य और शूद्र ही कार्य करते होंगे। सम्भवतः इस काल में वैष्यों के साथ–साथ शूद्र भी कृषि करते थे। राज्य के कृषि फार्मो पर शूद्र ही कार्य करते होंगे। राज्य का इनपर पूरा नियंत्रण था। अर्थशास्त्र से यह भी ज्ञात होता है कि इस काल में किसानों में अनेक आदिम जातियों के व्यक्ति होंगे जिनकी गणना शूद्रों में की गयी थी। परन्तु इस काल में शूद्रों की स्थिति सामाजिक हीनता के बावजूद भी अस्पृष्य जातियों से अच्छी थी।

कौटिल्य ने केवल चांडालों को ही अस्पृष्य कहा है। उसने लिखा है कि यदि चांडाल किसी आर्य स्त्री को छू ले तो राजा को उसे 100 पण जुर्माना करना चाहिए।[15] ये गांव के बाहर रहते थे तथा अपवित्र माने जाते थे। आर्य उन्हें अपने हाथों से भोजन न देकर किसी और पुरूष के हाथों से भोजन टूटे हुए बरतनों में दें। मृत पुरूषों के कपड़े पहनना, अपराधियों को फांसी लगना, रात के समय शहर में न घूमना आदि नियम इनके लिए निर्धारित थे। अतः कृषक समुदाय उससे परे ही था।

कृषि विस्तार हेतु कौटिल्य ने नवीन कृषक ग्रामों की स्थापना का निर्देश दिया था कि ''राजा को ग्रामों का मण्डल प्राचीन या नवीन स्थानों पर बनाना चाहिए और इनमें अन्य लोगों को बसने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इन ग्रामों में कम से कम 100 तथा अधिक से अधिक 500 परिवार बसाये जा सकते थे। अधिकांश जनसंख्या शूद्र कृषकों की होनी चाहिए तथा ग्रामों का विस्तार एक या दो कोश का होना चाहिए[16] इन कृषिपरक ग्रामों को बसाने के लिए कौटिल्य भूमि का चयन, उससे होने वाली आय सिंचाई व्यवस्था तथा उस पर बसाये जाने वाले वर्णो के बारे में भी बताते है।''

इस प्रकार तात्कालिक कृषक गामों से साधारण रूप की कल्पना की जा सकती है।[17] ग्रामों के मध्य में सामूहिक भवन होंगे, जैसे सभागार आदि फिर अन्य लोगों के घर होते होंगे। इन घरों के समीप ही कृषकों के खेत तत्पश्चात चारागाह, बंजर भूमि, बाग आदि होते होंगे। ये जंगल ग्रामों के इतने समीप होंगे कि कृषि भूति के विस्तार हेतु उन्हें काटना पड़ता या [18] खेत सरकण्डों की बाड़ से घिरे होते थे तथा रखवालों से रक्षित होते थे।[19]

कृषिपरक ग्रामों के अच्छे प्रशासन हेतु कौटिल्य ने ग्रामों से संबंधित लेखा–जोखा रखने की बात कही है। जैसे ग्राम में कितने करदाता है किस जाति के लोग है। ग्राम का आकार और उसकी आर्थिक क्षमताएं क्या है आदि। कुछ ग्राम जो कि गोप, अधीक्षक, संगणक, स्थानिक, वैद्यों, घोड़ो के प्रशिक्षक और दूतों के दान में दिए जाते थे, कर मुक्त थे, इन्हें भूराजस्व का अधिकार था, बेचने व गिरवी रखने का अधिकार नहीं था। [20] अर्थशास्त्र में कहा गया है कम्बोज और सुराष्ट्र के क्षत्रियों और अन्य लोगों को 'वार्ताशास्त्रोपजीवी' है अर्थात ये लोग कृषि और युद्ध दोनों करते होंगे।[21]

कृषकों की भूमि की बिक्री, संरक्षण, सीमा विवाद आदि के संबंध में कृषकों पर ग्रामीण समुदाय द्वारा दबाव बना रहताा था, जैसा कि वह अपनी भूमि की बिक्री किसी अजनबी को न कर के, प्राथमिकता क्रम में सगे संबंधी पड़ोसी, ऋणदाता और अंत में किसी अन्य को भूमि दें।[22] इसी प्रकार यह भी विधान था की परिवार के मुखिया की मृत्योपरान्त भी भूमि का बंटवारा नहीं होना चाहिए, उत्तराधिकारियों द्वारा उसका उपयोग बिना बंटवारा के किया जाना चाहिए।[23]

इस प्रकार हम देखते है कि उक्त काल में इन ग्रामों में सामाजिक एवं साम्पतिक स्तर पर अंतर काफी गहराई तक प्रविष्ट था। ग्रामीण समुदाय में स्वतंत्र कृषक वर्ग मुख्यतः वैष्य वर्ण से था जबकि राजा द्वारा क्रम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में अथवा नवीन कृषक ग्रामों में बहुसंख्यक शूद्र कृषकों को बसाया गया और कृषि भूमि अनुदान में ब्राहमणों और शासकीय कर्मचारियों को दान में दी गई। इस प्रकार धनी–निर्धन दो वर्ग परिलक्षित होने लगे।

इन सबके बावजूद भी सामाजिक नियम एवं धार्मिक मान्यताएं ग्रामीणों को एकजुट रखने में मदद करती थी। जैसे सभी ग्रामीणों के लिए धार्मिक उत्सवों में भाग लेना अनिवार्य था। अर्थशास्त्र में यह उल्लेख है कि यदि कोई किसान ग्राम में आकर पंचायती या खेती न

करे जो उसे परिश्रमिक से दुगना, पंचायती कार्य के लिये धन न दें तो उसे धन का दुगना, सामुहिक खान–पान में सम्मिलित न हो तो उसका दुगना दण्ड, उससे अर्जित किया जाए।[24] कृषकों की कार्यकुशलता हेतु कौटिल्य का मत था कि ग्रामों में कोई भी नाट्यगृह, बिहार तथा क्रीड़ाशालाओं आदि नहीं होने चाहिए क्योंकि नट, नर्तक, गायक, वादण, भाण आदि से कृषि कार्यों में विध्न उत्पन्न होता है। कृषक अपने कार्यों में संलग्न रहे, जिससे राजकोश में अभिवृद्धि होती रहे और देश धन धान्य से समृद्ध रहे।[25]

इस प्रकार अनेक राजकीय उपबंध होने पर भी इन ग्रामों की अपने निजी मामलों में स्वायता बनी रही। ग्रामीण सदस्य सभाओं का आयोजन करते थे। इन सभाओं द्वारा अनेक मामले जैसे सिंचाई, सीमा, विवाद, चोरी आदि का निपटारा होता था। इनके निर्णय में मुखिया की राय महत्वपूर्ण होती थी। इन्हें 'ग्रामसामिक' 'ग्रामभोजक' या 'ग्रामधिप' आदि शब्दों से पुकारा जाता था। इनके निर्णय कानून के समान प्रभावशाली होते थे।[26] अतः कृषक ग्रामों की एक व्यवस्थित एवं निर्धारित स्थिति थी, जिसका की मौर्यकालीन समाजार्थिक व्यवस्था में मुख्य योगदान रहा।

मौर्यकालिन कृषक समाज का एक अंग कृषि श्रमिक व दास भी रहे। अर्थशास्त्र में मालिकों और मजदूरों के मध्य संबंधों के सामान्य नियम दिए गए है, जैसा की कार्य के प्रकार और समय को ध्यान ममें रखकर ही मजदूरी नियत की जाती थी। कृषि श्रमिक को निश्चित पारिश्रमिक का भुगतान किया जाना चाहिए किन्तु यदि मजदूरी पहले से नियत नहीं है तो कृशक मजदूर को 1/10 भाग मिलेगा।[27] भुगतान प्राप्त करने के बाद भी यदि कोई मजदूर कार्य को पूर्ण करने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई उत्पन्न करता है तो उसे 12 पण का जुर्माना चुकाना पड़ेगा और तब तक कार्य करता रहना पड़ेगा जबकि कार्य पूर्ण न हो जाए।[28] किसी असमर्थता के कारण उस पर जुर्माना नहीं पड़ेगा।[29] कोई मालिक भी यदि अपने श्रमिक से कार्य न लें तो उस पर भी जुर्माना लिया जाता था।[30] मजदूरी संबंधित विवादों का निपटारा भी गवाह द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर किया जाता था, यदि साक्ष्य न उपलब्ध हों तो नियोजकों से पूछताछ की जाती थी।[31] यद्यपि मालिक का अपराध सिद्ध करना कठिन होता था किन्तु अपराध की पुष्टि पर यदि यह पाया जाता कि उसने निश्चित मजदूरी का भुगतान नहीं किया है तो उसे मजदूरी का 10 गुना या 6 पण जुर्माना देना होता था।[32] अतः नियोजकों और नियोजितों दोनों के लिए नियम निर्धारित थे।

एरियन ने भी मेगस्थनीज के आधार पर लिखा है कि सब भारतीय स्वतंत्र है, उनमें से एक भी दास नहीं है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि कृषि इत्यादि क्षेत्रों में दासों की संख्या काफी कम थी इसलिए समाज पर उनका कोई व्यापक प्रभाव न था। जो भी हो इस काल में दास चाहे कृषि क्षेत्र में हो या कुटीर उद्योग में हो बहुत प्रभावशाली नहीं थे।[33] वे समाज के अन्य स्वतंत्र व्यक्तियों और कृषि श्रमिकों द्वारा किए जा रहे श्रम का मुकाबला नहीं कर सकते थे और इसका कारण प्राचीनकाल से ही भारत में दासत्व का विशिष्ट प्रकार

रहा जो कम विकसित था। जो कार्य स्वतंत्र व्यक्ति करता या वहीं कार्य दास भी करता था और वहीं कार्य अर्द्धस्वतंत्र किराये के मजदूर भी करते थे।[34] उनके जीवन स्तर में भी समानता थी। यह अलग बात हो सकती है कि पंतजलि के महाभाष्य में दास और कर्मकाट दोनों ही यह स्वीकारते है कि यदि उन्होंने ठीक प्रकार से कार्य किया तो उन्हें चावल और कपड़े मिलेंगे और वह स्वामी द्वारा दण्डित नहीं होंगे।

इस प्रकार हम देखते है कि अधीतव्य काल से कृषक साधारणतया सुविधाजनक स्थिति में था, यदि निर्धन थे तो राज्य के संरक्षण में सहायता प्राप्त करते थे। इसी तरह युद्धप्रधान युग में भी कृशक शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। कौटिल्य द्वारा भी यह निर्देशित था कि बिना किसी राजकीय कार्य के सैनिकों को ग्रामों में प्रवेश न करने दिया जाए।[35] युद्धकाल में प्रस्थान करती हुई शत्रु सेनाएं भी कृषि में कृषकों को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचाती थी।[36] मेगस्थनीज के अनुसार देश के एक भाग में सेनाएं युद्ध में लगी और दूसरे भाग में कृशक अपना कार्य करते रहते थे।[37] अतः स्पष्ट है कि संक्रमण काल में भी शासक कृषक वर्ग के प्रति अपना कर्तव्य नहीं भूलते थे। मौर्यों ने एक सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था कायम की, जिसमें कृषक समाज का अपना अलग योगदान रहा। निःसन्देह ये समाज का महत्वपूर्ण अंग थे।

संदर्भ –ग्रन्थ

1. अर्थशास्त्र II 40.241
2. मैक्रिण्डल, Ancient Inadia described by Megasthenio of Arien पृ0 86, 1926 कलकत्ता
3. वही पृष्ठ–39
4. वही पृष्ठ–216
5. अर्थशास्त्र 2.1
6. मैक्रिण्डल Ancient Inadia described by Megasthenio of Arien पृ0 83–84 खण्ड–33
7. अर्थशास्त्र 1.3
8. वही 1.3
9. आर0एस0शर्मा शूद्रों का प्राचीन इतिहास पृ0–148
10. अर्थशास्त्र II .1, ''शूद्र कर्शक प्रायं कुलशतांवर पंचशतकुलपंर ग्राममक्रोशद्विक्रोश सीमा–नमन्योनरंक्ष निवेशयेत''। आर0एस0शर्मा शूद्रो का प्राचीन इतिहास
11. आर0एस0शर्मा शूद्रो का प्राचीन इतिहास पृ0–148
12. टी0गणपतिशास्त्री का अर्थशास्त्र का संस्करण पृ0–109
13. आर0एस0शर्मा शूद्रो का प्राचीन इतिहास पृ0–149
14. मनुस्मृति, II .1
15. कौटिल्यए 3.20

16. अर्थशास्त्र III.65.9
17. अग्रवाल वासुदेव शरण, इण्डिया एज नॉन टू पाणिनी, पृ0—141—143
18. अर्थशास्त्र, III.9—10
19. जातक, II 101—110
20. Agriculture in Ancient India पृ0—352 ए रन्धावा . एम0एस0
21. अर्थशास्त्र 1. 11
22. द्याक्रोनोव I,छ, मेन फीचर्स ऑफ एन्शियन्ट सोसाइटी पृ0—132
23. अर्थशास्त्र III .5
24. अर्थशास्त्र III .10
25. अर्थशास्त्र III .5
26. अर्थशास्त्र III .9
27. अर्थशास्त्र III .13
28. अर्थशास्त्र III .14
29. वहीं
30. अर्थशास्त्र III .15
31. वही III .15
32. वही
33. J.F. Elliad, Ancient India पृ0—353
34. वही
35. अर्थशास्त्र, 2.134—35
36. R.C. Majumdar: The Classical account of India पृ0—257—266—224
37. वही पृ0—237, 224

राजस्थान के राजकीय संग्रहालय अलवर का संक्षिप्त इतिहास

डॉ० उमा शंकर प्रसाद*

भारतीय सभ्यता और संस्कृति बहुत प्राचीन है। इसी कारण हमारे देश की संस्कृति धरोहर अद्भुत है। अलवर रियासत 18वीं शताबदी के अन्त में स्थापित हुआ। यह राजस्थान का सिंह द्वार भी कहा जा सकता है। क्योंकि दिल्ली, आगरा, मथुरा, हरियाणा जैसे सांस्कृतिक नगरों से इसकी सीमायें लगी हुयी है। यहां इसलिये बहु–आयामी क्षेत्र यहां की संस्कृति ने प्राप्त किया। यहां 18वीं शताब्दी के अन्त से लेकर 20वीं सदी के प्रारम्भ तक 150 वर्ष कला का बहु–आयामी विकास हुआ यहां कि चित्रकला पर जयपुर शैली और मुगल शैली का प्रभाव है।

दिल्ली, जयपुर के मध्य अरावली पर्वत की श्रृखलाओं की चतुर्भुजाकार आकृति में फैला अलवर प्राकृतिक, वन सम्पदा, पशु, खनिज सम्पदा से जिले को उन्नति करने में सफल रहा यहां जिन भागों में बांस के जंगल है उन्हें ''रूधा'' कहा जाता है। पेडों से अधिक ढके भाग को ''बनी'' कहा जाता है यहां शाल की लकडी माचिस बनाने के काम आती है यहां एक विशेष प्रकार की घास होती है। जिससे गत्ता बनता है। अलवर राज्य की स्थापना राजा प्रताप सिंह ने की, प्राचीन काल हिरण्याच्छ और हिरण्यकश्यपु का यह राज्य था मध्य काल में यादव वंशी राजा तेजपाल के सरहटा के राजा सुशर्माजीत के यहां शरण ली थी। दिल्ली के समीप होने के कारण तेरवीं, चौदवीं शताब्दी में अलवर मुस्लिम राजनीति और संस्कृति से प्रभावित होने लगा।

राजकीय संग्रहालय अलवर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनाया गया यहां प्रजा वत्सल्य वंश ने अपने प्रिय राजा के साहित्य, कला व संस्कृति को सुरक्षित रखा इन राजाओं के भू–भाग में बिखरे हुये प्राचीन साहिय कला कौशल को संग्रहित कर अलवर नरेशों ने अपने कला प्रेम का परिचय दिया। सन् 1940 में इन संग्रहालय की निधि तीन विभिन्न स्थानों पर संग्रहित हो गयी पुस्तकालय तथा कला गृह, सुलहखाना, तोपखाना इनके अलग–अलग अध्यक्ष थे। श्री अलवरेन्द्र देव ने राजभवन को तीन विशाल कक्ष संग्रहालय को प्रदान किये तत्पश्चात् अलवर रियासत ने तत्कालीन प्रधानमंत्री मेजर सी0डब्ल्यू0एल0 हावे ने नवम्बर 1940 में नगर प्रासाद की सर्वोच्च मंजिल पर स्थित तीन विशाल कक्ष प्राचीन निधियों को कलात्मक रूप से संग्रहित करने के लिये दिये यहां प्राचीन निधियों को विविधा के अनुसार चार भाग में रखकर प्रदशित किया गया प्रथम विथिका मूर्ति शिल्प तथा अभिलेख द्वितीय हस्त शिल्प कला सम्बन्धी वस्तुए तृतीय चित्रकला दीर्घा चतुर्थ सास्त्रागार है संग्रहालय की इमारत के पास कचहरी लगती है। अलवर नगर चित्रकला के केन्द्र होने के साथ–साथ राजस्थानी चित्रों में एक ऐसी विशेषता रखता है। जो सौन्दर्य की दृष्टि में राजस्थानी होते हुए

*असिस्टेंट प्रोफेसर, शहीद मंगल पांडे, राजकीय महिला पी0जी0 कालेज, मेरठ

भी मुगल चित्रों जैसी राजसीय चकाचौध में हासियों मुगल शैली से प्रभाव रंग मुगल शैली की तरह चमकदार रेखा सुदृढ है फिर भी यहां अलवर शैली के चित्रकला का उत्तम उदाहरण नहीं है। राजा विनय सिंह के समय कला का अटूट भण्डार अलवर में संग्रहित हो गया और मुगल काल के पतन से तिरस्कृत कलाकारों ने यहां आश्रय पाया साथ ही कला की अनुपम निधि राजमहल में आ गयी। सुन्दर मणिकाओं के चित्र, साधुओं के चित्र, ग्रामीणों और जन साधारण के चित्र यहीं बनाये गये है। जो एक संग्रहालय में सुरक्षित है।

इन राजाओं तथा कवियों तथा दरबार में कलाकारों की कमी नहीं थी किन्तु यह भी ईरानी शैली के चितेरे थे। मुगल राजाओं ने हिन्दु कलाकारों को भी आश्रय दिया जिससे वह भारतीय कला की विशेशताएं जान सके। इन राजाओं ने संरक्षण में उनका परिचय ईरानी कलाकारों से हुई फलस्वरूप हिन्दु कलाकारों की कृतियों में भी सुन्दर नक्काशी, अन्राल, सुघड रेखांकन दिखायी देने लगा, इसका कारण था यहां दरबार में मुगल दरबार जैसा कठोर अनुशासन कलाकार पर लागू नहीं था बल्कि वह दरबार में रहकर स्वतन्त्र रूप से कार्य करते थे जिससे कला में विविधता आयी। भारतीय कला संगीत से अधिक समानता रखती है। जिसका वर्णन विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्र सूत्र में मिलता है। यहां पर संग्रहित ''राग–रागिनी'' चित्र मुगल, बूदीं, जयपुर अलवर शैली के है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

अलवर का भूगोल – आर. के. गुप्ता

अलवर म्यूजियम – सत्यप्रकाश

राजस्थान पत्रिका

अरावली पत्रिका

''गंगा सफाई अभियान; एक समीक्षात्मक मूल्यांकन''

मीनाक्षी शर्मा*

प्रो. सी. एस. सूद**

उत्तर भारत की जीवन रेखा, प्राणदायिनी जीवनपोषणी, मोक्षदायीनी गंगा चिरंतन काल से भारतीयों की आस्था का केन्द्र रही है। भगीरथ का अनुशरण करते हुए धरती पर अवतरित हो सगर पुत्रों को शाश्वत् अभिशाप मुक्त करनें वाली निर्मल गंगा एक नदी मात्र नही है, अपितु भारत के उत्तरी उर्वर मैदानों में पनपी संस्कृति का धारक स्तम्भ है।

आम जन मानस की असीम आस्था की प्रतीक गंगा लोगों की आजीविका एंव पीने योग्य जल स्त्रोत के रूप में भी अमूल्य है। भारत के साथ साथ गंगा बांग्लादेश एंव नेपाल को भी पोषित करती है। गंगोत्री ग्लेशियर से बंगाल की खाडी तक गंगा की लम्बाई 2525 किमी0 है।[1] इतनी महत्ता के बाबजूद भी गंगा नदी का जल वर्तमान समय में इतना प्रदूषित हो गया है कि आचमन योग्य भी नही रह गया है। गंगा के प्रदूषण के सन्दर्भ में हम लोग हालांकि वर्तमान समय में ही इतने जागरूक हुए हैं परन्तु राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने दशकों पहले ही गंगा प्रदूषण पर चिंता व्यक्त करते हुए यंग इण्डिया में लिखा था कि, ''मैने पवित्र गंगा और हिमालय की भव्यता को महसूस किया है, पर इन पावन स्थलों पर जिस प्रकार लोग व्यवहार करते है, वह शोचनीय है। बहुत ही दुखः के साथ मैं यहाँ दोनो प्रकार की अस्वच्छता देखता हूँ.....नैतिक और भौतिक। धर्म के नाम पर भी पवित्र धारा के साथ वही अशुद्धता देखता हुँ। अविवेकपूर्ण होकर स्त्री और पुरूष पवित्र नदी के किनारे प्राकृतिक नित्यक्रियाएँ करते है। वे धार्मिक, वैज्ञानिक और स्वच्छता के नियमों का उल्लंघन करते है। दुनिया के सभी धर्म नदी की धाराओं, उनके किनारों, सडकों, और सार्वजनिक मार्गों को प्रदूषण मुक्त रखने पर बल देते हैं। ये प्रदूषण पाप है, जो हमारी लापरवाही या आलस्य का परिणाम है। फूल, सूत दही, रंग, रसायन, चावल और अन्य कई पर्दाथ हम नदियों में फेंक देते है, जिनका पानी लोग पवित्र समझ कर पीते हैं और पवित्र कार्य में उपयोग करतें हैं। मै इन सब वस्तुओं का नदी के जल मे प्रवाह का विरोध करता हूँ। यह परम्परा सदियों से चली आ रही है। यहाँ तक कि हम नालों के गंदे पानी को भी नदियों के पवित्र जल में प्रवाहित कर देते है जो किसी जघन्य अपराध से कम नही है।"[2]

औद्योगिक अवशिष्ट, सीवेज, नगरीय प्रदूषण, अधजले शवों को बहाया जाना कृषीय प्रदूषण तथा धार्मिक कार्यो इत्यादि से दिनों दिन गंगा का जल दूषित होता जा रहा है। गंगा नदी में प्रदूषण की सबसे बडी वजह उसमें बिना शोधित किये सीवेज का बहाया जाना है। आँकडो के मुताबिक गंगा कार्य योजना से जुडे राज्यों में 12051 मिलियन लीटर सीवेज रोजाना गंगा में बहाया जाता है।[3] वैज्ञानिक जाँच के अनुसार गंगा का बायोलाजिकल ऑक्सीजन स्तर 3 डिग्री (सामान्य) से बढकर 6 डिग्री हो चुका है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के

*शोधार्थी राजनीति विज्ञान विभाग हे0न0ब0 गढवाल विश्वविद्यालय श्रीनगर (गढवाल)
**प्रोफेसर हे0न0ब0 गढवाल विश्वविद्यालय श्रीनगर (गढवाल)

अनुसार उत्तर प्रदेश की 12 प्रतिशत बीमारियों की वजह प्रदूषित गंगा जल है। यह घोर चिंतनीय है कि गंगा–जल न स्नान के योग्य रहा, न पीने के योग्य रहा और न ही सिंचाई के योग्य।[4] प्राणदायिनी गंगा की निर्मलता को बनाये रखने एंव प्रदूषण मुक्त रखने के प्रयासों के क्रम में महत्वपूर्ण योगदान सर्वोच्च न्यायलय में वर्ष 1985 में गंगा प्रदूषण के संन्दर्भ में दायर जनहित याचिका का रहा।

पर्यावरणीय अधिवक्ता एम. सी. मेहता ने सर्वोच्च न्यायलय में गंगा प्रदूषण पर जनहित याचिका दायर की जिसके परिणाम स्वरूप सर्वोच्च न्यायलय द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि जो प्रदूषण करेगा वही उसकी भरपाई का भुगतान करेगा एंव इस वाद मे सर्वोच्च न्यायलय द्वारा कुछ अन्य निर्देश भी केन्द्र सरकार को दिए गये जिनमे केन्द्र सरकार द्वारा गंगा प्रदूषण निवारण सम्बन्धी योजना का निमार्ण छः माह के अन्दर किया जाना, गंगा किनारे लाशें ना जलायी जाए और ना ही अधजले शव गंगा में बहाये जाये, प्रदूषण के लिए जिम्मेदार संस्थानों पर दायित्व सुनिश्चित किया जाए, नये उद्योग धंधों की स्थापना की अनुमति तभी प्रदान की जाए जबकि उनके द्वारा उत्पादित प्रदूषित पदार्थ के उपचार की व्यवस्था की गयी हो। सर्वोच्च न्यायलय के उपरोक्त निदेर्शों के आलेख मे वर्ष 1985 में ही केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन पर्यावरण विभाग में किया गया। केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण जिसे बाद मे राष्ट्रीय नदी संरक्षण प्राधिकरण के नाम से जाना गया के द्वारा गंगा कार्य योजना का निमार्ण किया गया।[5]

गंगा कार्य योजना का मुख्य उद्देश्य नदी में प्रदूषित पदार्थ के प्रवाह को रोककर इसके जल को स्वीकार्य स्तर तक स्वच्छ बनाना है। योजना के तहत 25(ए) वर्ग के शहरों में प्रदूषण नियंत्रण के उपाय अपनाये गये। इनमें से 6 शहर उत्तरप्रदेश मे, 4 बिहार मे तथा 15 पश्चिम बंगाल मे हैं। योजना के तहत 25 शहरों से प्रतिदिन गंगा में जाने वाले 134 करोड़ लीटर प्रदूषित पदार्थ को रोकना है साथ ही साथ खुले मे मल त्याग, अधजले और जले शवों को नदी में डालने से रोकना तथा कूड़ा कचरा उडेलने से रोकना भी सम्मिलित है।[6]

गंगा कार्य योजना की असफलता और करोड़ों रूपये खर्च होने के बाद पिछले अनुभवों से मिली शिक्षा के आधार पर भारत सरकार ने गंगा सफाई तथा संरक्षण के लिए व्यापक दृष्टिकोण विकसित करते हुए वर्ष 2008 में गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित किया तथा 2009 में गंगा नदी घाटी प्राधिकरण का गठन किया। राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन राष्ट्रीय नदी घाटी प्राधिकरण का क्रियान्वयन स्कन्ध है। राष्ट्रीय गंगा नदी घाटी प्राधिकरण ने चार विभिन्न क्षेत्रों जैसे अपशिष्ट, जल प्रबन्धन, ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन, औद्योगिक प्रदूषण एंव नदी मुख विकास के जरिये गंगा प्रदूषण की चुनौतियों से निपटने के लिए परिवर्तित व व्यापक सोच के साथ निर्मल गंगा मिशन की शुरूआत की है।[7] गंगा के उद्गम स्थल गौमुख से लेकर गंगासागर तक गंगा को साफ करने की यह परियोजना 2020 तक पूरी होनी थी। इस मिशन पर 15000 करोड़ रूपये खर्च किए जाने की व्यवस्था थी। सीवेज जल का शोधन तथा औधोगिक कचरे को गंगा में मिलने से रोकना इस मिशन का मुख्य लक्ष्य रखा गया था।

गंगा में 75 प्रतिशत प्रदूषण इसके तटों पर बसे शहरों और कस्बों तथा 25 प्रतिशत प्रदूषण औद्योगिक कचरे से होता है।[8]

गंगा को प्रदूषण मुक्त करने की राह में अन्य महत्वपूर्ण प्रयास स्पर्श गंगा अभियान था जो कि वर्ष 2009 में नदियों के प्रति युवाओं में जागरूकता लाने के लिए प्रारम्भ किया गया। यह एक शैक्षिक जागरूकता अभियान था। स्पर्श गंगा से अभिप्राय गंगा की उन सहायक नदियों, गाड़, गदेरों एंव अन्य धाराओं से है जो गंगा नदी में समाहित होती हैं और गंगा को स्पर्श कर देवप्रयाग मे गंगा का रूप धारण करती है।[9] 4.12.09 को हेमवती नन्दन बहुगणा गढ़वाल विश्वविद्यालय के राष्ट्रीय सेवा योजना प्रकोष्ठ के 40,000 छात्र–छात्राओं और स्वंयसेवी संगठनों ने एक अभिनव प्रयोग के रूप मे मुनी की रेती टिहरी गढवाल से इस अभियान को प्रारम्भ किया। बढते जल प्रदूषण को रोकने के लिए युवाओं के माध्यम से जल संकट के प्रति आमजन में संवेदनशीलता लाना एंव बढते प्रदूषण को स्वंय के माध्यम से कम करना इस अभियान का मुख्य उद्देश्य है।[10]

गंगा नदी की स्वच्छता के लिए वर्तमान समय मे सबसे बड़ी परियोजना 'नमामि गंगे' के नाम से चलायी जा रही है। 20,000 करोड़ रूपये की यह योजना अब तक के सबसे बड़े वित्तीय आवंटन वाली योजना है । पिछले अनुभवों से सीखते हुए इस कार्यक्रम मे अह्म बदलाव करते हुए गंगा नदी के किनारे बसे लोगों को स्वच्छ गंगा मिशन में शामिल करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया है, ताकि इसके बेहतर और टिकाऊ नतीजे प्राप्त हो सकें।[11] राज्यों और जमीनी स्तर के संस्थानों को भी इस योजना में शामिल किया गया है। तीन स्तरीय व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर पर कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता वाली समिति का गठन किया गया है। इसी प्रकार राज्य स्तर पर मुख्य सचिव की अध्यक्षता में समिति एंव जिला स्तर पर जिलाधिकारी की अध्यक्षता मे समिति का गठन किया गया है। इस कार्यक्रम को गति देने के लिए इसके अन्तर्गत आने वाली समस्त परियोजनाओं का वित्तीय आंवटन केन्द्र सरकार के माध्यम से किया जायेगा।[12] विधिक स्तर पर राष्ट्रीय हरित न्यायधिकरण, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एंव राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड की सम्मिलित भूमिका है।[13] 'नमामि गंगे' परियोजना के अन्तर्गत गंगा स्वच्छता के प्रयासों को तेज करते हुए दिनांक 8.7.2016 को पांच राज्यों में 1500 करोड़ से अधिक की योजनाओं का शुभारम्भ एक साथ किया गया तथा 2018 में ही गंगा को निर्मल बनाने का लक्ष्य तय किया गया है।[14]

1980 के दशक से जारी गंगा पुनरूद्धार के प्रयासों के बावजूद भी गंगा में प्रदूषण खत्म नही किया जा सका है। प्रतिदिन 188 टन सीवेज उत्तर प्रदेश से, 99.53 टन प्रतिदिन पश्चिम बंगाल से, तथा 42.8 टन सीवेज प्रतिदिन उत्तराखण्ड से सीधे गंगा मे बहाया जाता है।[14] अन्य सहायक नदियों से भी गंगा में प्रदूषण का स्तर बढता जा रहा है। गंगा सफाई के दम तोड़ते प्रयासों ने उन नीतिगत एंव क्रियात्मक कमियों की ओर ध्यान खींचा है जिनकी वजह से गंगा को निर्मल नही बनाया जा सका, जिसके प्रमुख कारणों का समीक्षात्मक विवरण निम्नलिखित है।[15]

आवंटित धनराशि का अप्रयुक्त रह जाना गंगा कार्य योजना जो कि गंगा के पुनरूद्धार की एक महत्वपूर्ण योजना के लिए दो चरणों में 20000 करोड़ रूपये की धनराशि आवंटित की गयी परन्तु मात्र 967.30 करोड़ राशि ही व्यय की जा सकी। पर्यावरण एंव वन मंत्रालय के अनुसार योजना के निर्धारित लक्ष्यों 3000 मिलियन लीटर प्रतिदिन के स्थान पर 1098 मिलियन लीटर सीवेज शोधन क्षमता का ही निमार्ण हो पाया।[15]

राज्यों का असहयोगात्मक रवैया

गंगा कार्य योजना विभिन्न राज्यों, जिनसे होकर गंगा नदी अपनी यात्रा को पूरा करती है, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड और पश्चिम बंगाल के मध्य प्रदूषण निवारण उपायों पर क्षेत्रीय सहयोग उत्पन्न ना कर पायी। जिससे कार्य योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा नीति क्रियान्वयन में एकरूपता को प्राप्त ना किया जा सका और जिसकी परिणिती नीति की असफलता रही।

नीति निमार्ण में राज्यों की असहभागिता

पदसोपानी क्रम पर आधारित राष्ट्रीय नदी संरक्षण प्राधिकरण में राज्य सरकारों को सबसे निचले क्रम में नीति क्रियान्वयन की देखरेख का कार्य सौंपा गया। नीति निमार्ण में राज्यों की उपेक्षा ने वास्तविक धरातल पर नीति क्रियान्वयन में दोष ही उत्पन्न किया।

नीति क्रियान्वयन स्तर पर देखरेख की उपेक्षा

राष्ट्रीय नदी संरक्षण प्राधिकरण द्वारा राज्य सरकारों के नीति क्रियान्वयन के कार्यों पर किसी भी प्रकार की देखरेख प्रणाली का सृजन नही किया गया। उत्तरदायित्व के अभाव में स्थानीय स्तर पर लक्ष्यों केा वास्तविकता में प्राप्त नही किया जा सका।

जनसहभागिता की उपेक्षा

जनसहभागिता जो कि किसी भी योजना की सफलता की पूर्व शर्त होती है, कि उपेक्षा भी गंगा कार्य योजना की असफलता का एक महत्वपूर्ण कारक बनी। केन्द्र सरकार द्वारा स्थानीय सरकारों की जनसहभागिता को प्रोत्साहित करने के लिए सहयेाग प्रदान नही किया गया। इसी प्रकार स्वंयसेवी संगठनों जिनसे उपेक्षा की गई थी कि वे घाटों की सफाई तथा देखरेख का जिम्मा लेगें, को भी वित्तीय सहयोग प्रदान नही किया गया। लक्ष्य उन्नमुखी नौकरशाही, लक्ष्य प्राप्ति के महत्वपूर्ण माध्यम जनसहयोग के महत्व को समझ नही पायी।

सहायक नदियों की सफाई की उपेक्षा

गंगा कार्य योजना के शुरूआती वर्षों में सहायक नदियों को इसमे शामिल नही किया गया। गंगा एक मात्र नदी ना होकर एक सम्पूर्ण नदी तन्त्र है। सहायक नदी जो कि गंगा नदी के जल का लगभग 50 प्रतिशत से भी ज्यादा की सफाई की उपेक्षा ने गंगा सफाई के प्रयासों को पूर्ण करने मे बाधा उत्पन्न की। शुरूआती वर्षों की कमियों ने गंगा कार्य योजना के लक्ष्यों की प्राप्ति में समस्याऐं उत्पन्न की।

अन्य महत्वपूर्ण कारक

- गंगा कार्य योजना अपने तरह का प्रथम कार्यक्रम होने के कारण केन्द्रीय और राज्य स्तर पर अनुभव की कमी ने योजना की असफलता मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।
- प्रदूषण केन्द्रों के निमार्ण के लिए भूमि अधिग्रहण में आयी देरी ने परियोजना के खर्चों को बढाया तथा समय का दुरूपयोग किया। न्यायलयों में दायर याचिकाओं को निपटान में देरी ने भी रूकावट पैदा की।
- गंगा कार्य योजना पर नियंत्रक एंव महालेखा परीक्षक ने अपनी रिर्पोट में आवंटित बजट के अप्रयुक्त रह जाने की बात कही साथ ही साथ गंगा के किनारे रहने वाले लोगों, समूह आधारित संगठनों, स्वंयसेवी संगठनों के योगदान को महत्वपूर्ण माना परन्तु राज्य सरकारों द्वारा इस सलाह पर ध्यान नही दिया गया।[16]

वर्ष 2014 में घोषित नमामि गंगे परियोजना के सन्दर्भ में दैनिक समाचार पत्र अमर उजाला की रिर्पोट के अनुसार वर्ष 2015–16 के बजट वर्ष मे राज्य पूरे बजट का प्रयोग नहीं कर पाये। प्रान्त, मार्च माह तक नमामि गंगे वनीकरण परियोजना की नोडल एजेंसी वन अनुसंधान संस्थान को वनीकरण की वार्षिक कार्ययोजना बना कर नही दे पाये। इस देरी को देखते हुए माना जा रहा है कि इस वर्ष गंगा बेसिन में वनीकरण के लिए मिलने वाले बजट की एक चौथाई रकम ही प्रान्त खर्च कर पायेंगे।[17]

गंगा सफाई अभियान के प्रयासों पर असंतुष्टि जताते हुए सर्वोच्च न्यायलय ने सरकार से प्रश्न किया कि गंगा कब और किस तरीके से साफ होगी साथ ही गंगा सफाई की तय समय सीमा के बारे में सर्वोच्च न्यायलय ने प्रश्न किया। वर्तमान समय में गंगा को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए महत्वकांक्षी योजना 'नमामि गंगे' एक व्यापक येाजना है जिसकी सफलता का आंकलन कुछ समय पश्चात ही सम्भव हो पायेगा। गंगा प्रदूषण निवारण बड़ा एंव कठिन कार्य है, जिसे पूरा करने के लिए निरन्तर प्रयास आवश्यक है।

सदियों से धरती एंव धरती पुत्रों को सिचिंत करती आ रही कल्याणकारी गंगा के पुनरूद्धार के लिए दृढ राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है, जो न केवल नीतियाँ बनाये अपितु उन नई नीतियों से वास्तविक लाभ भी सुनिश्चित करे। नौकरशाहों की भूमिका जो कि नीति निमार्ण से लेकर क्रियान्वयन में प्रमुखता से जुड़ी है, के लिए भी कार्यकुशलता एंव प्रशासकीय क्षमता का प्रयोग किया जाना आवश्यक है, ताकि गंगा स्वच्छता से जुड़े कार्यक्रमों को नौकरशाही जैसी बुराईयों से मुक्त रखा जा सके। गंगा की अन्य सहायक नदियों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि सिर्फ गंगा की मुख्य धारा मे सफाई के परिणाम कभी भी वास्तविक ना होंगे जब तक सहायक नदियां प्रदूषित रहेगी।

प्रदूषण के बोझ से दबी जैव विविधता का स्त्रोत गंगा नदी को स्वच्छ करने की दिशा मे अब तक सरकार द्वारा काफी प्रयास किये गये। कई योजनाऐं बनी व लागू की गयी, जिन पर धन आवंटन करने में किसी प्रकार की कोताही नही बरती गयी परन्तु नतीजों से

सकारात्मकता दूर ही रही। एक समय था जब कहा जाता था कि गंगा जल वर्षो तक खराब नही होता है। हरिद्वार एंव इससे ऊपर से लिए गये गंगा जल में यह विशिष्ट अभिलक्षण आज भी है परन्तु सम्पूर्ण गंगा के लिए यह सत्य अब भूतकाल की बात हो गयी है। आज गंगा नदी की गणना विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में किया जा रहा है। आज गंगा जल में घातक रसायनों, जीवाणुओं, रोगाणुओं, कभी ना अपक्षय होने वाले पदार्थों जैसे प्लास्टर ऑफ पेरिस , पॉलीथीन, इत्यादि सहित वह सब कुछ है जो मानव, जलचरों तथा थलचरों के स्वास्थ्य तथा जीवित रहने की दशाओं के अनुरूप नही है।

गंगा की अविरलता को बनाये रखना अति आवश्यक है। इसके बिना गंगा की पवित्रता को बनाये रखने में समस्याएं उत्पन्न होंगी, घटते जलस्तर से गंगा नदी के अस्तित्व पर ही संकट उत्पन्न हो सकता है।

प्रदूषण से सम्बन्धित कानूनों को अधिक स्पष्ट व कठोर बनाये जाने की आवश्यकता तथा प्रदूषण करने वाली ईकाईयों पर पर्यावरण प्रदूषण का उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है।

अन्ततः सबसे महत्वपूर्ण आम जनता को जागरूक करके एंव सरकारी कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करके ही गंगा को प्रदूषण मुक्त करने के दायित्व को पूरा किया जा सकता है। आज गंगा को बचाने के लिए भगीरथ प्रयास की जरूरत है परन्तु इस बार एक नहीं अपितु कई भगीरथ चाहिए जो फिर से गंगा को शस्य–श्यामला बना सकें।

सन्दर्भ –सूची

1. www.nisc.gov.in, 20-4-16,1.05 pm
2. गांधी, महात्मा, यंग इण्डिया, 1-10-1929
3. हिन्दुस्तान (समाचार पत्र), देहरादून, 1-4-16
4. www.wikipedia.org, 25-04-16,2.05 PM
5. सीविल सर्विसेज कानिकल, अगस्त 014
6. तदैव, पृष्ठ 12
7. www.nmcg.nic.in , 20.4.16, 12.00 PM
8. विनसर, उत्तराखण्ड ईयर बुक, 2016, पृष्ठ 7
9. तदैव, पृष्ठ 8
10. तदैव, पृष्ठ 8
11. www.pmindia.gov.in , 11.7.16, 3PM
12. प्रतियोगिता दपर्ण (पत्रिका), मई, 2016 पृष्ठ 1

13. दैनिक जागरण (समाचार पत्र), देहरादून, -7-16

14. हिन्दूस्तान (समाचार पत्र), देहरादून, 1-4-16

15. www.dailymail.co.uk/India, 21.4.16, 10.00 am

16. The Comptroller and Audition General of India (CAG) , Report no.54 of the CAG on the union Government : Ganga Action Plan; Government of India: New Delhi, India, 2000.

17. अमर उजाला (समाचार पत्र), देहरादून, -3-16

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य की सामाजिक पृष्ठभूमि

दिनेश राम*

हिन्दी साहित्य के प्रगतिवादी कवियों में केदार नाथ जी अग्रवाल प्रकृति प्रेम और अपनी आंचलिक कविताओं के कारण सदा स्मरण किये जाते रहेंगे। कवि केदारनाथ ने अपने कवि जीवन का प्रारम्भ प्रेम और श्रृंगार के रूमानी कवि के रूप में किया था और मध्य में उनका संघर्ष देशोत्थान तथा अमीर गरीब की खाई को पाटने में जुट गया। उनका यह मानवीय व्यामोह निरन्तर अभिवृद्ध होता गया है।

कवि केदारनाथ जी के जीवन की बाल्य से इस अवस्था तक पहुँचने की कहानी भी एक मध्यम वर्गीय परिवार में उत्पन्न बालक की जीवन गाथा है। कवि केदारनाथ जी अपने आपको आजीवन सादगी में संवारे रहे हैं।

जन्म, निवास और शिक्षा

बांदा जिलान्तर्गत उत्तर प्रदेश कमासिन नाम के गाँव में कवि केदार नाथ जी का जन्म सन् 01.04.1911 ई. को हुआ था। हिन्दी के शुभ्र धरातल को अपनी साहित्यिक साधना का बल प्रदान करने वाले दो साहित्यकारों के जन्म स्थल का गौरव इस गाँव को प्राप्त है। डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' और कवि केदार नाथ अग्रवाल ने अपनी चेतना से इस गाँव की धरती के साथ समूचे हिन्दी जगत को गौरवान्वित किया है। कवि केदारनाथ अग्रवाल का अध्ययन ग्राम ही की प्राथमिक पाठशाला से प्रारम्भ हुआ। औपचारिक शिक्षा के साथ–साथ कवि के मन पर गाँव के अनौपचारिक शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी0ए0 करने के बाद एल0एल0बी0, डी0ए0वी0 कॉलेज कानपुर से की। इनकी अनुवाद सहित 29 कृतियाँ प्रकाशित है इनका निधन 22 जून सन् 2000 को हुआ था।

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य की सामाजिक पृष्ठभूमि

कवि केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवादी काव्य के क्षेत्र के सामाजिक अभिव्यक्तियों के अग्रणी कवि रहे हैं। इनका काव्य–साहित्य सामाजिक चेतना की अनूठी अभिव्यक्तियों, सामाजिक प्रयोजनों एवं समाज सापेक्ष अन्तरंग मूल्यों के प्रतिपादन में हिन्दी साहित्य में अपना वैशिष्ट्य रखता है। आज के साहित्य के नकारात्मक नैराश्यपूर्ण वातावरण में केदारनाथ का स्तर एक ऐसे सजग मध्य वर्ग बुद्धिजीवी का स्वर है, जो कर्मठता, श्रमशीलता एवं किसान और मजदूर की संघर्षप्रियता तथा जीवंतता से कभी हार नहीं मानता। मध्यवर्ग की जाति–पाँति, धर्म गोत्र और वर्ग विभाजित संस्कृति की दारुण दशा तथा अर्थ चेतना और उसके भटकाव से बचने की प्रेरणा देता हुआ सामाजिक जीवन के प्रत्येक स्तर पर दृष्टि रखता है तथा अपनी सजग चेतन काव्यानुभूति से संवेदना के प्रत्येक कम्पन को मूर्तरूप देता

*शोध छात्र, लोहाघाट, चम्पावत, उत्तराखण्ड

है।

कवि केदारनाथ के काव्य में उनकी सामाजिक चेतना और अभिव्यक्ति के प्रति कवि नागार्जुन ने स्वयं लिखा है।

जनगण–मन के जागृत शिल्पी,
तुम धरती के पुत्र, गगन के तुम जामाता,
नक्षत्रों के स्वजन–कुटुम्बी, सगे बन्धु तुम
नद–नदियों के
झरी ऋचा पर त्रहता तुम्हारे सबल कंट से
स्वर लहरी पर थिरक रही है, युग की गंगा।[1]

बुन्देलखण्ड का उबड़–खाबड़, पथरीला प्रदेश चित्रकूट के यात्री लोहा पीटने वाले लोग अपने पेट में खोये हुए हल, सिपाही के डंडे, कर्ज और आदमी का फर्ज, आदमी का बेटा, जनमत का जीवन, आर्डिमस अमीनाबाद, मूलगंज मजदूर, किसान, शरह के छोकरे, चैतू चन्दे, रनिया दीन कुनरा, धरती अभियुक्त और चिट्ठियाँ सभी कुछ तो कवि केदारनाथ की सामाजिक अनुभूतियों को निरन्तर अधोन्मुख करते रहे है। इनके साहित्य का उद्देश्य ही था– वर्ग संघर्ष के सामाजिक मर्म को उघारते जाना, बस इसी को पूरा करने में एक अजब खामोश एवं आन के साथ इन्होंने अपने आप को पूरी तरह खपा दिया। आज का नवजवान गरीब, भूख, किसान और संघर्षशील मजदूर केदार के छन्द प्रवाह में अपना हठ अपना दर्द अपना ट्रेजडी और अपनी दुखों को

छीजने वाली अदम्य आशा को लेकर हमारे सामने बोलता है। इसका साक्ष्य केदारनाथ जी के काव्य युग की गंगा, गुलमेहंदी एवं फूल नहीं रंग बोलते है, में अन्तर भुक्त है। व्यक्ति की कल्पना शक्ति को इन्होंने शक्ति के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। साधारण जीवन के चित्र यथा मजदूर, किसान एवं निर्धन आदि का अंकन बहुत ही सजीव बन पड़ा है। 'चन्दू–चैत' शीर्षक कविताओं के सरल स्वाभाविक जीवन के मार्मिक प्रसंद उद्धत हुए है। गाँव, नगर, धनी, निर्धन, सामंत, किसान आदि के बीच चले आ रहे अन्तर्द्वन्द्वको कवि ने यथार्थ के धरातल पर मूल्यांकित किया है।

शहर के छोकड़े
मैले, फटे, बदबूदार वस्त्र पहने
बिना तेल कंघी के करवे उलझाए बाल
नंगे पैर
नंगे सिर
कीचड़ लपेटे तन
गलियों में घूमते है।
खाली जेब।[2]

कवि केदारनाथ अग्रवाल धरती और किसान के कवि हैं। सैद्धान्तिक अतिवाद से मुक्त युग और समाज की अपेक्षाओं के प्रति उन्मुक्त, स्वस्थ एवं यथार्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत करना कवि का काव्यगत लक्ष्य रहा है। लोक और आलोक काव्य संग्रह में भी कवि केदारनाथ ने सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने वाली युगीन जीवन से संबधित सामाजिक अभिव्यक्ति की है।

हम स्पष्ट हैं,
श्रम शासन के
मुद मंगल के उत्पादन के
हम दृष्टा हितवादी। 3

सार्वजनिक जीवन की प्राप्ति और उसकी अभिव्यक्ति केदारनाथ के काव्य की छाया है। कवि भी आखिरकार समाज का ही तो एक अंग है। जो भोगता है, वह अकेले का कैसे होगा। समाज का वह सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी होता है। अतः वह समान दर्द को अनुभव करते हुए समाज के तमाम प्राणियों की व्यथा को स्वर देता है। वर्तमान जीवन पीड़ा, प्रताड़ना और घुटन से आवृत्त इनके आग्रह के साथ मानव मूल्य की प्रतिष्ठा और जीवन औचित्य का बोध कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य का प्रमुख स्वर है। कवि केदारनाथ अग्रवाल समाज के अभिन्न अवयव है। इसलिए वह समाज के साथ सौन्दर्य और कालुष्य दोनों को भोगते है। उनकी दृष्टि में दोनों सत्य है किन्तु कलुष उसे अपने जीवनभिव्यक्ति की अत्याधिक प्रेरणा देता है। केदारनाथ ने सामाजिक जटिलताओं और संघर्षपूर्ण स्थितियों का समाधान भावुकता की जगह चिन्तन–मनन से किया है। कवि ने सामाजिक परिवेश के यथार्थ को अनुभव के स्तर पर भोगकर अभिव्यक्त किया है। सत्य के अनुभव के साथ–साथ बौद्धिक दृष्टि से उसका मूल्यांकन भी किया है। इसीलिए जहाँ समाज में बनते बिगड़ते मूल्यों का अंकन है वहीं सम्बन्धों और आकांक्षाओं के द्वन्द्वकी सूक्ष्म पकड़ भी है।

यदि तुम जीवन के सागर की छापामर लहर हो कोई,
तब तुम अपने जीवित जल से
आड़े आये हुए किसी भी प्रतिरोधी
को टक्कर देकर
हटा सकोगे और लक्ष्य तक पहुँच सकोगे
अपने मन के
वरना तुमको ध्वंस करेगा वह प्रतिरोधी
अपने बल से। [4]

वस्तुतः केदारनाथ अग्रवाल ने देश की बहुसंख्यक जनता के जीवन को परखा है। श्रमिकों, पीड़ितो और किसानों को काव्य में विशिष्ट स्थान देकर युगीन वैषम्य और आस्था के काव्य भरे स्वरों को मुखरता दी है।

केदारनाथ के काव्य में ग्राम एवं देश की समस्याओं तथा नेताओं के आडम्बरों को भी

अच्छी अभिव्यक्ति मिली है। रचनाओं में हल्के व्यंग के साथ जनता की पीड़ाओं के विषाद युक्त चित्र मिलते हैं। इसका कारण केदारनाथ जी के परिपार्श्व का वातावरण का भी रहा है। क्योंकि केदारनाथ के चारों ओर था रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से जकड़ा निरन्तर ठगा जाता शोषित दलित किसान मुकदमों के चक्कर में तबाह, दूसरी ओर अर्द्ध सामन्ती जमींदारी सभ्यता थी। उसका खोखला आडम्बर और पाखण्ड और क्रूर दाँव–पेच और सामन्ती शासन उसके नवीन विचारों और आन्दोलनों का निरन्तर दमन। इसी दौर में केदार का अपना खास व्यक्तित्व पुष्ट हुआ और निखरा, इसीलिए केदारनाथ जी के काव्य में सामाजिक चेतना के विविध रूप मिलते हैं।

केदार की कविताओं का मर्म इन सब नुक्कड़ों को तरासता चलता है। वह मर्म जैसे चमकती हुई आँखे रखता हो। स्पष्ट गम्भीर और सहज केदार उसी को खोजता है किसान और मजदूर के हाथ और रंग–पुटकों को रगड़ते हुए से लगते है। और अपना वेग और सहज शक्ति बरबस ही हमें महसूस कराते है। उनके यथार्थ वातावरण की गृहणी उनके किसान, युवक और युवती और खेतों की सजीव हरियाली और भोली–भाली रंगीनी परिचय हमेशा के लिए हमसे दृढ़ कर लेती है। सचमुच केदारनाथ व्यापक संवेदनाओं के कवि हैं।

व्यक्ति, समाज, नगर गाँव, खेतहर, सत–असत, अपना–पराया, जड़ चेतन सब कुछ उनके कवि मन को आबद्ध करता है। क्योंकि पीछे जीवन के समग्र चिन्तन का भाव अन्तरमुक्त है।

केदारनाथ के काव्य में सामाजिक स्वरूप एवं अवधारणाएं

केदारनाथ के काव्य में उनकी सामाजिक अभिव्यक्ति, स्वरूप एवं अवधारणाओं को समझने के लिए हम उन्हीं के कथन को प्रश्रय देते है। उन्होंने स्वयं अभिव्यक्त किया है कि मैं शुरू से जग और जीवन की विविधता और बहुलता को सही, दृष्टिकोणों से बूझता और कूदता रहा हूँ। मुझे ऐसा करने में आत्मपरक एवं वस्तु परक संघर्ष स्वीकारना पड़ा है और अब भी करता रहता हूँ। मुझे गाँव में रहकर अपने देश की ऋतुओं का पूरा परिचय मिल चुका था। मैं धूप में नंग्न पाँव दौड़कर धूप को पी लेता था। बरसात में बरसते पानी में भीगकर में भीतर तक बादल, बिजली की क्रीड़ाएँ भर लेता था। देहात का जन जीवन मेरे सम्बन्ध और सम्पर्क का जीवन था।[5]

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सामाजिक अवधारणाओं के विभिन्न रूपों पर प्रस्तुत रचना सत्यशः प्रकाश डालती है जो बाँदा जाने के बाद कवि नागार्जुन ने कहा था–

केन कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो।
कालिन्जर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो।
ग्रामबधू की दबी हुई, कजरारी चितवन वह भी तुम हो।
कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहे, वह भी तुम हो।
खड़ी सुनहली फसलों की छवि छटा निराली, वह भी तुम हो।

लाठी लेकर काल रात्रि में करता जो रखवाली वह भी तुम हो।[6]

जनवादी साहित्य और संस्कृति में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले कवि केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी साहित्य की काव्यधारा में युगीन बोध, नई दिशाएं, प्रेरणाएँ, आस्था एवं विश्वास के साथ समाज की अपेक्षाओं के प्रति स्वस्थ्य दृष्टिकोण देने वाले श्रेष्ठ कवि है।[7]

हट्टे–कट्टे हाड़ों वाले

चौड़ी–चकली काठी वाले

थोड़ी खेती–बाड़ी रक्खे

केवल खाते–पीते जीते

दीपक की छोटी बाती की,

मन्दी उजियारी के नीचे

घंटों आल्हा सुनते–सुनते

सो जाते हैं मुर्दा जैसे।[8]

केदारनाथ जी की यह गहरी सामाजिक अवधारणा का ही उदाहरण है कि साधारण जीवन के इस हल्के–फुल्के चित्रों में ऐसा अर्थ गाम्भीर्य भरा हुआ है। मार्मिक अनुभूतियों की ऐसी सहज अभिव्यक्ति जो सीधे पाठक के मर्म को स्पर्श करती है –वह केदार के काव्य मे भरी पड़ी है।

संदर्भ –सूची

1. ओ जन मन के सजग तिरेते – नागार्जुन
2. गुल मेहंदी – केदारनाथ अग्रवाल– पृ0 45
3. लोक और आलोक, हम शीर्षक – केदारनाथ अग्रवाल पृ0 20
4. फूल नहीं रंग बोलते है – केदारनाथ अग्रवाल पृ0 64
5. आधुनिक कवि भाग 16 – केदारनाथ अग्रवाल पृ0 43
6. बाँदा जाने के बाद शीर्षक रचना – नागार्जुन
7. आस्था और सौन्दर्य के कवि – बंकिम चन्द्र पृ0 25
8. फूल नहीं रंग बोलते है – केदारनाथ अग्रवाल पृ0 73

ग्वालियर सम्भाग में राष्ट्रीय चेतना का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन 1919–1947

डॉ. अलका सिंह कुशवाह*

प्रस्तावना

किसी भी संवेदनशील व्यक्ति का इतिहास के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक ही है फिर इतिहास की छात्रा होने के कारण यह आकर्षण बढ़ जाता है तथा और भी उत्तरदायित्वपूर्ण हो जाता है। स्वतंत्रता के पूर्व ग्वालियर राज्य भारत की विशालतम देशी रियासतों में एक था जिसका क्षेत्रफल लगभग ढाई हजार वर्गमील था। यह शोध सिंधिया शासकों के इसी क्षेत्रफल के अन्तर्गत आता है। सिंधिया शासकों ने राज्य में एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना तथा राज्य के आर्थिक विकास को सर्वोपरि रखकर तत्कालीन परिस्थितियों के साथ समझौते किए। शोध का कार्यकाल माधवराव प्रथम के समय से प्रारम्भ होता है तथा जीवाजी राव के समय में समाप्त होता है।

भारत में बीसवी शताब्दी के अष्टम दशक में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास पर विभिन्न शोध हुए तथा कालांतर में क्षेत्रीय स्तर पर भारतीय आंदोलन का अध्ययन किया जाने लगा। परन्तु भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के मुल कारक ''राष्ट्रीय चेतना'' पर ऐतिहासिक दृढिर से कोई महत्वपूर्ण शोध प्रकाश में नहीं आया। विशेषकर क्षेत्रीय स्तर पर तो ''राष्ट्रीय चेतना'' का न तो काई सवेक्षण अथवा ऐतिहासिक अध्ययन देखने को मिलता। प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षणात्मक अध्ययन पद्धति द्वारा बिन्दुओं को प्रकाश में लाने का प्रयास है, जो इस क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना के लिए उत्तरदायी थे तथा वे क्षेत्र जिन्होने ग्वालियर संभाग में राष्ट्रीय चेतना को अवरूद्ध करने अथवा विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रस्तुत शोध साक्षात्कार सम्पर्क एवं सर्वेक्षणात्मक प्राविधि पर आधिारित है।

विषय वस्तु

1789 की फ्रान्स की क्रान्ति के बाद 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक राष्ट्रीय चेतना का सम्पूर्ण यूरोप में तीव्र विकास राष्ट्रीय भारत में राष्ट्रीय चेतना मौलिक एकता एवं स्वशासनाधिकार के सिद्धांत पर आधारित थी। यूरोप के अन्य देशें की भांति भारत में राष्ट्रीय चेतना को भी पाश्चात्य विचारों से प्रभावित उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सांसतिक पुर्नजागरण से सर्वाधिक प्रेरणा मिली। अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा होने वाले शिक्षा प्रचार ने भारतवासियों के लिए पाश्चात्य साहित्य एवं इतिहास का अध्ययन सुगम कर दिया जिसके कारण उन्हें लोकतंत्र राष्ट्रीयताबाद तथा क्रान्ति की पश्चिमी विचारधाराओं से संपर्क में आने का अवसर मिला। इन्ही दिनों राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री रामष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द जैसे अग्रदूतों द्वारा प्रेरित सांसतिक पुनरूत्थान के आंदोलन ने भारत वासियों में नूतन आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव का संचार किया। इस प्रकार भारत में

*(इतिहास विभाग) शा.एम.जे.एस.पी.जी. महाविद्यालय भिण्ड

राष्ट्रीय चेतना का विकास तीव्र हुआ यद्यपि ग्वालियर संभाग का समूचा क्षेत्र सिंधिया शासकों के अधीन था और सिंधिया शासक अपनी राजनीतिक विवशता के कारण अंग्रेजों के साथ मित्रतापूर्ण आचरण करने के लिए बाध्य थे। अतः ग्वालियर सम्भाग में राष्ट्रीय चेतना का प्रारम्भिक विकास अत्यंत मंद रहा।

भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास के परिणाम स्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। कांग्रेस ने अपने अभिर्भाव के समय से ही विशुद्ध राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया। फलतः यह संस्था भारत की प्रतिनिधि राजनीतिक संस्था बन गई इसके प्रारम्भिक नेताओं दादा भाई, नारोजी, तिलक, सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, फिरोज शाह मेहता, गोपाल ष्ण गोखले आदि ने भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1857 के स्वतांत्य समर ने भारत वासियों को यह स्पष्ट कर दिया था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध शसस्त्र क्रांति सफल नही हो सकती, अतः अपने शैशवकाल में कांग्रेस ने नरमदल के हाथों में रहकर आवेदन प्रार्थना एवं प्रतिवाद की संवैधानिक नीति अपनाई और ब्रिटिश सरकार से सुधारों की मांग करने का ही पथ ग्रहण किया। फलस्वरूप 1892 ई. में भारत परिषद के संगठनात्मक स्वरूप में सुधार किया गया और उनमें भारतवासियों का अधिक स्थान दिया गया।

भारत में संवैधानिक सुधारों के कारण राष्ट्रीय चेतना की गतिमंद हुई। इसी बीच लार्डकर्जन वायसराय बनकर भारत आया वह एक अत्याधिक साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का व्यक्ति था अतः 1905 ई. में उसने धर्म के आधार पर बंगाल को दो भागों में विभक्त कर दिया। इस कूट चाल का देशव्यापी विरोध हुआ।

वंग मंग की नीति ने देश में ब्रिटिश विरोधी भावना को तीब्र बना दिया। इसी भावना ने अंततः ''स्वदेशी आंदोलन'' को जन्म दिया। इसी लहर में भारतीय मंच पर उग्र विचार धारा के कुछ ऐसे राजनीतिज्ञों का उद्‌भद हुआ जिन्होने भारत को अंग्रेजों के शासन से सर्वथा मुक्त करने की आवाज बुलंद की। 1907 में सूरत में होने वाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में कांग्रेस का वैचारिक विभाजन हो गया लोकमान्य तिलक ने भारत के लिए पूर्ण स्वराज की मॉग पेश की थी उन्होने ''केसरी'' और ''मराठा'' नायक अपने समाचार पत्रों में निर्भीकता पूर्वक ब्रिटिश राज्य के अत्याचारों का पर्दाफाश करके स्वावधीनता के लिए जोरदार आन्दोलन के लिए राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। फलस्वरूप छः वर्ष का कठिन दण्ड पाकर उन्हें वर्मा के मांडले कारागार में रहना पड़ा। वहीं उन्होने अपनी अमर ति ''गीता रहस्य'' की रचना की 1920 में उनका देहान्त हुआ। तब तक स्वाधीनता आंदोलन इतना जोर पकड़ चुका था कि अब किसी के भी दबाये नहीं दब सकता था।

ग्वालियर में यद्यपि 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय से ही राष्ट्रीय चेतना का विकास प्रारम्भ हो गया था। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के कारण राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप भिन्न रहा परन्तु तिलक के समाचार पत्रों एवं महाराष्ट्र के धार्मिक सामाजिक आंदोलनों के कारण ग्वालियर में राष्ट्रीय चेतना का पुर्नागमन हुआ। और मध्य ग्वालियर में

गणेश उत्सव के माध्यम से राष्ट्रवादी गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ।

उधर ब्रिटिश सरकार की भारतवासियों ने फूट डालने की नीति भी निरंतर जारी थी। इसी नीति के अधीन वाइसराय लार्ड मिण्टो से मुस्लिम नेताओं को अलग आमंत्रित करके उन्हें ऐसा मंत्र दिया जिससे 1906 ई. में कांग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव को कम करने के लिए मुस्लिम लीग की स्थापना की गई। यह एक ऐसा विषवृक्ष था जिसके फलस्वरूप ही आखिर चालीस साल बाद भारत का बंटवारा हुआ।

ब्रिटिश सरकार एक ओर जहां गरमदल वालों का दमन कर रही थी वहीं दूसरी ओर नरमदल के प्रति फुसलाने की नीति। इस नीति के अधीन नरमदल के नता श्री गोपाल ष्ण गोखले को मंत्रणा के लिए इंग्लैण्ड बुलाया गया और आखिर 1909 में मार्ले–मिण्टों सुधार कदम उठाया गया। जिसके अनुसार बाइसराय की कौंसिल के भारतीय सदस्यों की संख्या में बृद्धि की गई और साम्प्रदायिकता के आधार पर मुसलमानों को प्रथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया पर इन सुधारों से भारतीय जनमानस संतुष्ट नहीं हो सकता था।

यद्यपि 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीय सैनिक अंग्रेजों के पक्ष में लड़े और स्वयं महात्मा गॉधी ने भी इस युद्ध में अंग्रेजों के पक्ष का समर्थन किया। तथापि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय आंकाक्षाओं की पूर्ति की दिशा में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया। इन्हीं दिनों तिलक ने कारावास से मुक्त होते ही डॉ. एनी बीसेन्ट के साथ मिलकर होमरूल आंदोलन शुरू किया सन् 1916 में लखनऊ में होने वाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में वैचारिक एक्य स्थापित हो गया तथा मुस्लिम लीग और भारतीय राष्ट्रीय चेतना को नया स्वरूप प्रदान किया।

फलतः 1917 में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में यह घोषणा की कि प्रशासन के विभागों में भारत वासियों को अधिकाधिक हिस्सा दिया जावेगा और भारत में स्वायत्त संस्थाओं का क्रमिक विकास किया जावेगा ताकि कालान्तर में उत्तरदायित्व पूर्ण सरकार की स्थापना हो सके।

उपर्युक्त नीति के तारतम्य में 1919 में माण्टफोर्ड सुधारों की घोषणा की गई परन्तु इससे भारतीय जनमानस संतुष्ट नहीं हो सका क्योंकि इन सुधारों ने स्वराज की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया थ। भारतीय जनता का क्षौभ एवं असंतोष निरंतर बढ़ता ही गया। और उसे कुचलने के लिए सरकार का दयनच भी अविराम गति से चलता रहा। इसी दौर में अत्याचार पूर्ण रोलेट एक्ट पास किया गया जिससे सारा देश विदेशी सत्ताधारियों के प्रति रोष की भावना से भर उठा। गॉधी जी के भारतीय रानीति में आगमन से पूर्ण ग्वालियर संभाग के नगरीय अंचल में राष्ट्रवादी युवकों ने उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के युवकों के साथ सम्पर्क रखकर ग्वालियर में राष्ट्रवादी गतिविधियॉ संचालित करने का प्रयास किया।

ग्वालियर संभाग के गुना जिले के मुंगावली ग्राम के गणेश शंकर विद्यार्थी ने ग्वालियर राज्य की परिस्थितियों के कारण कानपुर जाकर राष्ट्रवादी गतिविधियों को दृष्टिगत रखते हुए प्रताप नायक समाचार पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन प्रारम्भ किया।

जिला शिवपुरी के पोहरी के गोपालष्ण पौराणिक ने महात्मा गॉधी के सृजनात्मक कार्यक्रमों को जन–जन तक पहुॅचाने के उद्देश्य से एक पुस्तक निकाली।

1914 में दतिया रियासत के साथ अंग्रेजों की संधि हो जाने के कारण दतिया में राष्ट्रीय चेतना का मार्ग अवरूद्ध हो गया और स्थानीय जनता को सर्वाधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। इस साम्राज्यवाद और सामंतवाद के अर्न्तद्वन्द्वके विरूद्ध दतिया के प्रवुद्ध लोगों ने एक आंदोलन चलाने का निर्णय किया। इस निर्णय का समाचार बुन्देलखण्ड तथा भिण्ड पहुंचा और इस समाचार ने एक आंदोलन का स्वरूप ले लिया।

1920 में नागपुर में हुए कांग्रेस अधिवेशन ने देश को एक नया उत्साह नयी प्रेरणा और नयी शिक्षा दी। इसके बाद ही नवीन चेतना रियासतों में देशी राज्य लोक परिषद का गठन होने लगा। 1921 में महात्मा गॉधी के प्रभाव से असहयोग आन्दोलन ने राष्ट्रीयता के प्रति और भी गहरी निष्ठा जन मानस में पैदा की।

देश की स्वातन्त्रय हवा का स्पर्श दतियों को भी हुआ। राजाओं जागीरदारों तथा ब्रिटिश सरकार के पोलिटकल एजेन्ट के तिहरे शासन में जीवन यापन करने वाली दतिया की जनता ने भी चेतना की अंगड़ाई ली और 1930 के आसपास दीवान कालका प्रसाद तथा श्री रामचरण लाल वर्मा इनके अग्रदूत के रूप में सामने आये। दमन चक्र के परिणाम स्वरूप ये और इनके साथी झॉसी चले गए, जहॉ इन्होने ''दतिया स्टेट कॉग्रेस'' की स्थापना की।

द्वितीय महायुद्ध के समकालीन दतिया की जागृति के इतिहास में ''देशी राज्य'' के सम्पादक पं. लखपतराय शर्मा दतिया रिलीफ कमेटी के सभापति, डॉ. रणपति सिंह परिहार, श्री रघुवर दयाल दबकर और डॉ. श्रीपत सिंह का महत्वपूर्ण स्थान था। इन्होने पर्चे छपवाकर व इन्हें बटवाकर जनमानस तैयार किया। पर्चे बांटने का काम मुख्यतः प्रियाशरण वर्मा करते रहे।

इन्हीं दिनों कांग्रेस के केन्द्रीय संगठन में रियासतों में प्रजामंडल स्थापित करने का दृढ़ संकल्प लिया और दतिया स्टेट कांग्रेस ने प्रजामंडल का स्वरूप स्वीकार किया। राष्ट्रीय चेतना बढ़ाने में दीवान नाहर सिंह राधालाल चौधरी साधू राम खंजाची, अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद, सदाशिवराव मालापुरकर, भगवान दास माहौर आदि क्रान्तिकारियों ने बड़ा योगदान दिया।

1920 में एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई यह घटना इस प्रकार है कि राधा लाल चौधरी ने सामंतशाही की प्रतीक पगड़ी त्याग कर महात्मा गॉधी की टोपी ग्रहण की जिसके परिणामस्वरूप उन्हें रियासत छोड़ने का आदेश मिला। इस घटना ने ग्वालियर संभाग को अत्यधिक प्रभावित किया और इस क्षेत्र में युवक कुछ खुलकर कुछ छुपकर गॉधी टोपी ग्रहण करने लगे।

असहयोग आंदोलन के प्रति ग्वालियर संभाग में युवाओं की बढ़ती राष्ट्रीय चेतना देखकर तत्कालीन सिंधिया शासकों के समक्ष असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो गई। सिंधिया शासकों की अंग्रेजी राज्य के प्रति राजनैतिक विवशता के कारण अंग्रेजों के विरोध को दवाना

भी चाहते थे, परन्तु राष्ट्रवादियों के प्रति दमन चक्र नहीं चलाना चाहते थे। अतः अंग्रेजी रेजीडेन्ट के दबाब ग्वालियर राज्य में राष्ट्रवादियों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए मात्र सभाओं तथा जुलूसों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इस प्रतिबंध का ग्वालियर में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

1921 में ग्वालियर नगर के विक्टोरिया कॉलेज में छात्रों का आक्रोश बहिष्कार के रूप में सामने आया। विक्टोरिया कॉलेज के अनेक छात्रों ने कॉलेज छोड़ दिया। जिससे प्रमुख रूप से गोपी ष्ण विजयवर्गी तथा राधेश्याम शर्मा ने ग्वालियर राज्य की सीमा से लगे धौलपुर तथा इटावा में कांग्रेस तथा महात्मा गॉधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ होने से पूर्व ग्वालियर में क्रान्तिकारियों एवं कांग्रेस कार्यकर्ताओं का आना जाना आम बात हो गई। यद्यपि सिंधिया शासक इन क्रान्तिकारियों एवं कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के प्रति कठोर कदम उठाना नहीं चाहते थे। भारतीय ब्रिटिश सरकार के निर्देशानुसार गोवा ग्वालियर केस की सुनवाई की गई तथा गिरधारीलाल सिंह रामचन्द्र सर्वरे बालष्ण शर्मा आदि को गिरफ्तार कर सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई।

दतिया राज्य में स्वतंत्रता की भावना भरने में अग्रगण्य प्रयास रणपति सिंह परिहार का था। ग्राम मोबई खुर्द तहसील सेवढ़ा के इस निवासी ने रियासत द्वारा किये गए अत्याचारों के विरूद्ध ''प्रताप'' कानपुर में आवाज उठाई। 26 जुलाई 1926 को परिहार को गिरफ्तार कर लिया गया और धारा 24 के मुकदमें में 2 वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। जेल से छूटने पर उन्हें निष्कासित कर दिया गया। और वे लम्बे समय तक झॉसी में रहकर दतिया रियासत के अत्याचारों के विरूद्ध लिखते रहे।

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवानदास माहौर को जन्म देने का गौरव दतिया रियासत के बड़ौनी कस्बे को प्राप्त है यद्यपि उनका कार्यक्षेत्र दतिया की सीमाओं से बाहर रहा परन्तु चन्द्रशेखर आजाद और सदाशिव राव मालपुरकर का दतिया से सम्पर्क अवश्य रखा। चन्द्रशेखर आजाद को अपनी हवेली में आश्रय देने वाले ठाकुर नाहर सिंह की राजपूती शान से चिढ़कर दतिया नरेश गोविन्द सिंह ने उन्हें निष्कासित कर दिया। वे विजावर में रहकर जीवन यापन करने लगे।

रियासत के उत्पीढ़न के विशिष्ट शिकार हुए बीकर के रामचरण लाल वर्मा जो गिरदावरे कानूनगो के पद पर नियुक्त थे गॉधी जी के सविनय अवज्ञा आंदोलन से प्रेरणा पाकर इन्होने भी विचारों में स्वतंत्रता अपनायी। ''सैनिक'' आगरा में राज्य की दीनदशा का व्यौरा छपवाने के कारण रयासत ने इन्हें कसना चाहा, तो वे नौकरी छोड़कर झॉसी चले गए। सन् 1936 में उन्होने झॉसी से गिरफ्तार किया गया परन्तु वे किसी प्रकार फरार होकर राठ (हमीरपुर) के दीवान शत्रुघन सिंह के सम्पर्क में आये 27 फरवरी 1938 को इन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और 100 रूपये जुर्माने के साथ 18 माह की सजा दी गई।

1930–31 में ग्वालियर में श्रीमती लक्ष्मीबाई गर्दे ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के

लिए एक संस्था बनाई। इस संस्था के माध्यम से अनेक स्थानों पर विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गई। चूँकि इस संस्था में अधिकांशतः युवक थे जिसमें लक्ष्मीनारायण महाजन, ऋषि, बाबूलाल विड़ला आदि प्रमुख थे इन युवकों के नेतृत्व में ग्वालियर में सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाने का प्रयास किया गया परन्तु स्थानीय प्रशासन के दमनचक्र के कारण यह आंदोलन ग्वालियर में अधिक सफल नहीं हो सका।

वर्ष 1935 में ठक्कर बाबा की प्रेरणा से ग्वालियर में हरिजन सेवा संघ की स्थापना की गई। ग्वालियर संभाग के राष्ट्रवादी लोगों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रमों को सुचारू रूप से चलाने के उद्देश्य से ग्वालियर राज्य सेवा संघ की स्थापना की। इस संघ के अन्तर्गत खादी केन्द्र तथा हथकरघा केन्द्र प्रारम्भ किये गए साथ ही स्वच्छता अछूत उद्धार जैसी रचनात्मक गतिविधियॉ प्रारम्भ की गई।

सन् 1936 में ग्वालियर राज्य सार्वजनिक सभा के अन्तर्गत भारतीय राष्ट्रीय के कांग्रेस के कार्यक्षेत्र को तीन भागों में विभक्त किया गया।

1. लश्कर नगर।
2. ग्वालियर नगर।
3. मुरार नगर।

लश्कर नगर में डॉ. सदानन्द राधेलाल अग्रवाल बालष्ण शर्मा, सदाशिव बालम्बे, गिरधारी सिंह, घनश्याम दास मित्तल तथा नारायण पारनेकर आदि कार्यकारिणी के सदस्य थे तथा छात्रनेता के रूप में दीप नारायण सिंह राघवेन्द्र सिंह गोपीष्ण कटारे, देशराज सिंह तथा जोगलेकर आदि का नाम प्रमुख था जिन्होने लश्कर में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ग्वालियर नगर में ष्ण बिहारी, रामचन्द्र चौधरी, देवलाल रूद्ध आदि ग्वालियर सार्वजनिक सभा के सयि सदस्य थे तथा महिला वर्ग में क्रान्तिदेवी कार्यकारिणी सदस्या थी। ग्वालियर नगर में राष्ट्रवादी विचानों के माध्ययम से सार्वजनिक सभा के माध्ययम से ष्ण बिहारी ने राष्ट्रीय चेतना का जनसाधारण में संचार किया।

मुरार नगर में जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, श्यामलाल पाझउवीय, कन्हैयालाल जैन, नरसिंह, भजनलाल शर्मा तथा हरिहर निवास द्विवेदी ने सभा का कार्य सम्पादित कर राष्ट्रीय चेतना विकसित की।

ग्वालियर संभाग में ग्वालियर राज्य सार्वजनिक सभा के कार्य का आरम्भ गोपीष्ण विजयवर्गीय ने किया जिससे बाद में रामसहाय सक्सैना गोखले शिवशंकर रावल ने भी योगदान किया। संगठन के साथ साथ रचनात्मक कार्य भी किए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जब राज्यव्यापी स्वरूप ग्रहण किया तब इसका कार्यलय ग्वालियर संभाग (लश्कर) में बनाया गया।

सन् 1942 के आंदोलन के संचालक का गौरव भी ग्वालियर स्थित ग्वालियर राज्य

सार्वजनिक सभा के प्रधान कार्यालय को दिया जाता है।

ग्वालियर संभाग के नगरों के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में, भाण्डेर, घाटीगॉव, डबरा, पिछोर, भितरवार, नरवर, करैरा, पोहरी आदि क्षेत्रों में भी सार्वजनिक सभा की प्राथमिक कमेटियों की स्थापना की गई तथा जिसके बाद तुलनात्मक रूप से ग्वालियर संभाग के ग्रामीण अंचलों में राष्ट्रीय चेतना का विकास तीव्र हुआ।

भाण्डेर में सबसे पहली कमेटी की स्थापना यशवंत सिंह कुशवाह द्वारा की गई। तथा इसके अध्यक्ष ष्णानन्द एडवोकेट को बनाया गया, जो लोग सर्वप्रथम इसके सदस्य बने व राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यों को आगे बढ़ाया, उनमें रामष्ण शर्मा, रामदास तलगैया, बद्रीप्रसाद अठरोला भैयालाल दुबे तथा महिलाओं में गंगाबाई भी शामिल थी। इसके अलावा सालौन, पंडोखरा, बड़ेरा, विछौदना सोहन मोदन सरसई सलेवरा आदि गॉवों में भी कमेटी की स्थापना हुई।

ग्वालियर में प्रारम्भ में हरदयाल (बिलौआ) राजाराम चौधरी (उटीला) छत्रसिंह (पनिहार) देवकी नंदन (रेंहर) उल्फत सिंह (घाटीगॉव) रामचरण (कुलैथ) गजराम सिंह (चिनौर) आदि राष्ट्रवादी कार्यकर्ता पहले आये तथा राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यक्रमों को गति प्रदान की।

ग्वालियर राज्य सार्वजनिक सभा का राज्यव्यापी स्वरूप होते समय एक महत्वपूर्ण सम्मेलन गुना जिले के राढ़ोरा में किया गया वह सम्मेलन तीन दिन चला जिससे हजारों किसानों ने भाग लिया। इस सम्मेलन के तीनों दिनों की अध्यक्षता क्रमशः त्रयम्बक दामोदर लीलाधर जोशी तथा गोपीष्ण विजयवर्गीय ने की। गुना जिले का दूसरा सम्मेलन 19 मई 1940 को गुना नगर के फूंस वाले बंगले के पास हुआ। इस सम्मेलन के मुख्य अतिथि तत्कालीन न्यायमंत्री उत्तर प्रदेश के कैलाश नाथ कारजू थे। प्रदेश के नेताओं में शिवशंकर रावल रामसहाय आदि ने भाग लिया था। कार्यक्रम की अध्यक्षता गोपीष्ण विजयवर्गीय ने की। इस सम्मेलन में जिले की जनता ने बढ चढ़कर भाग लिया। इस सम्मेलन में उत्तरदायी शासन की मॉग ग्रामों की दशा में सुधार जागीरी अत्याचार का विरोध भ्रष्टाचार दूर करने आदि के प्रस्ताव स्वकीर किए गए तथा राष्ट्रीय आंदोलन की तीब्रगति प्रदान करने के लिए उत्साहित किया गया।

इसके इलावा पिछोर चंदेरी मुंगावली वीनागंज चाचोड़ा आरोन आदि स्थानों पर भी किसान व राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किये गए इनमें राज्यस्तरीय नेताओं के आने के कारण क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ।

सन् 1936 में श्रीमती ष्णा हरिसिंह ने दतिया की यात्रा कर दलित तथा पिछड़ी जाति के लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन के लिए प्रेरित कर उन्हें संगठित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

सविनय आवज्ञा आंदोलन के बाद दतिया क्षेत्र में राम चरण लाल वर्मा ने प्रजामण्डल नामक एक संख्या की स्थापना की। इसका उद्देश्य महात्मा गॉधी के अहिंसा दर्शन का

प्रचार प्रसार करना था।

नवम्बर 1938 में लश्कर में ग्वालियर राज्य सार्वजनिक सभा का द्वितीय अधिवेशन हुआ। जिसमें गोपी ष्ण कटारे, मुरलीधर विश्वनाथ आदि सम्मिलित हुए। यह ग्वालियर राज्य में प्रथम अवसर था जब तिरंगे ध्वज को फहराया गया। इस अधिवेशन ने अंग्रेजों को उत्तेजित कर दिया तथा उन्होने दमन चक्र चलाया। 26 जनवरी 1938 को बड़ा प्रदर्शन और आम हड़ताल हुई। 26 जनवरी को पूर्ण स्वराज की शपथ दुहरावे और जुलूस निकालने का छात्रों का कार्यक्रम चलने लगा। 1939 में छात्रों ने मुद्ध विरोधी पर्चे छपवाकर ग्वालियर में बॉटे गए। जिससे राजशाही चौंक गई इसी पर्चे के आधार पर श्यामलाल पाण्डवीय को गिरफ्तार कर सजा दी गई। सन् 1940 विक्टोरिया कॉलेज के यूनियन हॉल में विक्टोरिया के तैलाचित्र में नाक काटे जाने से राजशाही में अत्यंत रौष व्याप्त हो गया। तथा उन्होने श्री कटारे, राजेन्द्र सिंह, तथा जोगलेकर को गिरफ्तार कर कारावार की सजा दी।

क्रिप्श मिशन की असफलता के कारण अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने महात्मा गॉधी के ''भारत छोड़ो'' प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के भारत छोड़ो प्रस्ताव के समर्थन में विदिशा में एक सम्मेलन आयोजित किया गया इस सम्मेलन में ग्वालियर के कई राष्ट्रवादी नेताओं के साथ सभी नेता गिरफ्तार किए गए छात्रों को घोड़े के साथ बॉधकर घोड़े दौड़ाये गए। तथा लाठी चार्ज किया गया। चांवड़ी बाजार में छात्रों की एक सभा को चारों ओर से घेरकर सशस्त्र सेनाओं द्वारा गंभीर रूप से प्रताडना दी गई। इस घटना से द्रवित होकर एक छात्र रामचन्द्र सक्सैना ने रेजीडेंसी पर बम फेंका परन्तु उसे गिरफ्तार कर लिया गया तथा चार वर्ष की सजा के लिए आगरा जेल में भेज दिया गया।

अगस्त 1942 को बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भारत छोड़ो प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया। इससे अंग्रेजी सरकार अत्यन्त भयभीत हो गई। अंग्रेजी सरकार का मानना था कि महात्मा गॉधी किसी भी प्रकार से सीधे संघर्ष का मार्ग नहीं चुनेंगे। लेकिन उनके द्वारा करो या मरो के नारे ने ब्रिटिश सरकार को स्पष्ट कर दिया कि भारतीयों को स्वतंत्रता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिए। परिणामतः गॉधीजी सहित अनेक नेता गिरफ्तार कर लिए गए। महात्मा गॉधी की गिरफ्तारी का समाचार ग्वालियर पहुंचने पर ग्वालियर कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ।

9 अगस्त 1942 को ग्वालियर नगर के छात्रों ने प्रातः काल ही अनिश्चित कालीन हड़ताल की घोषणा कर दी तथा नगर की सभी शिक्षण संस्थाऐं एवं बाजार बंद करा दिए। इसके बाद छात्रों का एक जुलूस महाराज बाड़े पर एक विशाल सभा में परिवर्तित हो गया। इस सभा में छात्र नेताओं ने अंग्रेजी शासन के विरूद्ध जोशीले भाषण दिए। महात्मा गॉधी की तत्काल रिहाई की मॉग की गई चूँकि तत्कालीन पुलिए महानिरीक्षक एक अंगेज मार्श स्मिथ था जो छात्रों पर गोली चार्ज करना चाहता था परन्तु तत्कालीन शासक जीवाजी राव सिंधिया द्वारा छात्रों पर गोली चलाने की अनुमति न मिलने के कारण उसने छात्रों पर लाठी

चार्ज करने का आदेश दिया। परिणामतः कुछ ही क्षणों में शान्तिपूर्ण छात्र सभा में भगदड़ मच गई। कुछ छात्रों ने प्रतिशोध में अंग्रेजी पुलिस अधिकारियों को घोड़ों से गिरा दिया जिसके पश्चात ग्वालियर की पुलिस अधिक आक्रोश में आ गई तथा अनेक छात्रों को गिरफ्तार कर लिया गया।

सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ होने पर गुना में गोपीष्ण विजयवर्गीय को गिरफ्तार कर शिवपुरी जेल भेज दिया गया व सागर सिंह सिसौदिया को लम्बे समय तक उत्तर प्रदेश की जेलों में रखा गया। सीताराम तारके को गिरफ्तार कर मुंगावनी जेल में बंद कर दिया गया। गुना जिले की तहसील मुंगावली को भारत छोड़ो आंदोलन के समय बड़ी जेल के रूप में तब्दील कर दिया गया तथा इसमें ग्वालियर चंबल संभाग के कई हजार कार्यकर्ताओं को 30 जून 1943 तक बंद रखा गया था। भारत छोड़ो आंदोलन के कार्यक्रमानुसार गुना, पिछोर, चंदेरी, मुंगावली, कुंम्भराज, चाचौड़ा, बीनागंज व राधौगढ़ में हड़ताल कराई गई तथा प्रदर्शन किए गए। शराब की दुकानों पर धरने व आम सभाओं का आयोजन किया गया। संचार सेवाओं को ठप्प करने के प्रयास किए गए।

छात्र आन्दोलनकारियों ने यशवंत राव लुम्बा, शिवचरण माथुर, ज्ञानीचंद, हरिष्ण भार्गव, विष्णुप्रसाद व्यास, पन्नालाल, रवीन्द्र चौबे, घनश्याम विजयवर्गीय, हजीरालाल जर्नादन, रमनलाल प्रेमी आदि ने गुना में छात्रों में राष्ट्रीय चेतना विकसित करने के लिए विशेष कार्य लिए।

शिवपुरी में भी आजादी का अंतिम संघर्ष आरम्भ हो गया था। इस आंदोलन में सर्वप्रथम छात्रों ने भाग लिया इसके बाद भेलसा में हुए ग्वालियर राज्य सार्वजनिक सभा के संघर्ष के प्रस्ताव के अनुसार शिवपुरी जिले तथा तहसील मुख्यालयों करैरा, पिछोर, कौलारस, पोहरी, और नरवर मगरौनी भटनावर बदरवास लुकवासा बामौर गॉव आदि सभी जगहों पर बाजारबंद कर पूर्ण रूप से हड़ताल की गई। शराब की दुकानों पर धरने दिए गए (सरकारी) अधिकारियों ने दमनचक्र प्रारम्भ कर सभाबंदी तथा दफा 144 लागू की लेकिन शिवपुरी की जनता ने सामूहिक रूप से शामिल होकर इन नियमों को तोड़ा। लोगों को गिरफ्तार कर शिवपुरी मुंगावली तथा अन्य जगहों की जेलों में ले जाकर बंद कर दिया गया।

सन् 1945 में दतिया राज्य की सीमाओं में प्रजामंडल का वैधानिक गठन किया गया। 6 अक्टूबर 1946 तक दशहरे के अवसर पर प्रजामण्डल की ओर से दतिया में होने वाले सम्मेलनों में क्रान्तिकारी पंडित परमानन्द स्वामी स्वराज्यानन्द लाला राम बाजपेयी शिरोमणि और भरतपुर के मौलवी आले मुहम्मद के ओजस्वी भाषण हुए जिनमें पहली बार दतिया राज्य में उत्तरदायी शासन की मांग बुलंद की गई और साथ ही दीवान सनउद्दीन को भी बहुत कुछ खरी खोटी सुनाई गई।

सन् 1946 के समाप्त होते ही दतिया में भी एक अभिनव अद्वितीय आंदोलन छिड़ गया। कुछ लोगों के विचार से यह आंदोलन साम्प्रदायिकता को लेकर राजशाही के समर्थन में चला परन्तु इसके विपरीत अन्य लोग इस आंदोलन को पोलिटीकल विभाग से

जनसाधारण का एक शक्तिशाली राजनीतिक मोर्चा मानते आये हैं। वस्तुतः इस आंदोलन में सभी तत्वों का सम्मिश्रण था क्यों कि उसे सत्ताधारी एवं आंदोलनकारी दोनों दलों ने ही ऐसे मोड़ दिये।

आंदोलन की पृष्ठभूमि में कांकोरी केस के न्यायाधीश रहने वाले तत्कालीन दीवान सैयद एनउद्दीन की दीर्घकालीन निरंकुशता देखी जा सकती है। उसे साम्प्रदायिक रूप भी दिया गया क्योंकि उन दिनों भारत में लीगी प्रचार जोरों परथा। उसमें सामंतवाद राजशाही के समर्थन का रंग भी मिलाया गया क्योंकि सैयद एनउद्दीन चरखारी नरेश को पदच्युत कराके ही दतिया आये थे। परन्तु आंदोलन की परिणिति हुई पालिटिकल विभाग में अच्छी खासी टक्कर के रूप में जिसने अखिल भारतीय महत्व प्राप्त कर दिया।

निष्कर्ष

ग्वालियर संभाग में राष्ट्रीय चेतना के सर्वेक्षणात्मक अध्ययन के वाद हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते हैं कि ग्वालियर सम्भाग में राष्ट्रीय चेतना महात्मा गॉधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश करने तक अत्यंत मंद स्थति में थी। महात्मा गॉधी के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को नेतृत्व प्रदान करने के बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय में सर्वप्रथम ग्वालियर संभाग में राष्ट्रीय चेतना दिखलायी पड़ती है। ग्वालियर संभाग मुख्यालय की तुलना में ग्वालियर जिले की सीमा से जुड़े मुरैना तथा उसके ग्रामीण अंचलों में राष्ट्रीय चेतना का विकास तीव्र था। भारत छोड़ो आंदोलन के समय सम्पूर्ण ग्वालियर संभाग में राष्ट्रवादी चेतना का प्रसार का सर्वोत्तम सदाहरण ग्वालियर के प्रत्येक भाग से भारत छोड़ो आंदोलन में भागीदारी का होना था।

सन्दर्भ –सूची

1. **पट्टाभि सीतारमैया**– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास नईदिल्ली 1948
2. **ए.आर.देसाई**– सोशल बैंक ग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलाइल्म बॉम्बे 1989
3. **रिपोर्ट ऑफदी पार्टीशन ऑफ बंगाल 1965**
4. **सर.ई.वार्कर** – आइडिया एण्ड आडियलस ऑफ ब्रिटिश इम्पायर 1941
5. **प्रोसी डिंग्स ऑफदी पार्लियामेन्ट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन**
6. **श्री यशवंत सिंह कुशवाह**– स्वतंत्रता संग्राम सेनानी से व्यक्तिगत साक्षात्कार पर आधारित।
7. **के.बी.एल.पाण्डेयः**– उदभव और विकास मुड़ियन का कुंआ दतिया 1986।
8. **स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रघुवर दयाल गुप्ता से लिये व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर।**
9. **यशवंत सिंह कुशवाह ग्वालियर राज्य की आजादी का संघर्षः**– प्रथम भाग
10. **योगेन्द्र मिश्राः**– शताब्दी पत्रिका
11. **भारतीय अभिलेखागार**
12. **यंग इण्डिया 30 जनवरी 1980**
13. **जिलाधीश जिला गुना कार्यालय से प्राप्त सूचना के आधार पर।**

महात्मा गांधी द्वारा अहिंसा दर्शन का भारतीय राजनीति में प्रारम्भिक प्रयोग

प्रो. के. रतनम्*

महात्मा गांधी का अहिंसा दर्शन केन्द्र से परिधि तक ले जाने वाला जीवन दर्शन है। महात्मा गांधी का मानना था कि समाज का सुधार करने के लिये व्यक्ति का सुधार करना, समाज को सुखी बनाने के लिये व्यक्ति को सुखी बनाना हेागा।[1] आत्म विकास की अवधारणा को दृष्टिगत रखते हुए महात्मागांधी ने ''सत्य'' और ''अहिंसा'' पर आधारित अपने जीवन दर्शन को स्थापित किया।[2] महात्मा गांधी का अहिंसा दर्शन भय से मुक्ति और मानसिक स्वतंत्रता संदेश देने वाला जीवन दर्शन था। महात्मा गांधी ने अपने अहिंसा दर्शन का प्रारम्भिक प्रयोग **सत्याग्रह आन्दोलन** के रूप में किया । महात्मा गांधी का मानना था कि जब तक भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी तक भारत को आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक स्थिति में परिवर्तन लाना संभव नहीं है। भारत की स्वतंत्रता शांति और अहिंसा के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।[3]

महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति में **न्याय, सत्य, अहिंसा** और प्रेम के विचार को स्थापित किया। महात्मा गांधी ने एवं महात्मा का राजनैतिक दोनों प्रतिभाओं का स्वयं में समाहित किया। कुछ विचारकों ने उन्हें राजनीतिज्ञ संत कहा।[4] महात्मा गांधी के पूर्व भारत राष्ट्रीय संघर्ष के लिये तैयार था, और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उसके मार्गदर्शन के लिये उपयुक्त संख्या थी। महात्मा गांधी ने सम्पूर्ण भारत में अपने अहिंसा दर्शन के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों को प्रभावित किया।

दक्षिण अफ्रीका के उपरान्त खेड़ा, अहमदाबाद तथा चम्पारन में महात्मा गांधी ने अहिंसा तकनीक का प्रयोग किया तथा प्रारंभिक रूप से वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रहे। महात्मा गांधी का प्रारम्भिक उद्देश्य इस सत्याग्रह के माध्यम से जनसाधारण में अहिंसा दर्शन का संदेश देना था। अप्रैल 1919 ई में महात्मा गांधी ने सर्वप्रथम बिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक जन आन्दोलन को प्रारंभ किया, जिस आन्दोलन का उद्देश्य भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने के साथ–साथ और अंग्रेजी साम्राज्यबाद के प्रति निष्ठा को समाप्त करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये महात्मा गांधी ने तत्कालीन भारत सरकार द्वारा इंग्लैण्ड की इम्पीरियल लैजीस लैटिब कोसिंल से पारित विरोध दर्ज किया।[5]

महात्मा गांधी ने इस रोलेक्ट एक्ट को अधिक गंभीरता से लिया क्यों कि यह मात्र एक एक्ट ही नहीं था, वरन् यह भारतीयों की एक सहनशक्ति का परीक्षण था। उदारवादी कांग्रेसी इस कानून के विरोध में परिषदों में अपनी असहमति व्यक्त कर रहे थे। महात्मा गांधी ने इन उदारवादियों में से एक को लिखा था कि वह और अधिक समय तक बिस्तर पर पड़े रह कर इस कानून की प्रक्रिया को देखना नहीं चाहते है। उन्होंने मदन मोहन मालवीय और श्री निवास शास्त्री को सुझाव दिया कि सभी भारतीय सदस्यों को सिलैक्टिव कमेटी से त्यागपत्र दे देना चाहिये तथा आवश्यक हो तो विधान परिषद से भी त्याग पत्र दे देना चाहिये।[6]

महात्मा गांधी ने रोलेक्ट एक्ट के विरूद्ध एक जन आन्दोलन चलाने का अनुभव किया, उनका मानना था कि सरकार पर्याप्त समय दिया जा चुका था।[7] **'रोलेक्ट एक्ट'** जैसे काले कानून को पारित कर ब्रिटिश शासन ने भारतीयों को विरोध करने के लिये बाध्य कर

* प्राध्यापक (इतिहास) के.आर.जी. शा.स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

दिया।[8]

होमरूल के नेताओं के द्वारा रोलेक्ट एक्ट के विरोध में दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कानपुर, लखनऊ तथा इलाहाबाद आदि स्थानों पर ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध प्रदर्शन किये जा रहे थे। उस समय महात्मा गांधी अस्वस्थ्य थे। अस्वस्थ होने के बाद भी महात्मा गांधी ने रोलेक्ट कानून के विरोध को जन आन्दोलन में परिवर्तित करने के लिये अपनी सहमति प्रदान की। महात्मा गांधी आन्दोलन को अहिंसा पर आधारित कर चलाने के लिये ब्रिटिश शासन को समाचार पत्रों के माध्यम से अपने अहिंसा दर्शन आधारित सत्याग्रह से अवगत करा दिया था।[9]

महात्मा गांधी के अहिंसा दर्शन के सिद्धान्तों पर आधारित होकर सत्याग्रह आन्दोलन चलाने के निर्णय से तत्कालीन राजनैतिक संगठन सहमत न थे। अतः महात्मा गांधी ने अपनी अध्यक्षता में सत्याग्रह सभा नाम की एक संस्था की स्थापना की इस संस्था ने स्वेच्छा से अहिंसा दर्शन में विश्वास रखने वाले सत्याग्रहियों का पंजीयन किया। इन सत्याग्रहियों ने स्पष्ट रूप से बतलाया गया था। उनको यह स्पष्ट किया गया था कि गांधी के सत्याग्रह की अवधारणा आत्मा की शक्ति पर आधारित है।[10]

महात्मा गांधी ने अहिंसा दर्शन के सिद्धान्तों पर सत्याग्रह आन्दोलन को चलाने का निर्णय किया कि एक सत्याग्रही किसी समय सत्य और न्याय के लिये जीवन की बड़ी से बड़ी कठिनाई का सामना करने के लिये तत्पर है। उसका शस्त्र ईश्वर तथा कार्य में विश्वास है। उसके विश्वास में न तो हिंसा के लिये कोई स्थान है और न असत्य के लिये इस काले कानून से छुटकारा पाने के लिये मात्र सत्याग्रह ही एक अस्त्र है। महात्मा गांधी के इस वक्तत्व से तत्कालीन उदारवादी नेताओं में प्रतिकूल प्रक्रिया हुई और उन्होंने महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन के विरोध में एक प्रपत्र जारी किया। इस प्रपत्र के उत्तर में महात्मा गांधी ने श्री निवास शास्त्री को सत्याग्रह आन्दोलन को प्रारंभ करने के औचित्य को स्पष्ट किया।[11]

महात्मा गांधी भू सत्याग्रह आन्दोलन चलाने के उद्देश्य से सत्याग्रह सभा की स्थापना की तथा आन्दोलन की अहिसंक पृष्ठभूमि एवं स्वरूप के विषय में जन–जन को बतलाने के उद्देश्य से महात्मा गांधी ने दिल्ली, लखनऊ, मद्रास, बंगलौर तथा इलाहाबाद आदि नगरों की यात्रा की तथा अपनी जन सभाओं में सत्याग्रह और अहिंसा का संदेश दिया। महात्मा गांधी आन्दोलन को किस प्रकार प्रारंभ किया जाये। निश्चित नहीं सके और रोलेक्ट एक्ट पारित हो गया।

महात्मा गांधी ने रोलेक्ट अधिनियम का विरोध करने के उद्देश्य से एक आम हड़ताल करने का आव्हान करने का विचार किया। महात्मा गांधी के इसक प्रकार का राजगोपालाचार्य तथा उनके अन्य सहयोगियों ने स्वागत किया और 30 मार्च 1919 का दिन हड़ताल के लिये निश्चित किया गया, किन्हीं कारणों से हडताल 6 अप्रैल को की गई।[12]

महात्मा गांधी ने निश्चित किया कि 6 अप्रैल 1919 को **'असंतोष दिवस'** के रूप में मनाया जाये, तथा सत्याग्रहियों में 24 घंटे का उपवास रखने का भी आग्रह किया।[13] महात्मा गांधी द्वारा निश्तिच 6 अप्रेल 1919 के दिन सम्पूर्ण भारत में असंतोष दिवस मनाया गया।[14] गांव से लेकर नगरों तथा महानगरों में भी महात्मा गांधी के अहिंसा दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पडने लगा। दिल्ली, अमृतसर तथा लाहौर में हिंसा की अनेकों घटना प्रकाश में आई। अत्यधिक उत्साह के कारण पंजाब के जलियाबाला बाग में दुखद घटना घटित हुई। इन दुखान्त घटनाओं ने महात्मा गांधी को अत्यधिक दुखी किया।[15] महात्मा गांधी ने स्पष्ट किया हिंसाक घटनाओं से सत्याग्रह को कुछ लेना–देना नहीं है। पंजाब की घटना भी सत्याग्रह आन्दोलन से किसी भी प्रकार संबंधित नहीं थी। परन्तु हिसंक घटनाओं के कारण

महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन को कुछ समय के लिये स्थापित कर दिया।[16]

सत्याग्रह आन्दोलन पर महात्मा गांधी के अहिंसादर्शन के प्रभाव की विवेचना के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि महात्मा गांधी ने जिस समय भारतीय राजनीति में पर्दापण किया उस समय में राजनैतिक आस्थिरता का समय था, उन्होंने अपने अहिसां दर्शन के द्वारा कोल को दी। भारत में अहिंसा आधारित राजनैतिक विचारधारा को न केवल जन्म दिया, बल्कि सत्याग्रह आन्दोलन के माध्यम से अहिसां सिद्धान्तों को जनमानस तक पहुंचाया।

सत्याग्रह आन्दोलन को महात्मा गांधी के राजनैतिक जीन का प्रारंभ कहा जा सकता है। यद्यपि महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में भी सत्याग्रह आन्दोलन अपने अहिंसा दर्शन के अनुरूप चलाया था पूर्व महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन को राजनीति की तुलना में धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण माना।[17] सत्याग्रह आन्दोलन के स्थगन के बाद महात्मा गांधी ने भारत में हिन्दु तथा मुसलमानों की एकता के लिये प्रयास करना प्रारंभ किये । हिन्दु मुस्लिम एकता की दृष्टि से टर्की स्वायत्ता के प्रश्न पर भारत में मुसलमानों की भावना के अनुरूप किसी आन्दोलन को चलाना उनके लिये एक उचित अवसर था और मुसलमानों में अहिंसा दर्शन के प्रति आस्था उत्पन्न करने का भी एक उचित समय था। इन पक्षों को दृष्टिगत रखते हुए टर्की की स्वायत्ता के प्रश्न पर महात्मा गांधी ने आन्दोलन चलाने का निर्णय लिया।[18]

महात्मा गांधी का विचार था कि टर्की की समस्या का मात्र हल सत्याग्रह ही है। 18 सितम्बर 1919ई को गांधी ने बम्बई में एक खिलाफत सभा को उदबोधन में कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य को टर्की के हित में प्रथम विश्व युद्ध पूर्व के वादे के अनुस्वरूप व्यवहार करना चाहिये। परिणाम स्वरूप 27 अक्टूबर का दिन सम्पूर्ण भारत में खिलाफत दिवस के रूप में मनाया गया। इस अवसर पर महात्मा गांधी ने प्रेस को खिलाफत दिवस की महत्ता पर एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की, जिससे महात्मा गांधी ने 17 अक्टूबर को सभी हिन्दुओं को टर्की के सुल्तान की स्वायत्ता के लिये प्रार्थना तथा उपवास करने का आव्हान किया।[19] विज्ञप्ति के अनुरूप पूर्ण हड़ताल भी रखी गयी और जगह–जगह पर जन सभायें आयोजित की गई।

महात्मा गांधी मुसलमानों का विचार था कि किसी की धार्मिक आस्था के साथ अन्याय नहीं किया जाना चाहिये। हिन्दु मुस्लिम एकता को दृष्टिगत रखते हुए नवम्बर माह में दिल्ली में **संयुक्त हिन्दु मुस्लिम सम्मेलन** का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति असहमति की गई तथा कुछ मुसलमानों ने ब्रिटिश कम्पनी द्वारा निर्मित वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव रखा।[20] सम्मेलन में हिन्दु मुस्लिम एकता की दृष्टिगत रखते हुए महात्मा गांधी ने विचार रखा कि खिलाफत के प्रश्न पर किस प्रकार से ब्रिटिश सरकार को मानने के लिये बाध्य किये जाये और अंततः महात्मा गांधी ने अहसयोग के मार्ग को चुना।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन में दिसम्बर 1919 में खिलाफत के विषय में मुसलमानों को सहयोग करने का प्रस्ताव पारित किया गया।[21] खिलाफत कमेटी तथा गणमान्य नागरिकों ने 22 जनवरी 1919 को महात्मा गांधी का स्वागत भाषण रखा। इस अवसर पर महात्मा गांधी ने लोगों से सत्याग्रह तथा नैतिक शांति के मार्ग को अपनाने का आव्हान किया तथा लोगों को विश्वास दिलाया कि अहिंसा और सत्यागह के मार्ग से ही खिलाफत समस्या को हल किया।[22]

महात्मा गांधी के इस निर्णय का सभी ने स्वागत किया। प्रमुख रूप से मुस्लिम नेताओं ने गांधीजी के इस विचार पर अपनी पूर्ण सहमति व्यक्त की तथा खिलाफत

आन्दोलन को गांधी जी के अहिंसा आधारित रचनात्मक कार्यक्रम के अनुसार चलाने का निर्णय किया। फरवरी 1920ई को अब्दुल कलाम आजाद ने अपनी द्वितीय खिलाफत कान्फ्रेंस कलकत्ता के अध्यक्षीय भाषण में महात्मा गांधी के असहयोग कार्यक्रम का समर्थन करने का किया।[23] मुसलमानों द्वारा महात्मा गांधी के सहयोग प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद 7 मार्च 1920ई को खिलाफत कान्फ्रेंस ने प्रस्ताव के विषय में एक विस्तृत ''प्रेस नोट'' जारी किया जिसमें सभी वर्ग के लोगों से विचारों से अथवा अन्य किसी भी कृत के द्वारा हिसंक न होने की अपील की गयी।

महात्मा गांधी ने 19 मार्च 1920 ई. का दिन **खिलाफत दिवस** को राष्ट्रीय चैतना जागत करने के रूप में उपवास तथा हड़ताल कर मनाने का आव्हान किया। खिलाफत दिवस पूर्णतः शांतिमय रूप से सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित असहयोग प्रस्ताव के अनुरूप सम्पूर्ण भारत मे मनाया गया। इस अवसर पर महात्मा गांधी ने बम्बई में एक नैतिक सभा में खिलाफत दिवस की सफलता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह आन्दोलन अपने प्रारंभिक उद्देश्य में पूर्ण सफल रहा।

खिलाफत प्रश्न पर अहिसां दर्शन का प्रयोग में हिंसा तथा रक्तपात को रोकने में सहायक सिद्ध हुआ। महात्मा गांधी ने वायसराय को लिखा कि उन्हें हर्ष है कि वह भारत में हिंसा की राजनीति से भारतीयों को परिचित करा सके और खिलाफत आन्दोलन के रूप में उन्होंने इसका सफल परीक्षण भी कर लिया। इस प्रकार महात्मा गांधी अपने अहिंसा दर्शन के आधार पर भारत की एक नई राजनीतिक दिशा प्रदान कर सके।

संदर्भ –

1. डॉ आशारानी, गाधियन नान वायलेंस एण्ड इंडियाज फ्रीडम स्ट्रगल नई दिल्ली, 1981, पृ. 51।
2 डॉ. वीरेन्द्र वर्मा, भारत के पुर्ननिर्माण में गांधीजी का योगदान, श्री पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, वर्ष 1984 पृ. 17।
3 डॉ. आशारानी पूर्वोक्त 1981 पृ. 55
4 प्रफुल्ल चन्द्र घोष, महात्मागांधी कलकत्ता 1970 पृ. 7।
5 सामन पेटरब्रिक का कथन (उद्यरित डॉ. वीरेन्द्र शर्मा पूर्वोक्त) पृ. 19।
6. डॉ. आशारानी, वही पृ. 220।
7 वही।
8 द बाम्बे क्रॉनिकल 4 फरवरी 1919।
9 बी.एस श्रीनिवास शास्त्री, को महात्मागांधी का पत्र दिनांक 9 फरवरी 1921 (सम्पूर्ण महात्मा गांधी वागंमय खण्ड 15 पृ0 87)।
10 महात्मा गांधी का वायसराय के व्यक्तिगत सचिव जे.एल. को पत्र जुलाई 1919 (राष्ट्रीय अभिलेखाकार होम पोलिटिकल ए क्र.1 तथा के डब्ल्यू)।
11 सी.एफ. एण्ड्डा के नटराजन उस रीड तथ डी वाय को महात्मा गांधी के लिखे (सम्पूर्ण महात्मा गांधी वाग्मय खण्ड 15 पृ 104, 107)।
12 महात्मागांधी का श्रीनिवास शास्त्री को पत्र (सम्पूर्ण महात्मा गांधी वांग्मय खण्ड 15 पृ. 127)।
13 यंग इंडिया, 22 मार्च 1919।
14 वही
15 महात्मागांधी की आत्म कथा , पृ. 562।
16 द अमृत बाजार पत्रिका, 25 मार्च 1919।
17 द बाम्बे क्रॉनिकल, 7 अप्रैल 1919।
18 सम्पूर्ण महात्मा गांधी वाग्मय खण्ड 15 पृ. 243–247।
19 यंग इंडिया, 12 मार्च 1920।
20 भारतीय अभिलेखाकार, होम पोलिटिकल ए अक्टूबर 1919 क्र. 426 – 440।
21 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 34 वे अधिवेशन अमतसर की प्रोसीडिंग।
22 द बाम्बे क्रॉनिकल, 13 अक्टूबर 1919।
23 वही।

''उत्तराखण्ड की शाक्त परम्परा का ऐतिहासिक विश्लेषण''

डॉ0 रंजना रावत*

शक्ति तत्व की आराधना का इतिहास काफी प्राचीन है। ऋग्वेद में जिस देवी की स्तुति की गई है उसे शक्तिपूजा का आद्यरूप कहा जा सकता है।[1] शाक्त उपासना के पुरातनरूप मातृका पूजन की परम्परा का ऐतिहासकि साक्ष्य पांचवीं शताब्दी के शिलालेख से मिलता है।[2] डॉ0 फ्लीट के वर्णनों से भी स्पष्ट होता है कि तत्कालीन शासक मातृका भक्त थे।[3] कालीदास के ग्रन्थ मृच्छकटिकम् में भी शक्ति की स्तुति का वर्णन है। मथुरा तथा सारनाथ के संग्रहालयों में भी शक्ति की पुरातन प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। ये तथ्य प्रमाणित करते हैं कि शाक्त परम्परा की ऐतिहासिकता काफी पूर्व तक जाती है। उपनिशदों में हमें शक्ति के विभिन्न रूप यथा– अम्बिका, उमा, अग्निरूपा, सूर्यसुता, हैमवती आदि संबोधनों की जानकारी मिलती है।[4] पुराणों में शक्ति को यशोदा गर्भसंभवा, कंसमर्दिनी, महामाया, योगनिद्रा, चण्डमुण्ड विनाशिनी आदि नामों से चित्रित किया गया है।[5]

ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में गुप्तशासक चन्द्रगुप्त प्रथम (305–325 ई0) की मुद्राओं में सिंहवाहिनी के रूप में उत्कीर्ण मिलती है। द्वितीय शताब्दी तक आते–आते शाक्त संप्रदाय का प्रभाव प्रशासनिक स्तर तक हो चुका था। अब हमें भैरवी, चतुर्भुजी, कामाख्या आदि रूपों का वर्णन मिलता है। शाक्त परम्परा की साधना पद्धति भी नामों (विशेषणों) के अनुरूप है। शाक्त परम्परा का मूलभूत आदर्श है साधना एवं उपासना के माध्यम से उस त्रिगुणात्मिका दैवी शक्ति का साक्षात्कार करना जो 'सर्ग–स्थिति संहार' की मूलाधार है।[6] शाक्तों की उपासना पद्धति के अन्तर्गत देवियों की पूजा राजसी, तामसी (तांत्रिक) उपासना विधियों से की जाती है। शाक्त परम्परा भारत की एक अवैदिक तथा अभारतीय देन है। उल्लेखनीय है कि शाक्त तान्त्रिक परम्परा से सम्बद्ध पाँचों शक्तिपीठ[7] आर्यावर्त के बाहर भारत के पारिधीय क्षेत्रों में स्थित है।

उल्लेखनीय है कि शाक्त परम्परा की जितनी व्यापकता हिमालयी क्षेत्रों में पायी जाती है उतनी अन्यत्र नहीं।

उत्तराखण्ड की शाक्त परम्परा में शक्ति की आराधना, अर्चना मुख्यतः चार रूपों में किया गया हैः–

प्राकृतिक शिलाखंड, 2. दारूविग्रह अथवा काष्ठस्तम्भ, 3. प्रतिमा विग्रह, 4. यंत्र/प्राकृत शिला विग्रहों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है :– कालीमठ की कालीशिला, बूढ़ा देवशाल में स्थिति कालशिला, खिर्सू के समीप शिखर पर स्थित उल्का देवी शिला, देवशाल में स्थित विन्ध्यवासिनी शिला, अल्मोड़ा में स्थित जाखनदेवी, नैनीताल में स्थित पाषाण देवी। दारूविग्रह रूप में नंदा को प्रस्तुत किया गया है उन्हें 'दारूमूर्तिसमासीना' कहा

*एसो0 प्रोफेसर इतिहास विभाग, डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलेज, देहरादून

गया है।[8] गढ़वाल में इन दारूविग्रहों को 'देवी का परस' कहा जाता है। ये स्तम्भविग्रह लाता के नन्दादेवी, सिमली के उमादेवी, चांदपुर के नन्दादेवी, सांसों के देवी मंदिरों में स्थापित हैं।[9]

प्रतिमा विग्रह के रूप में शक्ति का प्रतीक पार्वती, दुर्गा, चण्डिका, ब्रहमाणी, इंद्राणी, नारायणी, महिशमर्दिनी, वाराही, उमा के रूप में पूज्य है। इनमें विनसर व बाड़ाहाट की चतुर्भुजी राणीहाट की अष्टभुजी, गोपेश्वर की द्वादशभुजी महिशमर्दिनी विशेश रूप से विद्यमान है। उत्तराखण्ड की शाक्त साधना परम्परा में दैवी यंत्रों (चक्रों) का प्रमुख स्थान है। यंत्र राजतंत्र में इनकी संख्या 960 बताई गई है। इनमें से श्रीयंत्र को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। इसका प्रयोग ललित या त्रिपुर सुंदरी शक्ति के पूजार्थ किया गया है। इसका केन्द्रय बिन्दु शिव का शक्ति से तथा कामेश्वर का कामेश्वरी से एकत्व को व्यक्त किया गया है। विदित है कि खस शासकों की राजधानी चांदपुर में भी श्रीचक्र प्रतिश्ठापित था।[10] नंदाजात के समय कुलसारी (बघान) में पृथ्वी में दबाये गये श्रीयंत्र को निकालकर उसकी विधिवत पूजा करने और बलि देने के बाद ही यात्रा आगे प्रस्थान करती है। देवलगढ़ स्थित राजराजेश्वरी मंदिर तथा चंद्रकूट पर स्थित चंद्रबदनी मंदिर में पूजित क्रमशः स्फटिक एवं पाशाण यन्त्रों की पूजा पुरातन काल से ही होती चली आ रही है। गंगोलीहाट की हरिकालिका, जागेश्वर के महामृत्युंजय शिवपीठ में भी श्रीयंत्र स्थापित है।

उत्तराखण्ड के गढ़वाल एवं कुमाऊँ क्षेत्र की उल्लेखनीय शक्ति पीठों के अतिरिक्त प्रत्येक पर्वत की चोटी पर शक्ति स्वरूपा देवी का मंदिर पाया जाता है। एटाकिंसन के अनुसार उत्तराखण्ड में शिवपीठ के साथ अन्य रूपों में पूजित पौराणिक देवियों से सम्बन्धित देवालयों की संख्या 262 (194+60+8) थी। उत्तराखण्ड में अनेक शक्ति स्थलों को स्थानीय नामों से जाना जाता है यथा–पार्वती, गिरिजा, ज्वाला, कामाख्या, पुष्टिदेवी, वाराही, जयन्ती, अम्बिका, धारीदेवी, सिद्धपीठ कालीमठ, कोटभ्रामरी, भीमादेवी, सुरकंडा पीठ, महालक्ष्मी, महासरस्वती, मनसा, पूर्णागिरी, आंकोटदेवी, नरसिंही, चामुण्डा, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि। इन शक्तियों को उनके परम्परागत आयुधों एवं वाहनों से सुसज्जित दिखाया गया है।[11] उत्तराखण्ड के कुछ विशिष्ट देवालयों में हरधौ की नंदा, त्रिपुरादेवी, वाराही, वैष्णवी, आंकोट की देवी शामिल है। गढ़वाल की प्रमुख शक्तियों में चन्द्रबदनी, कालीमठ, माँ कुट्टीदेवी उल्लेखनीय है।[12]

उत्तराखण्ड में शाक्त परम्परा के प्रभाव की ऐतिहासिकता कुषाण काल तक जाती है यद्यपि इसके आगमन की ऐतिहासिकता 6000 वर्ष पूर्व तक जाती है। उत्तरांचल में शक्ति को भी प्राचीन काल से काफी महत्व मिला है। यहाँ शक्तिपूजा शिव पूजा के समान ही प्रचलित है। शिव तथा शक्ति का सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ठ है। शिव को शक्ति बिन शव समान माना गया है इसलिए आदि गुरू शंकराचार्य ने ठीक ही कहा है :–

''शिवः भाक्तया युक्तो यदि भवति भाक्तः प्रभवितुम।

न चे देवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमापि।।''

उत्तराखण्ड के प्राचीन शक्ति सिद्ध पीठ पुरातात्विक दृष्टि से अत्यधिक महत्व रखते हैं। शक्ति पूजा गढ़वाल और कुमाऊँ को जोड़े रखने के लिए प्राचीन समय से चली आ रही महत्वपूर्ण परम्परा है। शक्ति के प्रभाव के कारण ही पुनः जातयात्रायें प्रारम्भ की गई जो उत्तरांचल की सांस्कृतिक एकता के लिए महत्वपूर्ण है। गंगा और यमुना की शक्तियों एवं उसके जल की महिमा का वर्णन भारत के समस्त धर्मों के साहित्य में मिलता है। उत्तराखण्ड की शक्तिपीठों के दर्शन करके तीर्थयात्री गौरवान्वित होते है साथ ही उन्हें उत्तम सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसी कारण लगभग सभी धर्मों के लोग यहाँ आकर शक्ति देवियों का आर्शीवाद लेना नहीं भूलते हैं। इस लेख के द्वारा मैं एक संदेश जनमानस तक पहुँचाना चाहती हूँ कि हमें अपने जीवन के निरन्तर भागम–भाग के जीवन में समय निकालकर शक्तिपीठों का आशीर्वाद अवश्य लेना चाहिए। सरकार को इन शक्तिपीठों का पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करना चाहिए।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद, वागाम्मृणीसूक्त 10, 125
2. मालव नरेश विश्वकर्मा का संवत् 480 (सन् 423–24 ई0) का शिलालेख
3. डॉ0 फ्लीट–गुप्ता इन्सिक्रिप्सन्स पेज–48
4. तैत्तरीय आरण्यक 10.18

   याज्ञ0 1.290

   केनोपनिशद 3.25
5. अ0 11.49.50
6. शर्मा डी0डी0 – उ0सा0 एवं सा0प्र0 इतिहास पेज–410
7. शर्मा डी0डी0 – उ0सा0 एवं सा0प्र0 इतिहास पेज–414
8. केदारखण्ड 110:9
9. डॉ0 कटोच–पुरवासी 98:22
10. शर्मा डी0डी0 , उ0सा0 एवं सां0 इतिहास पेज–420
11. सक्सेना कौशल किशोर – 1994, पेज–71
12. डॉ0 निवेदिता – 2004, अंकित प्रकाशन पेज–65

परम्परावादी भारतीय चित्रकला में अभिव्यक्तिकरण के तत्व

डॉ. हरी ओम शंकर*

परम्परावादी भारतीय चित्रकला में चित्र सृजन के तत्वों का विवरण सभी प्राचीन प्रन्थों में मिलता है। कामसूत्र में कला के अंग के रूप में कला के छः अंग बतलाये गये, वात्स्यायन ने चित्रकला के तत्वों की जो संकेत दिया है। चित्रसूत्र में रूप–विन्यास, रेखा, वर्तना, वर्ण और अलंकरण को चित्र–सृजन के तत्व बतलाये हैं। उनकी अवधारणा सबसे अधिक स्पष्ट और महत्वपूर्ण है क्योंकि कामसूत्र, सामरांगण सूत्रधार और अन्य ग्रन्थों में चित्र–सृजन के जिन तत्वों की चर्चा आयी हैं, उन सभी को चित्रसूत्र के दर्शन में सम्मिलित किया गया है। इसलिय मैं चित्रसूत्र में वर्णित चित्र–सर्जना के तत्वों को महत्व देते हुये उनकी विवेचना को विशेष महत्वपूर्ण मानता हूँ।

चित्रसूत्र में चित्र सृजना के तत्व

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
रूपविन्यास	रेखाकर्म	वर्ण विन्यास	वर्तनाकर्म	अलंकरण
1. प्रमाण	1. गति	1. सामीप्य	1. छाया	1. वस्त्र
2. सादृश्य	2. लय	2. दूरी	2. प्रकाश	2. आभूषण
3. क्षय	3. क्रिया	3. भावाभिव्यक्ति	3. लावण्य	3. प्रतीक
4. वृद्धि			4. प्रतीक	4. वातावरण
5. स्थान				
6. माधुर्य				
7. आधार				

रूपविन्यासः रूप विन्यास से तात्पर्य चित्र में आकृतिगत रूप–सृजना से है। कामसूत्र में इस तत्व को रूपभेद बतलाया है लेकिन उसकी सृजना के विषय में कुछ भी नहीं कहा है। रूप ही वस्तु का बाह्य रूवरूप होता है।[1] अतः रूप तो अवश्यंभावी है ही, जिसको चित्रकार निर्मित करता है।[2] इस रूप सृजन के साथ ही चित्र में नृत्य के समान भावाभिव्यक्ति सक्रिय

---

1. Dr. Hongo C. Beigal- Art Appreciation,
   "Form seems to be a quality of object itself. It we want to make an object visible on canvas, we have to imitate the shape."
2. Dr. S.N. Das Gupta - Fundamental of India Art,
   " ....that behind all art creation there is an emotional use to give form."

एवं जागृत होती है।[3] यही कारण है कि भारतीय चित्रण में रूप को चित्र संयोजन का प्रमुख अंग माना गया है।[4] निश्चित ही रूप वह क्षेत्र है जिसका अपना निश्चित आकर और वर्ण होता है।[5] चित्रकार रूप सृजन में अदृश्य कल्पना अथवा पूर्व अनुभव को चित्रपटल पर दृश्य रूप में अभिव्यक्त करता है। यह दृश्य चित्ररूप कलाकार के मानसिक रूप का ही एक प्रकार से प्रतिरूप होता है।

चित्र–सृजना में रेखाकर्म : चित्र सृजना में रेखा का महत्वपूर्ण स्थान है। रेख चित्र का जीवन छन्द है और वह उसका प्राण है। चित्रसूत्रकार बतलाते हैं कि चित्र में सफल रेखा प्रयोग से उसकी सार्थकता उत्पन्न होती है। जिसकी प्रशंसा आचार्य लोग करते हैं।[6] क्योंकि चित्र में चित्रकार जिस विशेष रूप को मूर्त करना चाहता है, उसके अनुसार जीवन छन्द की भंगिमा में उसे विशेष चरित्र और गुण रेखाकर्म द्वारा ही निहित करता है। चित्र की सजीवता के चरम लक्ष्य की, एक ही गुण रेखा के अस्तित्व से समझा जा सकता है।

चित्र–सृजना में वर्ण विन्यासः भारतीय चित्रकला में रेखा के बाद वर्ण को ही महत्व दिया गया है। क्योंकि वर्ण भाव को संचालित करते हैं तथा उसमें उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। चित्र सृजना में रंग ऐसा तत्व है जो दर्शकों को अधिक आकर्षित करता है।[7] भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में अभिनयकर्ता के लिये भावाभिव्यक्ति के आधार पर प्रत्येक रस का संबंधएक विशेष रंग से स्थापित किया है इस प्रकार रस अभिव्यक्ति में रंग विशेष का महत्त्वपूर्ण स्थान है अतः रस चित्रण में वर्ण विन्यास के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाना चाहिए, क्योंकि मान्सोउल्लास में रस चित्रण को वर्ण पर आधारित बतलाया गया है।

चित्र–सृजना में वर्तना कर्मः चित्र में रेखा कर्म और रूप विन्यास के समान ही वर्तना कर्म, छाया व प्रकास से युक्त लावण्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रूप विन्यास और रेखा कर्म के माध्यम से चित्र में भाव अभिव्यक्ति केवल वर्तना कर्म के सहयोग से ही सम्भव है । विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बतलाया गया है कि चित्र में वर्तना उसका एक महत्त्वपूर्ण तत्व है जिसकी विद्यानों प्रशंसा की है इस प्रकास यह कहना उचित होगा कि चित्रकार वास्तविक रूप इस बात पर निर्भर करता है कि चित्रकार छाया और प्रकाश के माध्यम से विषय वस्तु को कितना लावण्ययुक्त प्रस्तुत करता है। छाया और प्रकाश चित्र में उभार और गहराई को भी

3. Dr. R.K. Mukherjee - The Cosomic Art of India.
"Painting select merely one expressive form from a successful series of expressive form shown in dance."

4. ''रूपभेदः प्रमाणानि भाव लावण्य योजनम्।
सादृश्यं वर्णिका भंग इति चित्र षड.गकम्।।
– कामसूत्र, यशोधरा टीका।

5. Nathan Knobler - The visual Dialogues,
"Form in two dimensional art is the are containing colour."

6. ''रेखा प्रशसन्त्यचार्य वर्तना च विलक्षणः।
स्त्रियों भूषणामिच्छन्ति वर्णढयमितरंजना।।
– श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण, चित्रसूत्र (3/41/11)
– चित्रसूत्र– (3/41/15)

प्रदर्शित करते हैं, परन्तु रूप विन्यास में पात्र की लावण्ययुक्त सजीवता इसी के द्वारा उत्पन्न की जाती है।

चित्र सृजना में अलंकरणः भारतीय चित्रकला अलंकारिक रही है, जिसका संकेत विषणुधर्मोत्तर पुराण में मिलता है।[1] अतः अलंकरण का प्रयोग भी निरूद्देश्य नहीं है। अलंकरण भी चित्रण में समरूपता और सादृश्य उत्पन्न करने में सहायक होता है, इस सन्दर्भ में विष्णुधर्मोत्तर पुराण स्पष्ट करता है कि लोगों की आकृतियां देवों जैसे हों, किन्तु अलंकरण से सुशोभित हों। यक्षों के सम्बन्ध में भी उन्हें अलंकारों से सुसज्जित करना चाहिये।[2] अतः अलंकरण के अन्तर्गत वस्तु, आभूषण और रूप सज्जा आती है, जिसका प्रतीकात्मक प्रयोग करके अजन्ता चित्र के मनोभावों को उद्दीप्त किया गया है। महाजनक जातक के विषय का चित्रण अजन्ता चित्रण शैली में अंकित है। अजन्ता चित्रण शैली भारतीय परम्परागत चित्रकला का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस चित्र में महाराजा जनक ने जब राज–पाठ त्याग करके सन्यास लेने की घोषणा की और उससे द्रवित होकर उनकी महारानी शोकाकुल स्थिति में पहुँच गयी, उस समय महाराजा उन्हें मनाने का प्रयास कर रहे हैं। चित्र में सृजना के आधीन रूप विन्यास के तत्व को दोनों आकृतियों में सचित्र रूप से अंकित किया गया है। भाव के तत्व को चिन्ता और निराशा के रूप में मुख–मुद्रा पर अंकित किया गया है गतिमय रेखायें जीवनयुक्त हैं। चित्रकार ने वर्तनाकर्म में तत्व को कौशलपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। भाव के अनुकूल रंगों का प्रयोग है। इस चित्र में चित्र सृजना के सभी तत्व विद्यमान हैं चित्र सृजना के इन तत्वों का सफल प्रयोग देखने को मिलता है।

भारतीय परम्परागत राजस्थानी चित्रकला में राधा और कृष्ण के मिलन का दृश्य चित्रित है इस चित्र में रूप विन्यास, रेखाकर्म, वर्तनाकर्म, वर्णकर्म और अंलकरण कर्म आदि तत्वों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि ये चित्र सृजना में सर्वश्रेष्ठ है। साधन और कृष्ण के रूप विन्यास में भावगत सौन्दर्य है। बहुत ही सजीव और सधी हुई रेखाओं का प्रयोग किया गया है। चित्रकार ने बहुत कोमल तुलिका का स्पर्श दिया है। वर्ण विधान बहुत आकर्षक है। इस चित्र में अलंकरण तत्व विशेष आकर्षण का केन्द्र हैं। सम्पूर्ण चित्र में इन तत्वों ने चित्र सृजना को सफल रूप में प्रस्तुत किया है। मेरा यह मानाना है कि चित्र सृजना के तत्वों का मूल्यांकन की दृष्टि स इस चित्र को माना जायेगा। इस सत्य की पुष्टि होती है। इस चित्र में भी रति भाव के आधीन श्रृंगार पक्ष की अभिव्यक्ति है। चित्र राधा और कृष्ण का आलिंगन युक्त चित्रण है और उनके साथ गोपियाँ भी चित्रित है इस चित्र में अलंकरण तत्व की प्रधानता है। जिसके लिये सुहरे रंग का प्रयोग किया गया है। उपरोक्त विवेचना में मैंने चित्र सृजना के तत्वों को प्रस्तुत किया है और उनके प्रयोग एवं मूल्यांकल के लिये कुछ चित्रफलकों का चयन करके उनके आधीन सृजना के तत्वों की पुष्टि को सिद्ध किया है। इस प्रकार निष्कर्षतः मेरा मानना है कि भारतीय चित्रकला में चित्र सृत्रना के जो तत्व चित्रसूत्र अथवा अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, उनका प्रयोग अजन्ता चित्रण शैली, राजस्थानी चित्र शैली और पहाड़ी चित्रण शैली के चित्रों में स्वतः सिद्ध है।

---

1. '' स्त्रियो भूषणमिच्छान्ति वर्णढयमितरे जनः।।
   – श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण, चित्रसूत्र, (3/41/11)
2. ''देवकाराश्च कर्तव्या नागाः पणिविराजिताः।।
   सालंकारः स्मृतः सर्वे यक्षास्ते अभिहिता भया।।
   – श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण, चित्रसूत्र (3/42/16)

वर्तमान कलाचित्रों के जनक–तैयब मेहता

डॉ. नीता योगेन्द्र पहारिया*

कलाकृतियों में रूपाकारों तथा वस्तुओं की आकृति आंकलन सुनिश्चित चित्रित करने वाले कलाकर्मी तैयब मेहता का जन्म सन् 1925 को गुजरात के कपाडवंज नामक गाँव में बोहरा मुस्लिम परिवार में हुआ था। तैयब मेहता के चित्रों की आकृति में केन्द्रीय महत्व झलकता है। चित्र की आकृति किसी स्त्री–पुरूष के अलावा किसी पशु पक्षी की भी हो सकती है। तैयब मेहता ने अपने कैनवास में अपने समय की आकृतियों में जगह खोजने की कोशिश की है। वे अपनी कला में ''स्पेस'' की संरचना पर खास ध्यान देते हैं। मेहता लम्बे समय से सपाट रंगों के बीच आधुनिक मनुष्य और उसके वातावरण को बहुत थोड़े रूपाकारों के माध्यम से एक नई चित्रकला शैली में चित्रित करते नजर आये हैं।

तैयब मेहता का स्वयं कहना है कि बचपन में उनकी रूचि चित्रकला में बिल्कुल नहीं थी और न ही उनके घर में ऐसा माहौल था जो उनको कला संस्कृति के प्रति आकर्षित कर सके। ''उस समय पारिवारिक इस तरह कोई माहौल नहीं था, कि परिवार में कला अध्ययन के प्रति आकर्षित कर सके।''

तैयब मेहता का दिल सिनेमा की दुनिया की ओर था– बड़े–बड़े सिनेमा के पोस्टर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते थे। सिनेमा के इन विशाल पोस्टरों के चेहरों ने तैयब के मन को उद्धृत किया। शुरू में तैयब ने सिनेमा की दुनिया में भी प्रशिक्षण प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उस समय उनका सम्पर्क मजीद नाम के एक वरिष्ठ चित्रकार से हुआ जो सिनेमा की दुनिया में कला निर्देशक के रूप में काम किया करते थे।

इस तरह से तेयब मेहता ने कला के क्षेत्र में अपना पहला कदम रखा। तैयब जी का परिवार एक व्यापारी परिवार था। व्यापारिक परिवार में जन्म होने के बाद भी तैयब मेहता चित्रकला की ओर आकर्षित हुये। उन्होंने जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स मुम्बई से चित्रकला का प्रशिक्षण लिया। प्रशिक्षण के समय उनकी मुलाकात एम.एफ. हुसैन से हुई और उनके साथ ही रहने लगे।

दो पैसे की एक चाय में दो हिस्सा करके जिस तरह एम.एफ. हुसैन और तैयब मेहता मुम्बई में दिन काटते थे, उन्होंने स्वयं भी नहीं सोचा होगा कि वैश्वीकरण का आधुनिक बाजार उन्हें करोड़ों की शोहरत पाने वाला बना देगा, वह भी उनके चित्र आकृति के चित्रांकन काम के आधार पर।

मुम्बई में तैयब मेहता को हुसैन का ही साथ नहीं मिला बल्कि ''प्रोग्रेसिव ग्रुप ऑफ आर्टिस्टस'' के सभी सदस्यों का साथ मिला। जिस समय तैयब मेहता रहने के लिए मुम्बई

***मान सिंह तोमर संगीत एवं कलाविश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

पहुंचे उस समय भारत में फिल्म शिक्षण एक क्रांतिकारी एवं अद्‌भुत आकर्षण की विधा बन चुकी थी। तैयब मेहता ने तमिल में एक वृत्ति चित्र ''कूडल'' (मिलने की जगह) बनाया जिसे फिल्म फेयर क्रिटिक अवार्ड भी मिला। वह मुख्यतः बांद्रा में ही शूटिंग करते तथा फुटेज तैयार करते। उनका फिल्म स्टूडियो ताड्‌देव में था।

भारत विभाजन के समय तैयब मेहता 22 वर्ष की युवा अवस्था के थे और मुम्बई में रहते हुये उन्होंने भारत विभाजन की हिंसा देखी थी। प्रसिद्ध कला समीक्षक नैन्सी अदाजानिया को दिये एक साक्षात्कार में तैयब मेहता ने विभाजन की विभिषिका को कई उदाहरणों में व्यक्त किया।

जैसे– कुछ पगलाए लोगों ने जवान युवक को सरे आम सड़क पर ही जला डाला। दूसरा भीड़ ने एक व्यक्ति को पीट–पीट कर मार डाला उसके सिर को पत्थरों से चूर–चूर कर दिया। इन सभी दृष्यों को देखकर तैयब मेहता को ऐसा सदमा लगा कि उन्हें तेज बुखार आ गया और कई दिनों तक बीमार रहे। उन्हीं दिनों में वह ''फैमस स्टूडियोज'' में अपनी फिल्म का काम करते थे जहाँ उनका जाना मुश्किल हो गया था। मोहम्मद अली रोड से वह अपने स्टूडियो (ताड़देव में स्थित) नहीं जा सकते थे।

विभाजन की त्रासदी से तेयब मेहता की कल्पना शक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन दिनों मुम्बई के कसाईखानों में बंधे हुय पशुओं की छवि ने तैयब मेहता को काफी विचलित भी किया। वध से ठीक पहले कसकर बंधा हुआ सांड़ तैयब मेहता के लिये केन्द्रीय रूपक था। इस तरह विभाजन की हिंसा को इस युवा कलाकार ने बहुत ही नजदीक से देखा–परखा लेकिन आजादी के 55–60 सालों में हिंसा और भी खतरनाक रूप ले चुकी है।

पश्चिमी आधुनिक कलाकारों में फ्रांसिस बेकन ने हिंसा को अपने चित्रों की केन्द्रीय बिन्दु बनाया। तैयब महता बेकन को एक महत्वपूर्ण चित्रकार मानते हैं। उनकी पेन्टिंग में भी बेकन के चित्र आकृति उभरे हैं। तैयब मेहता कहते हैं कि मनुष्य आकृति के प्रति बेकन की प्रतिबद्धता अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

एम.एफ. हुसैन का प्रसिद्ध चित्र ''मकड़ी और लैम्प के बीच में'' (1956) समकालीन भारतीय कला की एक बड़ी उपलब्धि है, क्योंकि इस चित्र में भारतीय जीवन की एक अनोखी पहचान है। तैयब मेहता का ''त्रिफलक'' (जो अब राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय में है) को भी ऐसे ही चित्रों में शामिल किया जा सकता है, क्योंकि यह चित्र भाषा की शर्तों पर खरा है, और इस चित्र में जो रूपाकार है वह भारतीय जीवन के विराट रूप को सामने प्रस्तुत करता है। एक संथाल उत्सव से प्रेरित होकर त्रिफलक में ''ऐपिक'' गुण है। क्योंकि ''त्रिफलक'' चित्र में जीवन भी है, मृत्यु भी है। जहाँ एक ओर इस चित्र में बसंतोत्सव के रंग और रूपाकार है, तो दूसरी ओर इस हिंसक दुनिया की आकृति संकेत हैं। तैयब मेहता अपने कैनवास में आकृतियों के जैसे मूर्ति शिल्प बनाते हैं यशोधरा डालमिया से तैयब मेहता ने एक लम्बी बातचीत में स्वयं कहा था कि अगर मुझे सुविधा हो तो मैं पेन्टिंग बनाने की बजाय मूर्ति

शिल्प बनाना चाहूँगा। तेयब मेहता के सांड आदि के कुछ मार्मिक हृदय को छू लेने वाले मूर्ति शिल्प बनाये हैं।

उनकी रचनाएँ कला की उस नैतिकता से निकलती हैं, जो प्रकृति को आधार मानती हैं। रचनाओं में विकृतियों का निरूपण मानव त्रासदी का निरूपण है। उनकी कलाकृतियाँ ''कुरूपता का सौन्दर्यशास्त्र'' दर्शाती है जो शुभत्व को अनावृत करने में सहयोग देती हैं। विरूपताओं और विकृतियों का चित्रण प्रकृति का पूर्ण संज्ञान प्रदान करता है। ग्रीक 'ट्रेजडी' का सबसे सशक्त माध्यम के रूप में उभ्रना इसलिए सम्भव हो सका क्योंकि उन्होंने मानव की विद्रूपताओं, विरूपताओं और विकृतियों को विषय बनाया था।

समीक्षक रामचंद्र गांधी ने तैयब मेहता के सम्पूर्ण कला–कर्म को आत्मा–परमात्मा के परिप्रेक्ष्य में देखकर उनके साथ न्याय नहीं किया। तैयब मेहता की कृति ''रिक्शा पुलर'' का विश्लेषण करते हुये उन्होंने वही बातें दोहराई जो ''शांति निकेतन ट्रिपिटक'' में की हैं। रिक्शे पर बैठी स्त्री की पहचान ''आत्मा'' से की है, जो रिक्शा चालक को मार्गदर्शन दे रही है। जबकि चित्र देखने पर उसके विपरीत एक श्रमिक का चित्र उभर कर सामने आता है जो तमाम कठिन परिस्थितियों में अपनी अर्धांगिनी को राजशाही की तरह सुख देने की कोशिश करता नजर आ चुका है। ''डॉसिंग फिंगर'' को समझाते हुये उन्होंने तैयब मेहता की आध्यात्मिकता की ओर इशारा किया है। एक नर्तकी अपने बायें हाथ से अपनी तरफ इशारा कर रही है, जेसे वह कह रही है कि ''वह ही स्वयं आत्मा है'' जो आत्म–पहचान के स्थिरीकरण की चिन्ता से ओतप्रोत है, जो कल्पित–आत्मत्व के ऐसे घेरे में जो ''परावस्था'' की प्रकृति द्वारा सर्वान्त अन्तर्यामी आत्म तत्व के स्वच्छंद नर्तन का इंकार है। नर्तकी का दायाँ हाथ हम सभी से एक आध्यात्मिक प्रश्न पूछ रहा है, कि क्या मैं यक शारीरिक रूप हूँ और मैं यह सभी कुछ नहीं हूँ तो फिर अभिनय में कैसे हो सकता हूँ। तैयब मेहता ने अपनी कलाकृतियों से जो संवाद रचा है, वह इतना परिमित क्यों है ? इसकी वजह ऐसा लगता है प्रदत्त दृष्टि है।

समीक्षक रामचन्द्र गांधी ''रिक्शा पुलर'' या अन्य चित्रों के संबंध में जिस देह आत्म बुद्धि और आत्म बुद्धि की बात कर करते हैं वह अज्ञान ही है। यह बुद्धि वेदान्तिक विवेक दृष्टि नहीं है।

तैयब मेहता के चित्रों में कलाकृतियों में रूप आकारों तथा वस्तुओं का अंकन बड़ी सावधानी तथा सुनिश्चित तरीके से किया। यह अंकन उनके बाहरी स्वरूप को न दर्शाकर इनकी बनवट के तत्वों तथा तार्किक शक्तियों तथा तनावों को दर्शाता है।

तैयब जी की पेंटिंग्स इस बात का उदाहरण हैं, कि पृष्ठभूमि में स्थित अपारदर्शी धरातल की शार्प ऐज की विशिश्टता जो आकृतियों के टूटे हुये रैखिक स्वरूप के साथ समन्वय के रूप में आती है।

तैयब मेहता अपने बिंबों तथा उसके रंगों का चुनाव सही तरीके से करते हैं। इसके

निर्धारण के लिये अपने विवेक तथा भावनाओं का सहारा लेते हैं। उनके चित्र काली के विलक्षण बिंब गहरे नीले रंग में हैं। अपने शक्तिवान निगल जाने वाले लाल मुख के साथ सभी कुछ का समावेश कर लेने वाली देवी की भयानक उपस्थिति।

तैयब मेहता को 1965 ई. में केन्द्रीय कला अकादमी नई दिल्ली द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा गया। इसके बाद आपको 1968 में त्रिनाले भारत स्वर्ण पदक दिया गया। मध्य प्रदेश सरकार द्वारा कालिदास सम्मान, आर्टिस्ट–इन–रेजीडेन्ट विश्वभारती विश्वविद्यालय, बाम्बे आर्ट सोसायटी पुरस्कार तथा जे.डी. राकफेलर फेलोशिप अमेरिका से नवाजा गया। साथ ही फिल्म फेयर क्रिटिक पुरस्कार से भी नवाजा गया।

तैयब मेहता उन थोड़े से चित्रकारों में से है जिन्होंने ''प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप'' के मैनफेस्टों को गम्भीरता से लिया। उसके कथानुसार अपने काम को अंजाम दिया। तैयब मेहता अपने विचारों से कभी शून्य नहीं हुये उनकी गहरी सोच निरन्तर सक्रिय रहती थी, इसलिये वह कहा करते थे कि ''जब मनुश्य बच्चे से युवा होता है तो वह संसार को देखने समझने की कोशिश करता रहता है और जब उम्र के अन्तिम पड़ाव पर होता है तो अपने अंदर देखने समझने की कोशिश करता है।'' इससे यह तात्पर्य है कि उन्होंने इस समाज का जो स्वरूप देखा उसकी तह तक जाने की कोशिश उनके चिन्तन के इस दार्शनिक वक्तव्य में प्रतीत होती है। इसलिये तेयब मेहता ने मिलने वालों का कहना है, कि तैयब मेहता से जो कोई व्यक्ति मिलता है उनसे कुछ न कुछ सीखकर ही लौटता है चाहे वह कला से संबंधित हो या फिर विचारों से संबंधित।

तैयब मेहता अपने काम के प्रति संलग्न रहते थे, कठोर परिश्रम करते थे, कम बोलते थे, काम ज्यादा करते थे, मनुष्य की तकलीफों को कभी नहीं भूलते थे। इसीलिये चित्रकला को छोड़कर फिल्म में लौटने की इच्छा और महाश्वेता देवी के उपन्यास '6 हजार चौरासी की माँ' पर फिल्म बनाने की लालसा के तहत उसकी पटकथा लिखने की तैयारी करना अदि का उल्लेख करते हुये एम.एफ. हुसैन जेसे चित्रकार व फिल्मकार अपने से दस साल से भी ज्यादा छोटे तैयब मेहता के निध्न को भारतीय कला के एक रत्न को अवसाद मानते थे और गहरे शोक में डूब जाते थे। तमाम प्रतिबंधों के बावजूद तैयब मेहता सिंहावलोकन प्रदर्शनी की तैयारी कर रहे थे अंततः वे इसे पूरा नहीं कर सके।

एक चित्रकार के रूप में तैयब मेहता अत्यंत सजग थे। साहित्य सिनेमा (''कूदल'' नामक उनकी लघु फिल्म चर्चित हो चुकी थी) से उनका गहरा लगाव था। उनके चित्र संसार में भारतीय जीवन और परम्परा से परिपूर्णता थे ही पश्चिमी चित्रकारों से भी उन्होंने रचनात्मक रिश्ता बनाया। फ्रांसिस बेकन की चर्चा की ही जा चुकी है साथ ही पिकासो और मातीस से भी संवाद था। तैयब मेहता का संवाद अकेले बेकन से होता तो उनकी अपनी चित्रभाशा सीमित हो सकती थी लेकिन मातीस भी उनके प्रिय चित्रकार थे, इसलिए उनके चित्रों में रंग और भी अधिक बोलते थे। ''दुर्भाग्यवश हम पश्चिमी प्रभावों की उपेक्षा नहीं कर सकते लेकिन जरूरी यह है कि आप अपनी भावनात्मक पहचार बनाये रखें।

जीवन की अपनी गति ंद और तीव्र, उल्लास और अवसाद, प्रेम और भय, जीवन और मृत्यु, धरती और आकाश, रंग और सफेद जब भी कुछ एक जगह दिखाई पड़े और जीवन्त हो जाये और ऐसा लगे कि ये चित्र अभी बोलने या बतियाने वाले हैं तो समझ लो ये चित्र का केनवास तैयब मेहता के होंगे।

तैयब मेहता ने कला के नये तार्किक मुहावरे गढ़े। कला को सदा अपने जीवन से जोड़कर रखा। उन्होंने जीवन में समाज को जिस प्रकार देखा, महसूस किया उसकी कलात्मक संरचना उसके संघर्ष को कैनवास पर की सीधे तो कभी बिम्बों के द्वारा रखने की कोशिश की। तैयब मेहता ने एक प्रकार से सादा जीवन जिया। आधुनिक कला के तथाकथित आडंबर से अपने को दूर रखा इस प्रकार तैयब कलाकार से पहले एक बेहतर इन्सान के साथ महान चित्र कलाकार थे। शायद यही पहचान तैयब मेहता की कलाकारों की दुनिया में अमिट छाप छोड़ेगी। उसी समग्रता के साथ कलापटल पर तैयब मेहता की पहचान हमेशा रहेगी।

संदर्भ–ग्रंथ

1. कला दीर्घा : दृष्यकला की अंतरदेशीय पत्रिका, अक्टूबर 2009 वर्ष 10 अंक 19।
2. भारत की समकालीन कथा ''एक परिप्रेक्ष्य'' (2006)।
3. वृहद आधुनिक कला कोश (2006)।
4. समकालीन भारतीय कला (1 सितम्बर 2010)।
5. कला सम्पदा एवं वैचारिक (अंक 5 जुलाई–अगस्त 2003)।
6. कला सम्पदा एवं वैचारिक (अंक–05, जुलाई अगस्त 2003)।
7. भारत की समकालीन कल ''एक परिप्रेक्ष्य'' (2006)।
8. वृहद आधुनिक कला कोश (2006)।
9. कला दीर्घा : दृष्यकला की अंतरदेशीय पत्रिका, वर्ष 10, अंक 19 (अक्टूबर 2009)।
10. समकालीन भारतीय कला (1 सितम्बर 2010)।
11. कनिका–केमोल्ड आर्ट सेन्टर (एक्स सी 1970 (एक्जीविशन : न्यू देहली मार्च 1970) नोट्स बाय ई. अल्का जी, जी.एम. बूचर, निसीम एजेकील एण्ड गीता कपूर)।
12- GyCH एक्स सी डायगोनल 1970–71 (टेक्स्ट–कृष्ण खन्ना)।
13. करूणाकर, प्रिया, ''तैयब मेहता : एक्सट्रेक्शन एण्ड इमेज'' इन एल.के.सी. 17 अप्रैल 1974 (पेज 25–31)।
14. कपूर गीता (सी), एल.के.ए. एएक्स सी. पिक्टोरियल स्पेस : ए प्वाइन्ट ऑफ व्यू ऑन बोनटैम्पोरेरी इण्डिन आर्ट 1978 (एक्जीविशन : आर.बी.एल.के.ए., 14 दिसम्बर 1977– 3 जनवरी 1978) (एन.पी.)।
15. फेस्टीवल ऑफ इण्डिया कमेटी (यू.के.) एक्स सी. कोन्टेम्पोरेरी इण्डिन आर्ट 1982 (एक्जीविशन : बाम्बे रॉयल अकादमी ऑफ आर्ट्स, द गेस्चर, एण्ड मोटिफ 18 सितम्बर – 5 अक्टूबर 1982 एण्ड स्टेबेरीज, सिचुएशन्स, 9–31 अक्टूबर 1982 (पी 14–5)।

16. ग्रे आर्ट गैलरी एण्ड स्टडी सेन्टर, एन.वाय.यू. कोनटेम्पोरेरी इण्डियन आर्ट : फ्रॉम द चेस्टर एण्ड डेविडा हरविट्ज फेमिली कलेक्शन, न्यूयार्क 1986 एक्जीविशन हेल्ड एज पार्ट ऑफ द फेस्टीवल ऑफ इण्डिया 1985–86 (टेक्स्ट इनक्लूड एसे वाय टी. डब्ल्यू. सोकोलोवस्की, जीव–पटेल एण्ड डेनियल ए हरविट्ज) (पी. 40–2, 59–60 एण्ड 85)।

17. विकेलमेन, अरसुला एण्ड एजेकील, निसीम (इडीएस) आर्टिस्ट्स टुडे : ईस्ट–वेस्ट विजुअल आर्ट्स एनकाउन्टर, बाम्बे : मार्ग 1987 (पी 89–94)।

18. तैयब मेहता : बेयोन्ड नेरेटिव पेन्टिंग, इन इन्टरव्यू विद यशोधरा डालमिया इन ए एच जे 9, 1989–90।

19. ए.के.ए. अवार्ड निनर्स नेशनल एक्जीविशन ऑफ आर्ट, 1955' 1990 न्यू देहली 1990 (पी 52)।

20. फुकुओका, मासानूरी (एड) कोनअेम्पोरेरी इण्डियन आर्ट ग्लेनबेरा आर्ट म्यूजियम कलेक्शन, जिहोजी हेमेजी, जापानः ग्लेनबेरा जापान कं. लिमिटेड 1993 (पी 50–1)।

21. प्रयाग शुक्ला (एड) ड्राइंग 94 न्यू देहली : गैलेरी एस्प्रेस 1994 (टेक्स्ट इनक्लूड्स नोट्स वाय आर मोदी, पी. शुक्ला, के.जी. सुबरामनयन, एस.के. दत्ता, बी. खाखार, जी.एम. शेख, ज्योतिन्दरा जैन एण्ड नीलिमा शेख (पी 91 एण्ड 104)।

22- Deustsche Bank AG, कोनटेम्पोरेरी आर्ट Deustsche Ban बाम्बे, बाम्बे 1995 (पी 33 एण्ड 53)।

23. टाइम्स बैंक एक्स सी, सेलीब्रेशन तैयब मेहता 1996 (एक्जीविशन : टाइम्स बैंक (बाम्बे एण्ड न्यू देहली 14 फरवरी–2 मार्च 1996)।

24. तुली, नेविले, द फ्लेम्ड–मोजेक : इण्डिन कोनटेम्पोरेरी पेन्टिंग, न्यू देहली : हार्ट मेपिन, 1997 (इन्टेड : हैरी अब्राम्स एन वाय 1998) (पी. 44–5, 130, 213–5, 234–5, 246, 247, 273, 277, 332–34, 346 एण्ड 396)।

25- Vad G इण्डियन कोनटेम्पोरेरी आर्ट पोस्ट–इनडिपेन्डेन्स, न्यू देहली : 1997 (एसेस बाय–वाय प्रलमिया ई. दत्ता, सी. सम्ब्रानी, एम. जैकीमोविज–कारले (कार्ले) एण्ड एस. दत्ता) (पी. 16–7, 75 एण्ड 192–7)।

26. आर.एम. पलानीपन मेजर ट्रेन्ड्स इन इण्डिन आर्ट, न्यू देहली, एल.के.ए. 1997 (पी. 109 एण्ड 279)।

27- Vad G एक्स.जी. तैयब मेहता पेन्टिंग्य 1998 (टेक्स्ट कमला गनेश)।

28. निकोलसन, जहांगीर एण्ड मेहता, अनूपा (ऐड) ए कलेक्टर्स आइ : द जहांगीर निकोलसन कलेक्शन–सिलेक्टेड वर्क्स, मुम्बई 1998 (प्रोडयूस्ड इन कन्जक्शन विद एन एक्जीविशन एट द एट द एन.जी.एम.ए. मुम्बई) (पी 50–2 एण्ड 94)।

29- Vad G एक्स सी. तैयब मेहता पेन्टिंग्य विन्टर 1998।

30. नेहरू सेन्टर, एक्स सी. मिलेनियम शो : ए सेन्चुरी ऑफ आर्ट फ्रॉम महाराश्ट्र 2000 (एक्जीविशन : मुम्बई पार्ट 1/14–28 दिसम्बर 2000, पार्ट 2/30 दिसम्बर–13 जनवरी 2001) टेक्स्ट नीना रेज (पी. 61 एण्ड 91)।

31. ताओ आर्ट गैलरी एक्स सी, अर्ली वर्क्सः 8 लिविंग लीजेन्ड्स ऑफ इण्डियन कोनटेम्पोरेरी आर्ट 2000।

32. डालमिया, यशोधरा, द मेगि ऑफ मॉडर्न इण्डिन आर्टः दि प्रोग्रेसिवस, न्यू देहली : ओ.यू.पी. 2001 (पी. 68–75)।

33. अजय कुमार एण्ड मेनन, विजय कुमार (सी) केरला ललितकला अकादमी एक्स सी. मोडर्न इण्डियन

आर्ट 2001 कोच्चि।

34. हार्ट/तुली, एक्स सी द इनट्यूटिव–लोजिक : ए फेस्टीवल इण्डिन कोनटेम्पोरेरी पेन्टिंग 1997 (फेस्टीवल : 1 मार्च–19 अप्रैल 1997 : द फेस्टीवल वाज इन कोलाबोरेशन विद एन.जी.एम.ए., न्यू देहली एण्ड मुम्बई : रूप, बी.बी.सी. ब्रिटिश काउंसिल, मुम्बई CYMROZA गैलेरी मुम्बई, सी.एच.के. टी. केलकटा, जी.वाय.जी.एच. एण्ड मेक्स मुलर भवन मुम्बई, पृथ्वी गैलरी एण्ड पुन्ड, मुम्बई) (पी26)।

35. तुली/एच.टी. ए.यू.सी. द इनट्यूटिव–लोजिक II 1997 (पी 118 एण्ड 119)।

36. तुली/एच.टी. ए.यू.सी. द इनट्यूटिव–लोजिक द नेक्स्ट स्टेप 1999 (पी 214)।

37. तुली/ओ.एस. एयूसी इण्डिया : ए हिस्टोरिकल लीला 2001 (पी 23 एण्ड 130)।

38. तुली/एच.टी. ए.यू.सी. द इनट्यूटिव लोजिक II 1997 (पी 103, 157, 131 एण्ड 177)।

39. तुली/ओ.एस.ए.यू.सी. इण्डिया : द पेसियोनेट–डिटेचमेन्ट 2001 (पी. 226)।

40. बिना शीर्शक : रास रंग, दैनिक भस्कर, 10 जनवरी 2010 (कलाकारतैयब मेहता रचना वर्ष 1984)।

पलायन के सन्दर्भ में वर्तमान उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक अवलोकन (सन् 2000–2015 तक)

डॉ. रविशरण दीक्षित *, दिनेश कुमार जैसाली*

दिनेश कुमार जैसाली*

मनुष्य सदैव सकारात्मक सोच का प्रतिविम्ब रहा है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण ने लाखों सालों से उसके अस्तित्व को बचा कर रखा है। जहां डायनासोर जैसे विशालकाय जीव अपने अस्तित्व को बचाने में नाकामयाब रहे वहीं मनुष्य ने अपनी सूझ–बूझ तथा बुद्धिमत्ता से प्रकृति से सामंजस्यता स्थापित तथा परिवर्तित समयानुसार उसका उपभोग करने लगा। प्राचीनकाल की विषम परिस्थितियों के कारण पाषाणिक जीवन पलायनवादी आखेटक से भोज्य संग्राहक के रूप में व्यतीत होता रहा है।

प्राचीन इतिहास के इस काल में आदि काल के पथिक के रूप में मनुष्य का जीवन अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं तक ही सीमित रहा, इतिहास के मध्यकालीन दौर में पशुचारण सभ्यताओं के संघर्ष धाड़ा ने आदिम पथिक की सामाजिक क्रिया का एक आयाम प्रस्तुत किया, नवीन राजवंशों के उदय तथा साम्राज्यवादी नीति ने मनुष्य को शक्ति एवं सुरक्षा भ्रमणशील जीवन के लिए प्रोत्साहित किया। आधुनिक इतिहास में पुर्नजागरण के बाद आयी औद्योगिक क्रांति, उत्पादन अधिशेष, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद ने मनुष्य की भ्रमणशीलता को उसको सर्वोच्च स्तर पर पहुंचा दिया। विश्व की उदार नीत तथा वैश्विकरण ने भ्रमणशीलता के ऊँचे स्तर को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिससे मनुष्य पलायन के सर्वोच्च स्तर को प्राप्त कर चुका है अब वह इस पृथ्वी से किसी अन्य ग्रह में पलायन के मार्ग प्रशस्त है।

पलायन शब्द अंग्रेजी भाषा के माईग्रेशन शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका अपने मूल स्थान का परित्याग कर किसी अन्य स्थान पर बसने की प्रवृति को माना जाता है जिसकी उत्पत्ति का आधार पलायन है। अर्थात वह सिद्धान्त या मत जिसमें मनुष्य जीवन की सच्चाइयों, कठिनाईयों तथा संघर्ष से दूर भागने की प्रवृति को परिपोषित करता है इसे यथार्थवाद का विरोधी भी माना जाता है। यह संघर्ष न करके भाग जाने की प्रवृति मानी जाती है जिससे नये संघर्ष का सूत्रपात होता है। कुछ सुविधाओं के साथ पलायन को दो प्रकार से परिभाषित किया जाता है। प्रथम प्रकार के पलायन को अन्तःवासी पलायन कहा जाता है। जिसमें मनुष्य एक देश की सीमा के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गमन करता है। जबकि दूसरे प्रकार के पलायन को अर्न्तवर्षिक कहा जाता है। जिससे मनुष्य एक देश की

*सहा0 प्राध्यापक, इतिहास, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

**शोधार्थी, हे0 न0 ब0 ग0 केन्द्रीय वि.वि. श्रीनगर गढ़वाल

सीमा से दूसरे देश की सीमा में गमन करता है। इतिहास गवाह है कि आदिम युग से सभ्यता के प्रारम्भ तक मनुष्य ने अन्तःवर्षीय पलायन कर इस सम्पूर्ण विश्व में मनुष्य के अस्तित्व का प्रसार किया जबकि राजनैतिक संरचना की स्थापना के बाद सीमाओं के निर्माण से मनुष्य की अन्तःवासी पलायन की प्रवृति का शुभारम्भ हुआ।

भारतीय भूभाग में पलायन दो चरणों में प्रारम्भ हुआ। आजादी से पूर्व भारत में विश्व सभ्यताओं का भारत की ओर आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु पलायन हुआ था। जिसमें भारत की पहली नगरीय सभ्यता को इतिहासकारों ने मेसोपोटेमिया से हुए पलायन का परिणाम माना है यही नहीं वैदिक साहित्य में वर्णित विदेह माधव तथा वैश्वानर की कथा, वोगार्ज कोई का अभिलेख इन्द्र का पुरन्दर के रूप में उल्लेख तथा भाषा के आधार पर भी आर्या की सभ्यता को पलायनवादी संस्कृति का प्रतीक मानते हैं। इसके अतिरिक्त शक, कुषाण, तथा इण्डोग्रीक आदि विदेशी शक्तियों का भारत में पलायन प्राचीन इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है वही मध्य ऐतिहासिक काल में इस्लामिक साम्राज्यवादी पलायन तथा आधुनिक काल में उपनिवेशिक पलायन भारत में आने वाले पलायन का प्रमुख उदाहरण है।

भारत के 27वें राज्य उत्तरखण्ड का भौगोलिक विस्तार 28 डिग्री 43 मिनट से 31 डिग्री 27 मिनट अक्षांश से 77 डिग्री 24 मिनट से 81 डिग्री 0.2 तक है। यह एक ऐतिहासिक राज्य है जिसका उल्लेख रामायण में कारूपथ तथा महाभारत में किलिंद प्रदेश में किया गया।

वैदिक साहित्यों के अतिरिक्त इस भूखण्ड का उल्लेख स्कन्द पुराण में केदारखण्ड–मानसखण्ड तथा प्राचीन बौध साहित्य में हिमवन्त प्रदेश में किया। इस प्रदेश का प्रभात भौगोलिक विभाजन 1815 में अंग्रेजों तथा गोरखा के बाद हुई सिंगौली की सन्धि को माना जाता है। 1947 की आजादी के बाद इसका अधिकतर क्षेत्र भारत संघ में शामिल हो गया परन्तु पंवार वंशीय शासको के शासन क्षेत्र वर्तमान टिहरी का विलय 1 अगस्त 1949 में भारत संघ में शामिल हो गया तथा तत्कालीन उत्तर प्रदेश का अभिन्न अंग बन गया। पृथक पर्वतीय राज्य गठन हेतु यहां की जनता के द्वारा अभूतपूर्व संघर्ष के बाद 9 नवम्बर 2000 को भारत 27वें राज्य तथा 11वें हिमालयी राज्य के रूप में गठन हुआ।

अभूतपूर्व सुन्दरता से युक्त देवभूमि पहाड़ झीलों मैदानों के प्राकृतिक विशेषताओं को अपने में एमाहित किया। यह भूमि अनेक जीव जन्तुओं का बसेरा है। यह न केवल भारत में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में अपने धार्मिक–प्राकृतिक जैविक विविधता के लिए जाना जाता है। उत्तराखण्ड की संस्कृति उसकी प्राकृतिक विविधता के समान अनेक विविधता को लिए हुए है जो अपनी सांस्कृतिक विरास को संजोकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर अपने इस मूल्यों का बाहक बना हुआ। इस पृथक राज्य के गठन हेतु यहां के लोगों ने अपना अभूतपूर्व बलिदान दिया ताकि यहां के पहाड़ों के समान समस्याओं का समाधान किया जा सके जिससे यहां से होने वाला पलायन अवरूद्ध हो जाये। जाने माने समाज सेवी एवं पर्यावरणविद् पद्मश्री अनिल जोशी के अनुसार उत्तराखण्ड में राज्य गठन के बाद पलायन की गति तेज

हुयी जिससे वे बेरोजगारी चिकित्सा स्वास्थ्य, सामाजिक विविधिता जैसी समस्याओं को पलायन का महत्वपूर्ण कारण मानते हैं। उनके अनुसार वनों के अत्याधिक दोहन से अनेक पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हुयी जिससे भूस्खलन पानी की समस्या उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में विकराल रूप धारण कर रही है। उनके अनुसार पौड़ी के बांइला गांव में 62 वर्षीय वृद्धा विमला देवी रहती है। बाकी सारा गांव पलायन कर चुका है। ऐसे अनेक अन्य उदाहरण अक्सर दृष्टिगत होते हैं सरकारी आंकड़ों के अनुसार सन् 2000 से 2010 के बीच उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं के अभाव में 86 फीसदी लोगों ने पलायन किया है जिससे राज्य में करीब 2040 प्राथमिक स्कूल बन्द होने के कगार पर हैं। पौड़ी जिले के द्वारा खाल के बसुकी गांव ने इसलिए पलायन किया क्योंकि उनके 10 किमी0 क्षेत्रफल में कोई भी प्राथमिक विद्यालय वर्तमान में नहीं है।

उत्तराखण्ड भारत में होने वाले पलायन से प्रभावित राज्य में से एक है। यहां का पलायन औसत सबसे अधिक है। 11वें हिमालयी राज्यों में सबसे अधिक 25 प्रतिशत पलायन उत्तराखण्ड से ही होता है। सन् 2000 में राज्य गठन के बाद उत्तराखण्ड से पलायन की प्रवृत्ति में इजाफा हुआ। यह पलायन मूलतः पर्वतीय क्षेत्रों से मैदानी क्षेत्रों की ओर हो रहा है। 2001 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड के गांव में 74.89 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती थी जबकि 2011 की जनगणना में यह घटकर 69.70 ही रह गई है। एशियन जनरल फॉर रिसर्च इन साइंस एण्ड ह्यूमिनटिज का अवलोकन करने पर यह दृष्टिगत होता है कि नवम्बर 2000 को उत्तराखण्ड में मैदानी तथा पहाड़ी जनसंख्या का अनुपात लगभग समान था लेकिन 2014–15 के रिसर्च में पलायन का एक अभूतपूर्व नतीजा देखने में आया कि उत्तराखण्ड के 13 जिलों में मैदानी जिलों में 62 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है जबकि 10 पर्वतीय जिलों में मात्र 38 प्रतिशत जनसंख्या घनत्व के साथ हरिद्वार जिला प्रथम स्थान पर जबकि उत्तरकाशी जनपद में जनसंख्या घनत्व 37 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी है। वर्ष 2013 में जून माह की आपदा के बाद एकाएक पलायन में अत्याधिक वृद्धि हुई। गढ़वाल के बद्रीनाथ केदारनाथ तथा चमोली रूद्रप्रयाग में यह पलायन की दर एकाएक बढ़ गयी है। 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तराखण्ड के 75 प्रतिशत गांव पलायन से खाली होने की कगार पर है। हे0न0ब0ग0के0वि0वि0 के शोधार्थियों के सर्वे के अनुसार 2014 तक उत्तराखण्ड के पहाड़ों में निवास करने 60 प्रतिशत जनसंख्या राज्य निर्माण के बाद पलायन कर चुकी है। शोधार्थी के अनुसार 2025 तक उत्तरखण्ड के दूरस्थ गांव पूरी तरह से खाली हो जायेंगें। तथा पहाड़ी क्षेत्र के जिला मुख्यालय पर भी पलायन का दवाब बढेगा तथा जनसांख्या में अभूतपूर्व वृद्धि होगी उत्तराखण्ड सरकार एवं सांख्यिकी विभाग के आंकड़ों के अनुसार उत्तराखण्ड की दशकीय जनसंख्या वृद्धिदर 19.17 रही है जो राष्ट्रीय औसत से अधिक है जबकि उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में 11.34 प्रतिशत है तथा शहरी क्षेत्रों में 48.64 प्रतिशत जनसंख्या वृद्धिदर है। उत्तराखण्ड अर्थ एवं सांख्यिकी विभाग के आंकड़ों के अनुसार 2011–12 में 319 गांव तथा 165 शहरी क्षेत्रों के बीच कराये गये सर्वे में प्रति एक हजार ग्रामीणों पर 864 लोग प्रतिवर्ष पलायन कर रहे हैं। 2012 में केन्द्र सरकार के नेशनल सेम्पल

सर्वे आर्गनाइजेशन की रिपोर्ट के अनुसार माइग्रेशन इन इण्डिया में चौंकाने वाले साक्ष्य सामने आये कि उत्तराखण्ड में गांव से ही नहीं अपितु शहरों से भी लोग पलायन कर रहे हैं। प्रति एक हजार लोगों पर 886 लोग, पलायन कर रहे जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में 344 व्यक्तियों ने 2012 में पलायन किया। शहरी क्षेत्रों में प्रति हजार पुरूषों पर 379 पुरूष तथा प्रति हजार महिलाओं पर 587 महिलायें पलायन कर रही है जबकि गांव में एक हजार पुरूषों पर 151 पुरूष तथा प्रति एक हजार महिलाओं पर 539 महिलायें पलायन कर रही है जिसमें महिलाओं का विवाह भी पलायन का एक कारण है इतना ही नहीं कुमांऊ मण्डल के अल्मोड़ा जिले की जनसंख्या वृद्धि दर ऋणात्मक में 1.73 प्रतिशत तथा पौड़ी जिले की जनसंख्या वृद्धिदर ऋणात्मक में 1.51 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त चमोली, रूद्रप्रयाग, टिहरी, पिथौरागढ़, बागेश्वर जिले में जनसंख्या वृद्धिदर 5 प्रतिशत से कम रही है। उततराखण्ड राज्य में विस्थापित होकर आये व्यक्तियों में से 800295 (लगभग 80.3प्रतिशत) इसी राज्य से 122. 308 (19.23 प्रतिशत) अन्य राज्यों से तथा 7.392 (0.74 प्रतिशत) अन्य देशों से विस्थापित होकर उत्तराखण्ड में बसे हैं।

उत्तराखण्ड सरकार के अर्थ एवं संख्या निदेशालय के आंकड़ों के अनुसार उत्तराखण्ड के 6034 परिवारों के कोई एक सदस्य रोजगार राज्य से बाहर है। वहीं इन्हीं दो वर्षों में ऐसे परिवारों की संख्या 3045 जो देश के अन्य हिस्से में पलायन के कारण के अन्य हिस्से में पलायन के कारण विस्थापित हो गये हैं जबकि 2016 के आंकड़े यह बताते हैं कि विगत 16 वर्षों में उत्तराखण्ड से 32 लाख लोगों ने पलायन किया है। 280615 मकानों पर ताले पड़े है। उत्तराखण्ड सरकार की अर्थ एवं सांख्यिकी विभाग की डायरी के अनुसार यहां देहरादून जिले के पहाड़ी क्षेत्रों से हुआ है। जिसमें 46428 घर पूर्ण रूप से पलायन का शिकार हुए हैं जबकि गढ़वाल मण्डल के अन्य जिलों में जैसे पौड़ी 38764 परिवारों मे, टिहरी में 37750 चमोली में 20763 उत्तरकाशी 12844 रूद्रप्रयाग में 11609 घर पूर्ण रूप से खाली हो गये हैं जबकि कुमांऊ के पिथौरागढ़ में सबसे अधिक 25904 अल्मोड़ा में 38568, नैनीताल में 23949, बागेश्वर में 11556 जबकि चम्पावत में 12727 घर पूरे तरीके से खाली हो गये हैं। पलायन के इस प्रभाव के कारण निरन्तर भूमि के क्षेत्रफल में गिरावट दर्ज की गई है। वर्तमान में उत्तराखण्ड में केवल 13.5 प्रतिशत भूमि में कृषि की जाती है। जबकि राष्ट्रीय औसत 43 प्रतिशत है। नेशनल सेम्पल सर्वे आर्गनाइजेशन की 2003 से लेकर 2008 तक के आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर भूमीहीन किसानों की संख्या 21 प्रतिशत से 37 प्रतिशत हो गई है जिसके अनेक कारण हो सकते हैं जैसे भूस्खलन डैम, निर्माण आदि कारणों द्वारा भूमि का अधिग्रहण हो सकता है। हे0न0ब0ग0के0वि0वि0 के शोधार्थियों के अनुसार 10 पहाड़ी जिलों का उत्तराखण्ड की जी0डी0पी0 में 35 प्रतिशत योगदान है जबकि मैदानी जिलों का योगदान 65 प्रतिशत है जो यह सिद्ध करता है कि पर्वतीय आंचलों के मानव श्रम की गति अत्याधिक कम है। शोधार्थी के विश्लेषण के अनुसार आने वाले कुछ दशकों में ही पर्वतीय जिलों के दुर्गम ग्रामीण क्षेत्र पलायन के कारण जनशून्य हो जायेंगें तथा जिला मुख्यालय तथा छोटे शहरों पर जनसंख्या का दबाव बढ़ेगा।

वर्तमान में उत्तराखण्ड में पलायन अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका जिससे अनेक तरह की नवीन समस्या उत्पन्न हो गयी हैं जैसे सामाजिक ताने–बाने को बहुत बड़ा नुकसान पहुंचा है और अनेक सांस्कृतिक रीति–रिवाज अपनी अन्तिम सांसे गिन रही है जिससे संयुक्त परिवार प्रथा, चकबन्दी व्यवस्था के संकट के कारण न केवल सामाजिक मूल्यों में गिरावट हो रही है बल्कि आर्थिक नुकसान भी अपने चरम पर है। वन्य जीवों से मनुष्य का प्रत्यक्ष संघर्ष होने लगा है अनेक तरह की जड़ी–बूटियां अपना अस्तित्व खो रही है जिससे उत्तराखण्ड के परम्परागत खाद्य पदार्थ कन्दमूल फल भी अपनी पहचान खो चुके हैं। इसके अतिरिक्त सीमावर्ती गावं के विरान होने के कारण अक्सर चीन तिब्बत इन जन शून्य गांव पर अपना कब्जा जमाने लगे हैं। अनेक ऐसे भारतीय क्षेत्र हैं जहां आज चीनी सैनिक अपना दावा प्रस्तुत करते हैं। 2014 में चीनी सैनिकों द्वारा बाराहोती के विरान क्षेत्र पर अधिकार कर लेने से तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। पिछले कुछ वर्षों में उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था में विनिर्माण जल विद्युत तथा खनन के कारण राज्य की विकास दर 15 फीसदी रही जबकि कृषि क्षेत्र में यह विकास दर मात्र 2 प्रतिशत थी और राज्य के मैदानी क्षेत्र में ही औद्योगिक ईकाइयों की आवक बनी रही जबकि पहाड़ इस परिवर्तन से अछूते रहे इससे यह दृष्टिगत होता है कि उत्तराखण्ड में नीति का अभाव है यहां के कृषि क्षेत्र प्रगति के सम्बन्ध में सरकारी मशीनरी फेल साबित हुई है। जबकि पर्यटन व्यवसाय में उत्तराखण्ड में सबसे अधिक लोगों को रोजगार प्राप्त है लेकिन पर्यटकों को आकर्षित करने वाली नीति के अभाव में यह क्षेत्र भी तिरस्कृत हो रहा है। भारत सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार 2008–09 में देश में पर्यटन की आवक 16 प्रतिशत रही जबकि उत्तराखण्ड में यह 6 प्रतिशत के आसपास सिमट कर रह गयी। उत्तराखण्ड सरकार के वर्तमान मुख्यमंत्री हरीश रावत के दैनिक जागरण समाचार पत्र में दिये गये वक्तव्य के अनुसार उत्तराखण्ड से पलायन को रोकने में सरकार की नीतियां अथवा मशीनरी पूरी तरह से नाकामयाब रही मुख्यमंत्री ने अपनी मजबूरी बयां करते हुए सार्वजनिक मंच से कहा कि उन्होंने डेढ़ साल पहले भी तमाम सरकारी महकमों को इस मुद्दे पर ठोस कार्य योजना बनाने को कहा था परन्तु वह अब तक कुछ खास नहीं कर पाये उनके अनुसार सरकार भारी भरकम मशीनरी और तमाम संसाधनों के होते हुए भी पलायन को नहीं रोक पा रही है। कुछ लोग ही अपनी माटी प्रेम के कारण इस मुद्दे पर गम्भीर है जोकि ना काफी प्रतीत होता है। 2015 से पद्म श्री अनिल जोशी ने उत्तराखण्ड से पलायन रोकने के लिए ''गांव बचाव यात्रा'' का शुभारम्भ किया जिसके तहत जन जागरूकता से पलायन की समस्या को जन आन्दोलन बनाना चाहते हैं। जिसमें वे सरकार की नीतियों में कुछ परिवत्रन के साथ पलायन रोकने वाली योजनाओं से लोगों को परिचित करवा रहे है। पलायन से न केवल पहाड़ खाली हो रहे बल्कि उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों पर दबाव के कारण भ्रष्टाचार चोरी प्रदूषण स्लम जैसी सामूहिक समस्याओं के अतिरिक्त व्यक्तिगत समस्या, एकाकीपन कुंठा, मानसिक तनाव जैसी समस्यायें भी उत्पन्न हो रही है। उत्तराखण्ड के पलायन की समस्या में रोजगार स्वास्थ्य शिक्षा आदि कारणों के अतिरिक्त सामाजिक सम्मान की लालसा में निम्नवर्गीय लोगों का गांवों से पलायन एक महत्वपूर्ण

विशेषता है। पलायन यदि शोषण से रक्षा हेतु होता है, के यह भी सत्य है कि पलायन शोषण से मुक्ति का एक साधन भी है परन्तु समस्या के समाधान के रूप में नहीं देखा जा सकता क्योंकि पलायनकर्ता जिस स्थान पर पलायन करता है वहां वह अपने नाते रिश्तेदार, सामाजिक प्रतिष्ठा, मूल पहचान को खो देता है, वहां वह अकेला, असहाय तथा विवश महसूस करता है, जिससे उसकी मानसिक शान्ति का ह्रास होता है। उत्तराखण्ड (गढ़वाल) में अल्पवयस्क बच्चों, लोगों का पलायन इस तरह की समस्याओं का अक्सर सामना करता है जिसकी अभिव्यक्ति अक्सर यहां के लोक गीतों तथा चलचित्रों में दिखाई व सुनने को मिलता है। महिला श्रमिकों का दैहिक शोषण की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। ययह सब पलायन के बाद उत्पन्न होने वाली भयंकर समस्या है, जिसने एक बार पुनः यह प्रश्न खड़ज्ञ कर दिया है कि पलायन का विश्लेषण किया जाए तथा इन समस्याओं के मूल में पहुंच कर उसका निराकरा करने का प्रयास किया जाये।

पलायन के इतिहास को टटोला जाये तो इसका प्रभाव दीर्घकालिक दिखाई देता है। पलायनकर्ता के बच्चे मूलभूत सुविधाओं के अभाव में जीवन यापन करते हैं, जिससे कुपोषण विभिन्न तरह की बीमारियां, असामाजिक कार्यों में संलिप्तता आदि समस्याओं से पलायनकर्ता का परिवार प्रभावित होता है। अपने मूल निवास में होने वाले आयोजनों, सामाजिक कार्यों में पलायन कर्ता को शामिल होना पड़ता है जिससे अर्जित सम्पत्ति का अधिकतर भाग यात्रा व्यय में खर्च हो जाता है।

9 नवम्बर 2000 के बाद उत्तराखण्ड में गठित सरकारों ने पलायन को रोकने हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं एक वर्षीय योजनाओं को लागू किया इसके अतिरिक्त वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली योजना, बेरोजगारी भत्ता केन्द्र सरकार की मनरेगा योजना, गौरा देवी कन्याधन योजना, हीटो पहाड़ योजना, अल्पसंख्यक कल्याण योजना, अनुसूचित जाति एवं जन जाति विकास योजना, बागवानी कृषि योजना, मत्स्य एवं भेड़ पालन योजना आदिक के माध्यम से पलायन रोकने का प्रयास कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त एक अनुमान के मुताबिक 16000 गांव में बरी 45000 एन.जी.ओ. काम कर रहे हैं जो कुछ हद तक पर्यावरणीय पैरोकार के बावजूद पलायन को रोकने में कामयाब हुए है परन्तु इस समस्या के विकरालता के कारण ये प्रयास गौण साबित हो रहे हैं।

उत्तराखण्ड का निर्माण यहां की विषम भौगोलिक परिस्थितियों में जनता की समस्या के समाधान हेतु किया गया था। पहाड़ का पानी तथा पहाड़ की जवानी यहां के काम आये ऐसी मंशा से आन्दोलनकारियों ने आन्दोलन की यज्ञ वेदिका में अपने प्राणों का बलिदान देकर इस नवीन पर्वतीय राज्य की नींव रखी थी परन्तु राज्य निर्माण के बाद उत्तराखण्ड की समस्याओं का समाधान नहीं हो पाया जिस कारण यहां के पानी की पलायन गति पूर्व के सामान हो रही परन्तु यहां जवानी के पलायन की गति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई जिस उद्देश्य हेतु उत्तराखण्ड का गठन किया गया था। यह वर्तमान मे निरर्थक साबित हो रहा है। ऐसा क्यों हुआ। इन कारणों की पड़ताल करने पर निम्नलिखित कारण सामने आये।

शोधार्थी के विचार के अनुसार पूर्ववर्ती पलायन भौगोलिक समस्याओं से ग्रसित होता था परन्तु उत्तराखण्ड राज्य निर्माण के बाद कुछ हद तक अब सामाजिक समस्या बन गई है। अब शहरों की ओर पलायन सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय बन चुका है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

प्राथमिक स्रोत

1. अभिलेखागार
   - अ) सेन्ट्रल लाइब्रेरी एच0एन0बी0 गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल।
   - ब) भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान पूर्व राष्ट्रपति भवन शिमला।
   - स) राज्य अभिलेखागार देहरादून।
   - द) क्षेत्रीय अभिलेखागार नैनीताल।
2. सरकारी अभिलेख, गजेटियर, विधान रिपोर्ट, सूचनायें, सर्वे ऑफ इण्डिया, देहरादून।
3. मौखिक स्रोत –

- साक्षात्कार

4. सरकारी रिपोर्ट तथा मुद्रित सामग्री।
5. प्रशासनिक पत्र सनद् जनसंख्या रिपोर्ट, शोधग्रन्थ व लेख।
6. वन्यजीव संस्थान, देहरादून।
7. दून पुस्तकालय एवं शोध केन्द्र देहरादून।
8. समाचार पत्र
9. मासिक पत्रिका 'ग्रीन टर्न'
10. आर्थिक समीक्षा 2015–16 (अर्थ एवं संख्या विभाग)

भारत में आर्थिक सुधार– उदारीकरण निजीकरण व विश्वव्यापीकरण

डॉ. कुमार विमल लखटकिया*

सन् 1950 और 1960 के दशक में अधिकांश विकासशील राष्ट्रों ने प्रगति और संवृद्धि के लिए जो रणनीति अपनायी उसमें नियोजित अर्थव्यवस्था पर बल देते हुए आर्थिक संवृद्धि तथा सामाजिक क्षेत्रा के महत्व को स्वीकार किया गया। यह अपेक्षा की गयी कि आर्थिक संवृद्धि तथा सामाजिक राजनीतिक विकास से अवशेष का जन्म होगा। एशिया, अफ्रिका और लैटिन अमरीका के अनेक नवोदित विकासशील देशों ने उत्साहपूर्वक विकास के इसी प्रतिरूप को अपनायाए परन्तु दो–तीन वर्षों के भीतर ही वे इसके परिणामो को देखकर निराश हो गये।

70 और 80 के दशक में विश्वव्यापीमन्दी के चलते अधिकांश विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था लडखड़ाने लगी। इसका मुख्य कारण इन राष्ट्रों द्वारा लिया गया भारी ऋण था जो सत्तर के दशक के अन्तिम वर्षों में क्रमशः एकत्रित होने लगा। सार्वजनिक क्षेत्र में जो निवेश किया गया था उसका कोई प्रभवशाली परिणाम नहीं आया और सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकांश उपक्रम के कोई अवशेष पैदा नहीं कर पाये जिससे संवृद्धि में कोई सहायता नहीं मिला।[1] इसन सबका मिला जुला असर यही हुआ कि विकास में परिर्वतन की माँग विश्वव्यापी धरातल पर होने लगी। इस मांग ने नीति निर्धारकों के समक्ष कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किये।

सरकार द्वारा जुलाई 1991 के बाद से देश को आर्थिक संकट से निकालने तथा विकास की गति को तीव्र करने के जो विभिन्न नीतिगत उपाय अपनाए गए वे 1991 से पूर्व अपनाई गई नीतियों से ठीक उलटे थे।[2] यह उपाय निम्नलिखित थे।

1. नियन्त्रित व्यवस्था अर्थात् उद्योग व व्यापार के लिए लाइसेन्स के स्थान पर उदारीकरण की नीति।
2. सार्वजनिक क्षेत्र को संकुचि कर निजीकरण की नीति।
3. आयात–निर्यात के लिए परमिट प्रणाली के स्थान पर विश्वव्यापीकरण की नीति ।

इन उपायों को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार ने जुलाई 1991 में महत्वपूर्ण आर्थिक सुधारों की एक शृंखला की घोषणा की। ये सुधार प्रक्रिया सर्वागी है जिन्हें कई क्षेत्रों में समन्वित क्रियाओं के एक पैकेज के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह सुधार प्रक्रिया इस अवधारणा पर आधारित है कि केवल एक क्षेत्रा में सुधार के लाभ सीमित ही होगे यदि अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों में भी सुधारों को एक साथ लागू नहीं किया जाए।[3] इसलिए इन सुधारों के दायरे में लोक वित्त क्षेत्र, विदेशी व्यापार क्षेत्र, वित्तीय क्षेत्र, बैंकिग क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, बीमा क्षेत्र

*असि. प्रोफेसर, वाणिज्य संकाय, राजकीय महाविद्यालय बाजपुर

ग्राम क्षेत्र, पूंजी बाजार क्षे़ा आदि सभी शामिल है।

विकासशील समाज में वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया और बाजार अर्थव्यवस्था की सहकारी शक्तियों ने शासन की समस्याओं को तो जन्म दिया ही है। इससे अनेक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न भी उठ खड़े हुए है। ये प्रशन तथ्यगत और प्रक्रियागत दोनों प्रकार के हैं। तथ्यगत प्रश्नों का सम्बन्ध मोटे तौर पर सुरक्षा नागरिकों के कल्याणकारी और विकास के कार्यक्रमो विशेष तौर पर निर्बल वर्गों के कल्याण से सम्बन्धित है जबकि प्रक्रियागत प्रश्न शासन और समीति प्रक्रिया पर वैश्वीकरण और प्रति स्पर्धा से सम्बन्धित है।

नई आर्थिक नीति से अभिप्राय जुलाई, 1991 के बाद से किये गये विभिन्न नीतिगत उपायों और परिवर्तनों से है जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उदारीकरण की परिधि में लाकर उसे प्रतियोगी बनाकर उत्पादकता और कुशलता में वृद्धि करना है।[5]

नये आर्थिक सुधारो में मुख्यतः निजीकरण, वैश्वीकरण एवं उदारीकरण को शामिल किया गया है।

1. **निजीकरण**– निजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गग सार्वजनिक उपक्रमों के स्वामित्व एवं प्रबन्ध में निजी क्षेत्र को सहभागिता प्रदान की जाती है अथवा खामित्व एवं प्रबन्ध को किसी क्षेत्र को हस्तान्तरित किया जाता है तथा आर्थिक क्रियाकलापों पर सरकारी नियन्त्रण को घटाकर देश में आर्थिक प्रजातन्त्र स्थापित किया जाता है।6 निजीकरण के लिए सामान्ता विराष्ट्रीकरण, विनियन्त्रण, विनियमत, आर्थिक उदारीकरण, वित्तीय स्वतन्त्रता, विनिवेश, प्रबन्ध व्यवस्था का हस्तान्तरण आदि विधियों एवं उपकरणों का उपयोग का उपयोग किया जाता है।

2. **वैश्वीकरण** – वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व बाजारों के मध्य पारपरिक निर्भरता उत्पन्न होती है और व्यापार देश की सीमाओं में प्रतिबन्धित न सरकार विश्व व्यापार में निहित तुलनात्मक लागत लाभ दशाओं को विदोहन करने की दिशा में अग्रसर होता है।7 आर्थिक नीति में अपनाये इस सुधारवादी उपायों की परिणति आज उदारीकरण एवं निजीकरण की सीमा से निकल कर अर्थ व्यवस्था के विश्वव्यापीकरण के रूप में परिलक्षित हो रही ह।

3. **उदारीकरण**– उदारीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें सरकार आर्थिक क्रियाओं पर लगे हुए प्रतिबन्धों को पूर्ण रूप से हटा लेती है या फिर कुछ सीमा तक युक्त कर देती है।

उदारीकरण की प्रक्रिया तभी सफल है जब देश में निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया की प्रक्रिया को भी अपनाया जाए। आर्थिक सुधारों के तारतम्य में सार्वजनिक क्षेत्रा के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटकर 4 कर दी गयी है।8 विदेशी प्रौद्योगिकी को को अपनाने की प्रक्रिया पहले से आसान है।

इसका उद्देश्य प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का सृजन करना है।

भारत में घरेलू उदारीकरण व बाहरी उदारीकरण की प्रक्रियाएँ साथ–साथ चलने से

कुछ कठिनाइयाँ आने लगी है लेकिन प्रयत्न करने पर हम आधुनिकीकरण, मानवीय विकास व सामाजिक न्याय में ताल–मेल बैठाते हुए अर्थव्यवस्था को अधिक प्रतिस्पर्द्धा व अधिक कार्य कार्यकुशल बना सकते है।9 अन्य देशों ने पहले घरेलू उदारीकरण को सुदृढ़ किया और बाद में बाहरी उदारीकरण का मार्ग अपनाया। समयाभाव के कारण हमें विश्व की प्रतियोगिता में आगे बढने के लिए एक साथ दोनों स्तरों पर कार्य करना होगा।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. डॉ. कोली, भारतीय अर्थव्यवस्था पृ.स.–171
2. डॉ. सिन्हा एंव सिन्हा, व्यावसायिक पर्यावरण पृ.स.–288
3. डॉ. सिंह– व्यावसायिक पर्यावरण पृ.स.–126
4. डॉ. कोली, भारतीय अर्थव्यवस्था पृ.स.–173
5. डॉ. ज्सवाल, ओद्यौगिक अर्थशास्त्र पृ.स.– 236
6. डॉ. मामोरिया, भारत का आर्थिक विकास एवं नियोजन पृ.स.– 162
7. डॉ. सिन्हा एवं सिन्हा – भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना एवं समस्याएँ पृ.स.–113
8. डॉ. कोली, भारतीय अर्थव्यवस्था पृ.स.–177
9. डॉ. ओझा, भारतीय अर्थव्यवस्था पृ.स.– 102

रामायण में कला साक्ष्य

डॉ0 ममता सिंह*

राम और रामायण भारतीय संस्कृति के आधार शब्द हैं। भारतीय संस्कृति के मूल तत्व रामायण में समाये हैं। रामायणकालीन समाज में सभ्यता और संस्कृति अपने वैभवपूर्ण रूप में मिलती है। रामायणकालीन व्यक्ति कलात्मक अभिरूचि सम्पन्न थे। सौन्दर्य चेतना उनके रग–रग में व्याप्त थी। वे सौन्दर्य के पारखी थे और सौन्दर्य के अभिवृद्धि करने के लिए तत्पर रहते थे। वाल्मिकी द्वारा रचित रामायण में बाल–काण्ड के अन्तर्गत अयोध्या के नागरिकों का वर्णन किया गया है कि वो सुसंस्कृत कलाभिज्ञ, सौन्दर्यप्रिय और सहृदय थे। तत्कालीन नगर उस युग के कला केन्द्र थे जिन्हे राजाओं की छत्र–छाया प्राप्त थी जिसके अन्तर्गत वे कलात्मक रूप से पुष्पित एवं पल्लवित होते थे। सौन्दर्य प्रसाधनों के रूप में पुश्पों का प्रयोग, अंगराग, पैरों में अलक्तक–रस, मस्तक पर तिलक, राजप्रसादों, ग्रहों, रथों, नगरों और उद्यानों की कलापूर्ण रचना, चित्रकला, संगीत, नृत्य, ललितकलाओं का परिशीलन – ये सभी रामायणकालीन समाज की कला के उत्कृष्ट साक्ष्य रहे हैं।

रामायणकालीन कला का स्वरूप–

वैदिक युग की सरल एवं प्रारम्भिक कलात्मक प्रवृत्तियां रामायण–काल में आकर असंदिग्ध रूप से एक उच्चतर स्तर तक पहुंच गयीं। रामायण–महाभारत–काल में उपनिशदों का कठोर बुद्धिवाद भक्ति की भाव–प्रवण धारा से परिप्लावित हो गया और इस प्रकार मानव की अन्तरात्मा से प्रवाहित होने वाली रसानुभूतियों ने ही कला की अभिव्यक्ति, कला के सर्जन को प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। कला का अंकन आरम्भ करने से पूर्व कलाकृति का निर्माण सम्पूर्ण हो जाता है। वाल्मिकी का स्थान उन कलाकारों में शीर्षस्थानीय था जो चित्रित की जाने वाली वाली वस्तु की एक भी रेखा अपनी तूलिका से तब तक नहीं खींचते जब तक उन्होंने उसे अपने कल्पना–चक्षुओं से न देख लिया हो। वाल्मिकी ने चित्र–कला, वास्तु–कला, संगीत, रंगमंच, नृत्य और स्थापत्यकला के विषय की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। वास्तव में रामायण का प्रत्येक भाग भारतीय कला के इतिहास के अध्येता के लिए बहुमूल्य है।[1]

परम्परानुसार चित्र–कला प्राचीन भारत में अनुशीलन की जाने वाली कलाओं के अन्तर्गत थी और रामायण में उसका स्थल–स्थल पर उल्लेख हुआ है। जिन चित्रों का वाल्मीकि ने वर्णन किया है, वे अपने आप में कोई स्वतन्त्र कला–कृतियां नहीं थीं। उनका उपयोग प्रायः दीवारों, कक्षों, रथों और भवनों के अलंकरण के रूप में ही अधिक हुआ है। रावण के पुष्पक विमान में स्वर्ण–खचित चित्रकारी की गयी थी। (कांचनचित्रांगम्)।[2] उसकी भूमि पर पर्वत माला चित्रित की गयी थी, पर्वतों पर वृक्षावली सुशोभित थीं, वृक्ष पुष्पों वाले बनाये गये थे तथा पुष्पों को केसर और पंखुड़ियों से युक्त बनाया गया था।[3] उत्तरकाण्ड में

*एसोसिएट प्रोफेसर, चित्रकला विभाग, एम0 के0 पी0 पी0जी0 कालेज, देहरादून

बताया गया है कि उसमें दृष्टि और मन को सुख प्रदान करने वाले अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक दृष्य थे, उसकी दीवारों पर बेल–बूटे (भक्ति–चित्र) बने हुए थे, जिनसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी।[4] रावण के राजमहल के वर्णन में चित्रशाला का भी उल्लेख हुआ है। वस्तुतः साहित्य में चित्रशाला का प्रथम उल्लेख वाल्मीकि रामायण में ही हुआ है। वाल्मीकि ने चित्रशालाओं का जो बहुवचन में प्रयोग किया है (चित्रशालागृहाणि) उनके अनेक प्रकार की चित्रशालाओं का संकेत मिलता है, यथा राजमहलों में सिथत चित्रशाला, निजी चित्रशाला तथा नगर के मध्य स्थित सार्वजनिक चित्रशाला। कैकेयी का राजप्रासाद चित्र–गृहों से सुशोभित था।[5] रावण का शव भी ऐसी पालकी में ले जाया गया था जिसमें सुन्दर पुश्ष चित्रित किये गये थे। 'हाथियों के मस्तक' तथा रमणियों के कपोलों पर सुन्दर चित्रकारी की जाती थी। योद्धाओं की पताकाओं पर तरह–तरह की आकृतियां अंकित रहती थीं। धूम्राक्ष के रथ में मृगों और सिंहों के मुख बने हुए थे। (मृगासिंहमुखैर्युक्तम्)।[6] रावण के रथ में पिशाच–वदन चित्रित थे। राम के प्रासाद में भित्ति–चित्र उत्कीर्ण थे। लंकानगरी के तोरण बेल–बूटों से सुशोभित थे। (लतापंक्तिविराजितैः,)।[7]

अशोक के भव्य पाषाण–स्तम्भों और उनके अलंकरणों से यह निश्चित जान पड़ता है कि उनके पहले शताब्दियों तक पाषाण–शिल्प एवं तक्षणकला का व्यापक अभ्यास किया जाता रहा होगा। इसका समर्थन रामायण से होता है, जिसमें पाषाण एवं धातु–निर्मित कला–कृतियों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। तक्षणकला और स्थापत्य–कला का घनिष्ठ सम्बन्ध था। वाल्मीकि के समय तक मूर्तियों का निर्माण होने लगा था। यह तो सुविदित है कि राम ने यज्ञ–दीक्षा के निमित्त सीता की एक सोने की प्रतिमा निर्मित करवाई थी (यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थ जानकी कांचनी भक्त)।[8] रावण का शयनागार हाथीदांत, सोने, चांदी, मणि, मुक्ता और प्रवाल की मूर्तियों से सुसज्जित था। राम के प्रासाद के शिखर पर मोती–मूंगे के तोरण तथा स्वर्ण प्रतिमायें बनी थी।[9] रावण का सुविख्यात पुष्पक विमान तत्कालीन कला–कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण है। वास्तु सौन्दर्य की दृष्टि से यह अनोखा था। रत्नों की आभा से यह दैदिप्यमान था। स्तम्भों पर अंकित श्रेष्ठ नारियों के चित्रों से यह जगमगा रहा था और उसके नीचे बनी हंसों की पंक्तियों से लगता था कि वे उसे उड़ा कर ले जा रहे हैं।

नारी प्रवेकैरिव दीप्यमानम्। हंसप्रवेकैरिव बाह्यमानम्।।[10]

संगीत की प्रगति पर भी वाल्मीकि रामायण में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। वाल्मीकि ने अपनी रचना को गीत की शास्त्रीय संज्ञा प्रदान की है। रामायण के अध्ययन से उस युग में प्रचलित संगीत के स्वर वर्णित ताल आदि का विशुद्ध परिचय मिलता है। लव–कुश को स्वर ज्ञान से सम्पन्न बताकर वाल्मीकि ने स्वर संगीत के प्रचलन की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। दशरथ की अन्त्येष्टि के अवसर पर साम–गान करने वाले विद्धान शास्त्रीय पद्धति के अनुसार गायन कर रहे थे – जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः।[11] उत्तरकाण्ड में रावण को साम–स्त्रोतों से शंकर की स्तुति करते दिखाया गया है।

वर्ण संगीत का सबसे प्रारम्भिक रूप रामायण का **अनुष्टम्** छन्द है जिसके जनक स्वयं वाल्मीकि थे। अनुष्टम् छन्द एक यमक तालयुक्त पद्य है जिसके चार समान पद होते हैं। तीसरे प्रकार के संगीत में ताल के माध्यम से गायन होता था। तालापचराः नामक संगीतज्ञ ताल संगीत में विशेषज्ञ थे। वनवास से लौटते हुए राम के राजकीय जुलूस में एवं भरत व उसकी सेना के स्वागत में गम्यताल देने वाले संगीतज्ञों का एक अलग दल नियुक्त था।[12] वाल्मीकि के अनुसार गायक की वाणी ही नही वक्ता की वाणी भी अवसर के अनुकूल ध्वनि एवं भावयुक्त होनी चाहिए। राम ने हनुमान के भाशण की प्रशंसा में यही भाव व्यक्त किये।

संगीत के साथ–साथ नृत्य का भी प्रचलन इस समय था। रावण को नृत्य और गीत के साथ भगवान शंकर की आराधना करते हुए चित्रित किया गया है। नृत्य, नृत्त और लास्य इन तीनों प्रकारों का रामायण में उल्लेख है।[13]

रंग और रंगमंच का उल्लेख रावण द्वारा एक रूपकात्मक वर्णन में आया है जिसमें अभिनय का उल्लेख किया गया है। इस समय अभिनय मूक न होकर वाचित होता था।[14]

स्थापत्य के क्षेत्र में रामायणकालीन समाज में आश्चर्यजनक प्रगति की थी। वाल्मीकि द्वारा नगरों, दुर्गों और प्रासादों का जैसा वर्णन किया गया है, वह तत्कालीन उन्नत शील्पशास्त्र का साक्ष्य है। राजमहलों को प्रासाद और सौध कहा जाता है। मकानों में तोरण और चौक होते थे। खिड़कियों पर सोने, चांदी की जालियां रहती थी। मकानों के ऊपर चन्द्रशालाएं होती थी। रावण के महल में चन्द्रशालाओं का आकार पूर्ण चन्द्र या अर्द्धचन्द्र के समान होता था। छत के नीचे कबूतरों तथा पक्षियों के रहने के लिए बनाये गये स्थान 'विटंक' कहलाते थे। राजा दशरथ का महल अनेक कक्षाओं पर निर्मित था।[15] रावण के राजभवन में भी अनेक कक्षाओं और आलयों का वर्णन है। अशोक वाटिका स्थित चैत्य प्रासाद के वर्णन में उसका श्वेत वर्ण होना बताया गया है। बहुत ऊंचा होने के कारण वह आकाश को छूता हुआ प्रतीत होता था।[16] यद्यपि स्थापत्य के अन्तर्गत अनेक सौन्दर्यीमय वर्णन किये गये हैं लेकिन भवन निर्माण सामग्री का उल्लेख कम होता है। केवल कुछ स्थानों पर इष्टका तथा सुधा या चूनें के उपयोग के संकेत दिये गये हैं।

रामायण के कला साक्ष्य भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम पृष्ठ हैं, जिन्हे जितना पढ़ते जायेंगे उतना ही गर्वित होंगे कि हमारी प्राचीन संस्कृति कला के शिखर पर थी। समस्त रामायण में कवि मनीशि वाल्मीकि द्वारा जिस प्रकार सृजन और सौन्दर्य का सम्मिलन हुआ है वह कला अनुरागी मन को आनन्दित करता है। जिस प्रकार कथानक के माध्यम से तत्कालीन कलाप्रेमी समाज की व्याख्या की गयी है उसके कारण समस्त विश्व में भारतीय संस्कृति के कलात्मक चमत्कार एवं सौन्दर्यमूलक चेतना की प्राण प्रतिष्ठा ही हुई है।

सन्दर्भ –सूची

1. जार्ज सी0 एम0 वर्डवुड – दि इन्डस्ट्रियल आर्टस ऑफ इण्डिया – भाग–1, पृष्ठ–25।

2. वाल्मीकि – रामायण – 6 / 121 / 24 ।
3. वाल्मीकि – रामायण – 5 / 7 / 9 ।
4. वाल्मीकि – रामायण – 7 / 15 / 38 ।
5. वाल्मीकि – रामायण – 2 / 20 / 13 ।
6. वाल्मीकि – रामायण – 6 / 51 / 28 ।
7. वाल्मीकि – रामायण – 5 / 2 / 18 ।
8. वाल्मीकि – रामायण – 7 / 99 / 7 ।
9. वाल्मीकि – रामायण – 2 / 15 / 32 ।
10. वाल्मीकि – रामायण – 5 / 7 / 7 ।
11. वाल्मीकि – रामायण – 2 / 76 / 18 ।
12. वाल्मीकि – रामायण – 2 / 99 / 49 ।
13. वाल्मीकि – रामायण – 2 / 20 / 10 ।
14. आर0 बी0 जागीरदार – ड्रामा इन संस्कृति लिटरेचर – पृष्ठ 43 ।
15. वाल्मीकि – रामायण – 2 / 3 / 31–2 ।
16. वाल्मीकि – रामायण – 5 / 15 / 618 ।

नेहरू युग में दलित चेतनाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. पूजा मिश्रा*

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के सम्मुख राजनैतिक, आर्थिक एवं सामजिक क्षेत्रा से संबन्धित अनेक समस्याएं विद्यमान थीं तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के नेतुत्व में इस दिशा में विकास के कई सार्थक कार्य किए गए। यदि भारत को अपनी निर्धनता और असमानता दूर करनी है तो भारत को समाजवाद और लोकतंत्र का रास्ता अपनाना होग। यद्यपि इसके लिए वह अपने नरीके निकास सकता है और इस आदर्श को अपनी प्रतिभा के अनुकूल ढाल सकता है।[1] साम्राज्यवाद व फांसीवाद का नेहरूजी वे कड़ा विरोध किया था क्योंकि ये विचारधाराएं मानवता की विरोधी है।

नेहरूजी का मानना था कि साम्राज्यवाद का निषेध था। उन्होंने इनके विरोध में कहा थ कि–

1. साम्राज्यवाद शोषण पर आधारित है। यह हिंसा और उत्पीडनकारी प्रक्रिया को अपनाकर शोषण को बढ़ावा देता है, जिससे सामाजिक विषमता की खाई और भी गहराने लगती है।
2. साम्राज्यवाद के परिणाम राजनीतिक अत्याचार और सामाजिक विघटन के रूप में प्रस्तुत होते है।
3. ये स्वतंत्रता, प्रगति एवं शांति के विरोधी हैं।
4. ये लोकतंत्र की भावना के विरूद्ध हैं।

साम्राज्यवाद एक ऐसी विचारधारा है जो सामज को दो गुटों में विभाजित कर देती है– शोषित एवं शोषक, जिसमें सामान्यतः शोषित वर्ग का अधिकांश हिस्सा दलित समाज ही होता है। यह विचारधारा दलित प्रगति के तथ पर सबसे बड़ी बाधा बन सकती थी। नेहरू ने धर्म–निरपेक्षता को मार्ग अनुसरित किया। अन्होंने ईश्वर के भेदभाव, आडंबर से मुक्त मानवता के समर्थक थ। उन्होंने लोकतंत्र की धारणा को सर्वाधिक पसंद कियाए ये लोकतंत्र का ही परिणाम है कि आज दलित हर राह, पथ पर आगे बढ़ने के लिए मुक्त है। हम अंबेडकर को दलितों को मसीहा कहते हैं पर ये बात हम नहीं नकार सकते कि अंबेडकर नेहरू मंत्रिमण्डल के विधिमंत्री थे और नेहरू की सहमति के बिना दलितों को वो अधिकार व विशेषाधिकार से प्राप्त हैं। नेहरू युग में राममनोहर लोहिया ने भी दलित चेतना के लिए कार्य किया वे एक सच्चे समाजवादी थे।

विलक्षण प्रतिभा के धनी डॉ. राम मनोहर लोहिया बीसवीं सदी के महान समाजवादी थे। उनका जीवन दुखी पीड़ित और शोषित जनता को समर्पित था। जीवन भर वे उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे। उनका मन भारत की गरीबी से विक्षुण्ध था, लेकिन

*(राजनीतिक विज्ञान) जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर

उन्होंने कभी भी अपने को केवल भारत की भूख तक सीमित नहीं रखाए समस्त मानव जाति की भूख उनके विचार और दुख का कारण बनी। उनके सपनों में ऐस विश था। जिसमें गोरे– कालेए स्त्री, पुरूष, गरीब, अमीर और ऊँच– नीच के बीच कोई भेद न हो। दुखी, दरिद्र और दलित के लिए वे निरतंर और विभिन्न रूपों में संघर्ष करते रहे। लोहिया मार्ग के वर्ग संघर्ष की धारणा से पूर्णतः सहमन नहीं थे। उनका मानना था कि अनुचित साधनों से हम कभी भी अच्छे लक्ष्य को प्राप्ति नहीं कर सकते, इसके लिए हमें उचित साधनों को सहारा लेना चाहिए।[2] लोहिया की वर्ग संघर्ष मे आस्था थी किंतु जानियों के बोध होने वाले संघर्ष से भी उन्होंने स्वयं को भी दूर नहीं रखा।

लोहिया ने परमपरावादी तथा संगठित साम्राज्यवाद को 'एक मरा हुआ सिद्धांत' तथा 'मरणशील व्यवस्था' कहा है। इसलिए उन्होंने नवीन समाजवाद का नारा लगाया।[3]

1. ससानता
2. लोकतंत्र
3. अहिंसा
4. विकन्दीकरण

विश्व–बंधुत्व पर आधारित विश्व संगठन उनके समाजवाद का पांचवा आधार है। हिंदुस्तान के समाजवाद को अब आध्यत्मिक और भौतिक, दोनों को वैचारिक पुट देकर खड़ा किया जाए, यह नहीं कि फिर खिचड़ी बनाई जाए, बल्कि एक ऐसे आधार पर खड़ा किया जाए कि जिसमें मनुष्य के दोनों तत्वों की सहायता मिल सके।[4] लोहिया सर्वाधिकारवाद के प्रबल विरोधी थे और लोकतंत्र के प्रबल समर्थक । वे समाजवाद व लोकतंत्र को एक –दूसरे का पूरक मानते थे।

डॉ. लोहिया की सात क्रांतियाँ– लोहया ने सदैव ही जाति–प्रथा और जातिवादी विष को समाप्त करने के प्रयास किए और सामाजिक जीवन में स्त्रियों के लिए समान अधिकार पर बल दिया। डॉ. लोहिया ने अपने सामजवाद की पुष्टि के लिए मान क्रांतियों का आह्वान किया। ये सात क्रांतियाँ सामजवाद की मूल भावना के अनुरूप होने के कारण उसका मूलाधार ही हैं।[5] लोहिया की सात–क्रांतियाँ हैं–

1. स्त्री– पुरूष की समानता के लिए क्रांति ।
2. रंग– भेद अथवा प्रजाति भेद पर आधारित राजकीय, आर्थिक और असमानता के विरूद्ध क्रांति।
3. संस्कारगत, जन्मजात, जाति प्रथा के विरूद्ध, पिछड़े वर्गो को विशेष अवसर के लिएर क्रांति।
4. विदेशी गुलामी के विरूद्ध और स्वतंत्रता तथा विश्व लोकराज्य के लिए क्रांति।

5. निजी पूंजी की विषमताओं के विरूद्ध और आर्थिक समानता के लिए तथा योजना द्वारा पैदावार बढ़ाने के लिए क्रांति।

6. निजी जीवन अन्यायी हस्तक्षेप के विरूद्व और लोकतंत्री पद्धति के लिए क्रांति।

7. अस्त्र–शस्त्र के विरूद्ध और सत्याग्रह के लिए क्रांति।[6]

उनका मन था कि सत्याग्रह ही एक मात्र साधन है, जिससे दलित चेतना विकसित करके अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने की क्षमता को संगठित किया जा सकता है। जाति प्रथा के विरोध में उनका मन स्पष्ट था। जाति प्रथा की समाप्ति के लिए उनका सुझाव था। कि–

1. जाति प्रथा पर हजारों वर्षों से लगातार हमले होते रहे हैं, किंतु कामयावी नहीं मिली। कारण यह है कि अब तक जाति–प्रथा पर केवल डेढ़ मुखी हमले हुए है, एक धार्मिक और आधा सामाजिक। सामाजिक हमला संपूर्ण हो, इसके लिए यही जरूरी है कि अब रोटी के साथ–साथ बेरी वाले मोर्चे पर भी हमला हो चाहे मौखिक ही सही लेकिन ऐसा हमला बोला जाना चाहिए।

2. धार्मिक और सामाजिक हमले के साथ–साथ तीसरा राजकीय व्यस्क मताधिकार और पिछड़ी तथा दलित जातियों के विकास हेतु विशेष अवसरों की व्यवस्था के रूप में होना चाहिए। लोहिया इस संबंध मे सभी जातियों के लिए समान अवसर की बात को स्वीकार नहीं करते, वे निचली जाति के लोगों के विकास हेतु विशेष अवसर देने की आवश्यकता पर बल देते हैं। जब सबको समान अवसर मिलेगा, तो उदार शिक्षा की पांच हजार वर्ष पुरानी परंपरा की जातियां ही सिर पर सवार रहेगी। छोटी जातियों में जिस किसी के पास खास प्रतिभा होगी वह इस परंपरा को तोड़ सकेगा और ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत ही थोड़ी होगी। कई हजार वर्षों से चल आ रहे जातिगत श्रम–विभाजन के कारण योग्यता, गुण और संस्कार के अटूट जैसे विभाग बन गए हैं। निचली जातियों के लिए समान अवसर नहीं वरन् विशेष अवसर ही इन दीवारों को तोड़ सकते हैं। लोहिया समाज की निचली जातियों में इन पांच वर्गों को शामिल करते हैं महिला, शूद्र हरिजन, मुसलमान और आदिवासी ।

3. जाति प्रथा पर चौथा हमला आर्थिक मोर्चे पर होने चाहिए। मजदूरी बढ़ाई जाए लाभकर जोतों से लगान खत्म किया जाए अज़ैर जमीन जोतने वाले का ही जमीन पर अधिकार समझा जाए।

4. ऊँची जाति के युवाजनों को अब पूरी नाकत से जाति–प्रथा के विरूद्ध उठना चाहिए। इसे अपने स्वार्थों पर हमारे की बजाय जनता को नवजीवन देने की क्षमता के रूप में देखा जाना चाहिए।

5. नीची जातियों के युवाजनों के कंधों पर भारी बोझ आ जाना है यदि उच्च जाति के

युवाज जाति प्रथा का विरोध करे। उनका सर्वोपरिध्येय यही होना चाहिए कि उन्हें ऊँची जातियों की सभी परंपराओं को, शिष्टाचारों का स्वांग नही रचना है, उन्हें शारीरिक श्रम से कतराना नहीं है, केवल अपने ही स्वार्थ को नहीं देखना है, तीखी जलन में नहीं पड़ना है, वरन् यह समझकर कि वे कोई पवित्र कार्य कर रहे हैं।

लोहिया ने इस बात पर भी बल दिया कि निचली जातियों के संगठनों के द्वारा राजनीतिक भूमिका को अपनाया जाना चाहिए। निचली जाति के व्यक्ति कुल मिलाकर समाज में बड़ी संख्या में है इसलिए उनकी राजनीतिक सक्रिय बहुजन हितकारी की स्थापना में सहायक होगी। लोहिया भारत के समस्त दलित वर्ग के द्धार के लिए निरतंर संघर्षरत रहे। उनका यह संघर्ष दलीय य राजनीतिक न होकर मन की पूरी सच्चाई से किया गया संघर्ष था।

नेहरू युग में मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धांत भी प्रचलित रहा जिसमें संपूर्ण समाज को बुर्जुआ और सर्वहारा दो वर्ग में विभक्त कर सर्वहारा वर्ग द्वारा सशक्त क्रांति से बुर्जुआ वर्ग को समाप्त कर वर्ग हीन समाज की स्थापना करना उद्देश्य था परंतु भारत जैसे अहिंसावादी देश में इसे पूर्णताः स्वीकार ही नहीं किया गया।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नेहरू युग में ही दलित चेतना के क्षेत्र मे कम काम हुआ हो पर जितना भी हुआ वह प्रभावशाली व दूरगामी हुआ। संविधान जैसी कृति इसी युग की देन है, इसी युग ने राम मनोहर लोहिया के समाजवाद को दलितों का सामजवाद बनाकर प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया।

संन्दर्भ–सूची

1. 1919 में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में चचा नेहरू द्वारा दिए गए भाषण का एक अंश
2. लोहिया, डॉ. राममनोहर, मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म पृ. 138
3. लोहिया डॉ. राममनोहर, बिल टू पावर एण्ड अदर राइटिंग्स, पृ. 132
4. शरद ओंकार (संपादित), लोहिया के विचार, पृ. 236
5. शरद ओंकार (संपादित)ए लोहिया के विचार, पृ. 65–67
6. लोहिया, मार्क्स, गांधी एंड सोशलिज्म, पृ. 531

दादा भाई नौरोजी का धन निष्कासन सिद्वान्त : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. अरविन्द सिंह गौर*

भारतीय विद्वानों में ब्रिटिश आर्थिक नीति का वास्तविक स्वरूप उजागर करने वालों में दादा भाई नौरोजी अग्रणी थे। उन्होनें भारतीय जनता की गरीबी के कारणों का वृहद विवेचन किया और जनता की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए गहन एवं सूक्ष्म खोज बीन की क्षेत्रों की जनसंख्या, भूमि, उर्वरकता धीरे–धीरे निम्न हो रही थी। गरीबी, सूखा, बेरोजगारी, भुखमरी, कुपोषण जैसी समस्याएँ बढती जा रही है थी।दादा भाई नौरोजी के वैचारिक दृष्टिकोण में आर्थिक पहलू सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होनें ब्रिटिशों द्वारा अपनाई जा रही नीति को उजागर किया।[1] उन्होनें धन का निष्कासन 'सिद्वान्त प्रस्तुत कर भारतीयों को ब्रिटिश सम्राज्यवाद के प्रति सचेत किया । भारत में व्याप्त गरीबी का प्रमुख कारण उन्होंने ब्रिटिशों की आर्थिक नीति को माना। उनका कहना था कि भारत की गरीबी निरन्तर वृद्धि का कारण अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों के अर्न्तगत साधनों का निश्कासन के फलस्वरूप पूँजी का संग्रह न हो पाना है।[2] इस सन्दर्भ में उन्होनें नैतिक तथा आर्थिक दोनों ही निष्कासनों का जिक्र किया है।

ब्रिटिशों ने भारत को अधीनस्थ देश माना और उस पर शासन करना ही अपना हक समझते थे। कर्मचारियों द्वारा प्राप्त किए गए समस्त प्रशासनिक तथा व्यावसायिक कौशल, अनुभव उनके जाने के साथ ही भारत से बाहर हो जाते थे।[3] फलस्वरूप भारत नैतिक तथा आर्थिक दोनों ही तरह की सम्पति से हाथ धो रहा था। ब्रिटिशों द्वारा भारतीयों को उचित नेतृत्व न देने का कारण भारतीयों के प्रति अपनाई जाने वाली भेद–भाव पूर्ण नीति थी।[4] ब्रिटिश सत्ता भारत को अपने आर्थिक उपनिवेश के रूप में मानती थी और इसे एक बाजार के रूप मे ही देखती थी। इसी को क्रेन्द में रखकर ब्रिटिश आर्थिक नीति को तैयार किया गया था। जिससे ब्रिटिशों की आर्थिक स्थिति तो उन्नत हुई पर भारतीयों की गिरती अर्थव्यवस्था मे सुधार का कोई कार्य नहीं किया जा रहा था। किसानों को कच्चे माल की सही कीमत नहीं मिलती थी परन्तु तैयार माल अधिक कीमत पर खरीदने के लिए वे विवश थे। यही भारत के आर्थिक शोषण का कारण था। उत्पादन कार्य में मुख्य लागत श्रमिक का श्रम होती है जिस पर भारतीयों का हक था, ब्रिटिश श्रमिकों को दी जाती है फलतः भारत में गरीबी और बेरोजगारी का स्तर निरतंर बढता जा रहा था।

ब्रिटिश शासनकाल में भारत मे रेलवे एवं संचार साधनों के सुधार का मुख्य कारण भी ब्रिटिश आर्थिक लाभ की भावना ही रही थी। इन विकास कार्यों में विनियोजन हेतु विदेशी पूंजी का प्रयोग किया जिस पर इच्छानुरूप ब्याज की दर तय कर वसूली गई और यह शोशण का एक अनोखा उपाय था। भारत मे ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य पेशा वैभव और

*सहायक प्राध्यापक इतिहास रा.सं.सं. श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर देवप्रयाग, उत्तराखण्ड

विलासपूर्ण वस्तुओं का आयात और इसके एवज में चाँदी का निर्यात करना था।[5] यह इंग्लैण्ड के लिए लाभदायक और भारतीय हितों के विरूद्व स्थिति थी। सेवाएँ भी धन के निष्कासन का स्त्रोत थी। भारतीयों के लिए अनुपयोगी निर्माण कार्य किया गया जिस पर बहुत अधिक पूँजी का प्रयोग किया जिसका भुगतान पूंजी पर उच्च ब्याज दर लगाकर भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण किया गया। नियुक्तियों मे भी योग्य होने के बावजूद भी भारतीयों की अनदेखी करके विदेशियों को नियुक्त किया गया। जिससे न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था पर असर पडा वर्न भारतीय हीनता की भावना से ग्रसित होने लगे जिससे उनका नैतिक पतन प्रारंभ हो गया। ब्रिटिश शासन की नीतियों से भारतीयों को पद, प्रतिष्ठा, धन इत्यादि से दूर रहना पड़ता था।

दादा भाई नौरोजी ने विभिन्न क्षेत्रों की आबादी, भूमि, पैदावार तथा व्यय संबधी आंकडें एकत्रित किए गए। उनके अध्ययन का मुख्य केन्द्र ब्रिटिश शासन की कार्यप्रणाली और उससे होने वाले भारतीयों को लाभ एवं हानि थी। उन्होनें आमदनी, व्यय, व्यापार, उपज की पैदावार, वस्तुओं की क्रय–विक्रय, भारत में ब्रिटेन से हुए आयात निर्यात का सूक्ष्म अध्ययन किया। अपने विचारों को नौरोजी ने अपनी दो पुस्तकों ''भारत की गरीबी'' और ''भारत में अंग्रेजों का अशोभनीय शासन'' में प्रस्तुत किया। दादा भाई नौरोजी ने जो विचार नैतिक निश्कासन एवं धन से संबधित भाषण, अध्ययन पत्रों आदि में व्यक्त किए वही निश्कासन सिद्धान्त के नाम से जाने गए। अन्य अर्थशास्त्रीयों ने इसी सिद्धांत को अन्य नामों से अभिहित किया है जैसे – भौतिक बहाव ' 'खूनी बहाव' 'प्राकृतिक प्रसाधन बहाव' आदि। अंग्रेजों ने भारतीय संपदा का शोषण तो किया परंतु शोषित संपदा का प्रयोग भारतीयो के लिए न करके भारत से बाहर भेजा जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था चरमराने लगी।

दादा भाई नौरोजी ने धन निष्कासन को दो भागों मे बांटा – आंतरिक एवं बाह्य। विदेशी निश्कासन आंतरिक निष्कासन का एक प्रकार था। भारत में उत्तपन उत्पादों पर आरोपित करों से प्राप्त धन का प्रयोग जिस तरह से किया जा रहा था वह विदेशों मे हस्तांतरित करने जैसा था। ब्रिटिशों द्वारा क्रय शक्ति को प्रभावित करने के लिए ऋण तथा करों के द्वारा जिस आर्थिक नीति को अपनाया गया वह भी भारतीय अर्थव्यवस्था के शोषण का एक तरीका था। भारतीय वस्तुओं पर करों का अत्यधिक बोझ था और यह धन विदेशों मे निर्गत हो रहा था पुनः वही धन का उपयोग ऋण के रूप में भारत मे किया जाता था। डॉ. बी. एन. गागुली ने भी 'भारतीय करारोपण के माध्यम से निर्धन देश की जनता का विदेश निर्गमन और उसका शहरों पर व्यय पर प्रकाश डाला था। जिस धन को भारतीय शहरों में केवल उच्च एवं मध्यम वर्ग के लाभ के लिए खर्च किया जाता था, और इस श्रेणी के अंतर्गत विदेशी या सामंत, जागीरदार आदि ही आते थे और एक सामान्य वर्ग लाभ से अधूता रह जाता था यह भी आर्थिक निष्कासन का एक प्रकार था।[6]

नौरोजी ने कहा था कि जिन करों की बसूली भारतीय जनता से की जाती थी उसके स्थान पर भारतीयों को कोई भी सुविधा उपलब्ध नहीं प्रदान की जाती थी। ब्रिटिश शासन द्वारा प्रशासन पर किए गए व्यय की मात्रा अत्यधिक थी और भारत में ब्रिटिश शासन को याथावत्

बनाए रखने का खर्च भी भारतीय कोष पर बोझ था। लंदन में एंग्लो ओरिन्टल सोसायटी के सचिव श्री एफ.एस.टर्नर ने भारतीय खर्चीला स्वभाव और खर्च में लगाए वृद्वितथा दूसरी भारतीय आय के स्त्रोतों में लचीलापन के अभाव को दर्शाया।[7]

ब्रिटिश सरकार की आय का प्रमुख स्त्रोत भूमि,स्टाम्प, तथा नमक उत्पादन था जो कुल आय का 75% था जिसका बोझ भारतीय निर्धन जनता को वहन करना होता था। जबकी अफीम के व्यापार के एकाधिकार द्वारा ब्रिटिश सरकार कुल आय का 16% प्राप्त करती थी।

भारतीय सेना (जल एवं थल) में खर्च की दृष्टि से 43% ऋण और गारंटी था जो मुख्यतया विदेशों को भुगतान किया जाता था। न्याय पर 18% और नागरिक प्रशासन पर 16% खर्च किया जाता था। स्पश्ट रूप से सुरक्षा, प्रशासन और कानून व्यवस्था के संचालन में कुल व्यय का 59% खर्च होता था जबकि अंग्रेजों को ब्याज के रूप में 18% भुगतान किया जाता था। सामाजिक उदेश्यो के लिए केवल 15% व्यय होता था। लेकिन इस व्यय पर भी नौरोजी को विश्वास नहीं था और इसे शंका की दृष्टि से देखते थे ।[8]

दादा भाई नौरोजी ने 'फाइनेंशिल एडमिनिस्ट्रेशन' के लिए 1871 ई.में कई लेख लिखे जिसमें 100 मिलियन पॉण्ड के ऋण और ग्रह प्रभाव का उल्लेख करते हुए इसे आड़े हाथों लिया। उनका कहना था कि यूरोपियन तथा अन्य विदेशी श्रमिकों से उतना सस्ता काम नहीं कराया जा सकता जितना कि भारतीय श्रमिकों से। विदेशी व्यक्तियों को सेवा में रखने से जो भी उसकी बचत, पेंशन, भत्ते तथा अवकाश के पश्चात् देय धन राशियाँ हैं, वे सब विदेशों में चली जाती है और यह भारतीय धन का पूर्ण निश्कासन है तथा यह व्यवस्था भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अनुचित है। इसके परिणामस्वरूप भारतीयों को जिस कार्य, योग्यता, कुशलता का अनुभव होना चाहिए था, उससे वे वंचित रह जाते हैं।[9]

1870 ई. से 1900 ई.के दौरान रेलवे निर्माण और सिंचाई संबंधी परियोजनाओं हेतु ऋण में तीव्र वृद्धि दृष्टिगत हुई। दादा भाई नौरोजी ने प्रत्याभूतित रेलवे ऋण के बारे में कटु आलोचना की और इस सम्बंध में लिखा कि प्रत्याभूतित रेलों के विकास तथा निर्माण कार्यों में फिजूल खर्ची हुई है। जॉन स्ट्रेची ने भी इस संबंध में अत्यधिक व्यय एवं बर्बादी को स्वीकारा और इसे भारतीय आंतरिक प्रशासन व्यवस्था पर अकल्पनीय भार की संज्ञा दी।[10]

1870 के दशक में जब रेलवे निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ तभी सिंचाई कार्य को प्रांतों की सुपुर्द करते हुए यह नियम प्रतिपादित हुए कि इन कार्यों से जो आय प्राप्त हो, उसके पश्चात् जो भी अतिरिक्त खर्च हो उसकी पूर्ति सामान्य वित्त के माध्यम से हो। दादा भाई नौरोजी ने इस व्यवस्था की प्रमुख तीन कमियों का उल्लेख किया–

1. यह व्यवस्था अनिश्चित थी तथा इसमें विलम्ब होता था और फिजूलखर्चे की

संभावनाएं अत्यधिक थी।

2. इससे जनता पर अत्यधिक कर–भार पड़ता था।

3. वाणिज्य और उत्पादन कार्यों के लिए जो पूँजी उपलब्ध थी उसका अधिकतर हिस्सा सार्वजनिक निर्माण कार्यों में व्यय होता था।

शासन को पूँजी का 4 या 5 प्रतिशत कर पर प्राप्त थी जबकि सरकार 9 प्रतिशत पूँजी का विनियोजन कर रही थी। नौरोजी ने इसे अति अन्यायपूर्ण कहा और वर्तमान भारतीय जनता को इस कर का बोझ सहन करने योग्य नहीं माना और सलाह दी कि इस भार को एक पीढी की अपेक्षा दो पीढियों के अंतर्गत विभाजित किया जाए। दादा भाई नौरोजी ने भूमि लगान की भी आलोचना की क्योंकि यह निर्दयता से बसूल किया जाता था और कर भुगतान के बाद भारतीय निर्धन कृषक वर्ग के पास अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं हो पाती थी और यह व्यवस्था ' मजदूरी के स्वर्ण–सिद्धांत' के प्रतिकूल थी।[11]

दादा भाई नौरोजी का नमक कर के विषय में विचार आलोचनात्मक था। भारतीयों से जिस दर पर यह आरोपित किया गया वह उनकी दृष्टि से असंगत था। ब्रिटिश शासन द्वारा आरोपित कर नीति के सबंध मे नौरोजी ने तीन निश्कर्श निकाले–

प्रथम– प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से कर देने वालों की क्षमता के आधार पर करो का अत्यधिक भार।

दूसरा– तुलनात्मक दृष्टि से भारत में अन्य देशों की अपेक्षा अत्यधिक करारोपण।

तीसरा– आर्थिक निष्कासन क संदर्भ में करों की अन्यापूर्ण नीति।

नौरोजी ने नित–नवीन करारोपण का विरोध किया और सुझाव दिया कि नित नए करारोपण की बजाय उत्पादन और संबधता के साधनों की ओर वित्त मंत्री को अधिक ध्यान देना चाहिए।

दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिशो की भारत के संबध में आर्थिक नीति के दुष्परिणामों की समीक्षा की तथा निष्कर्ष स्वरूप कहा कि दिनोंदिन भारत, की राष्ट्रीय आय घटती जा रही है, भारतीय जनता करों के बोझ तले दिन–प्रतिदिन दबती चली जा रही है और करों से प्राप्त राशि का अधिकांश हिस्सा सैन्य तथा प्रशासन संबधी कार्यो पर खर्च हो रहा है, भारतीय सरकार आर्थिक दृष्टिकोण से दिनों–दिन कंगाली की ओर अग्रसर है क्योकि सरकार द्वारा अपनाई गई अन्यायपूर्ण नीतियों से कर दाताओं की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है।

उपर्युक्त तथ्यों को आधार बनाकर दादा भाई नौरोजी ने निष्कर्ष स्वरूप कहा कि भारत से आन्तरिक और बाह्य दोनों ही दृष्टि से धन का बहिर्गमन होता है और इन नीतियों से निर्धन वर्ग की सम्पति अमीरों में निश्कासित होती है और इन नीतियों से ब्रिटिश शासन काल में दो भारत अस्तित्व में आए निर्धन व सम्पन्न भारत।[12] सम्पन्न भारत में वैधानिक और अवैधानिक नीतियों से शोशण करने वाले भारत के पूँजीपति , धनी, सांमत, जागीरदार और

विदेशी थे। निर्धन भारत में गरीबी का दंश झेल रही साधारण जनता आती थी जिसका आर्थिक शोषण हो रहा था और ब्रिटिश शासन के 150 वर्षों की अवधि में इसकी स्थिति सोचनीय तथा हीन हो गई थी ब्रिटिश शासकों के बारे में दादा भाई नौरोजी का सोचना था कि वे भारत के बारे में शासक की तरह न होकर लुटेरों की तरह कार्यरत थे। ब्रिटिश शासन काल के दौरान ग्रामीण और शहरी परिवेश मे जमीन आसमान का अन्तर आ गया था और शहरी जनता ग्रामवासियों को और ग्रामीण जन शहरी जनता को देश का नागरिक न समझकर अन्य देश का नागरिक के समान व्यवहार करते थे।

ब्रिटिश शासन काल में कृषि क्षेत्र की स्थिति भी दयनीय थी और अधिकांश कृषकों को अपनी फसल महाजनों के यहाँ गिरवी रखनी पड़ती थी तथा दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें ऋण लेना पडता था। इस तरह कृषक अपनी फसल का अधिकतर हिस्सा महाजनों को कम मूल्य पर बेचने के लिए विवश थे। कृषकों के उत्पादन का समस्त लाभ महाजन और बिचैलिया वर्ग द्वारा हड़प लिया जाता था।[13]

लघु तथा कुटीर उद्योग धंधे भी ब्रिटिश शासन काल में समाप्त कर दिए गए थे। परिणाम स्वरूप कुल आबादी का 1/6 भाग भूमिहीन श्रामिकों की श्रेणी मे आ गया था। दाद भाई नौरोजी ने यातायात के साधनों का विकास और उच्च कीमतों को आधार बनाकर भूमि की दरों में वृद्वि को आर्थिक शोषण का एक अन्य उपक्रम कहा। दादा भाई के अनुसार मूल्य वृद्वि से केवल धनी व विशिष्ट वर्ग ही लाभान्वित हुआ तथा सामान्य जनता को इससे कोई फायदा नहीं हुआ।

ब्रिटिश लेखक शासक भारत की गरीबी का मुख्य कारण निरंतर बढ़ती जंनसख्या को मानते है। दादा भाई नौरोजी ने इसका खंडन करते हुए अग्रजों द्वारा अपनाई गई दोशपूर्ण एवं आधारहीन नीतियों को भारत की गरीबी का मुख्य कारण माना। नौरोजी ने कहा कि ब्रिटिश शासन ने भारत में पूँजी के निमार्ण के लिए कोई प्रयास नही किया जबकि भारत में प्राकृतिक साधनों की भरमार थी।[14]

इस प्रकार दादा भाई नौरोजी ने धन निश्कासन को समाप्त करने की मांग की। उच्च शिक्षा एवं सामान्य शिक्षा को व्यवहारिक बनाने पर बल दिया। गरीबी का मुख्य कारण उत्पादन को माना कि वितरण को नहीं उत्पादन की वृद्वि द्वारा ही गरीबी को समाप्त किया जा सकता है। दादा भाई नौरोजी के चितंन का केन्द्र बिंदु ''आर्थिक न्याय'' था और इसी के इर्द–गिर्द उनके संपूर्ण राजनैतिक कार्य घूमते थे। नौरोजी सही मायने मे नैतिकता के पोषक और सच्चाई का अनुसरण करने वाले पुजारी थे।

संदर्भ –सूची

1. धीरेश भट्टाचार्य, ए कॉन्साइज हिन्ट्री ऑफ दि इण्डियन इकॉनॉमी (1750–1950), नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ 16।
2. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा,

1971, पृष्ठ 124।

3. वही
4. डॉ. पुरूषोत्तम नागर, भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक चिन्तन, राजस्थान रचना एकेडमी, जयपुर, 1980, पृष्ठ 121।
5. बी.एन.गांगुली, दादा भाई नौरोजी एण्ड दि ड्रेन थ्योरी थॉमस मून, दि ऑथर ऑफ इंग्लैण्ड्स ट्रेजर बाय फॉरेन ट्रेड (1964) पृष्ठ 5।
6. वही, पृ. 80
7. वही, पृ. 81
8. वही, पृ. 84
9. वही, पृ. 86
10. वही, पृ. 90
11. ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि, 1976 पृ. 112
12. बी. एन. गांगुली, पूर्वोक्त, पृ. 112
13. पावर्ती एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया, इण्ट्रोडक्शनयय, पृ. 11,12
14. वही, पृ. 12

भारतीय चित्रकला की दार्शनिक परम्परा

नेहा सक्सेना*

सौन्दर्य के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक है। सौन्दर्यानुभूति मानव हृदय को प्रतिक्षण प्रभावावित करती है वाह्य घटनाओं और उनमें निहित सौन्दर्य की प्रेरणास्पद पृष्टभूमि में अन्तर्चेना जब साकार होती है, तभी कला को जन्म मिलता है। मूलतः कला आत्मभिव्यंजना है, आत्मपरक साधना है, सृष्टि है, सौन्दर्य का साकार स्वरूप है।

मानव में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण बालावस्था से ही प्रतिपल दृष्टिगत होता है। नन्हा–सा शिशु जब पालन्चे में पड़ा हुआ किलकारियां मारता है, तब उसमें निहित सौन्दर्य के प्रति शिुशु के इस आकर्षण का आभास होता है। स्पर्श, गन्ध, रस आदि मौलिक प्रवृत्तियों के समाान ही मानव में सौन्दर्य के प्रति चेतना विद्यमान रहती है इसके साक्षात्कार से उसमें आनन्द की उत्पत्ति होती है और इसका अभाव उसके जीवन को नीरस और प्राणहीन बना देता है। सौन्दर्य के प्रति मानव हृदय में निरन्तर रस प्रवाह होता रहता है, किन्तु इसे मापा नहीं जा सकता। स्पष्टतः वह अनन्त और असीमित है। यह भी अनुभव होता है कि मानव हृदय में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण और उससे निरन्तर प्रेरित अन्तर्चेतना के प्रवाह को देखकर बुद्धि चकित होती है किन्तु वह इसके प्रभाव को रोकने में स्वयं को सर्वथा असमर्थ पाती है। इसके यह निष्कर्ष निकलता है कि सौन्दर्य के प्रति मान व का आकर्षण, उससे उत्पन्न होने वाला रस तथा आनन्द उसे प्रभावित करने वाली देव्य शक्ति है। यही आकर्षण और उससे उत्पन्न रसानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति इस कार्य व्यापार को पूर्ण करते हैं। सृजन और सृष्टि के संदर्भ में इसी का प्रतिफल 'कला' है।

ललित कलाओं में चित्रकला का महत्त्वपूर्ण व सर्वश्रेष्ठ स्थान है। यह एक माध्यम है जिसके द्वारा अपने विचारों को सरलता और रोचकता से एक चित्र में उतार सकते है। रंग और रेखाओं के माधयम से अनिवर्चनीय विचारों का उद्घाटन भारतीय कलाकारों ने चित्रकला के द्वारा किया गया है। प्राचीन भारत में चित्रकला हमारे जीवन के हर पहलू को स्पर्श करके उसे सुन्दर बनाने का प्रयास इस चित्रकला ने ही किया है। यही कारण है कि आज सभी कौशल और कौतुहलो की गणना कला मे होने लगी है। वेद, वेदांग, काव्य और कौश आदि ग्रन्थों सभी में किसी न किसी रूप मे चित्रकला अन्तर्निहित है।

भारतीय चित्रकला की सबसे प्रधान विशेषता रही है कि उसकी आलम्बन सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिकता। इसलिए भारतीय चित्रकला की प्रतिभा सर्वोच्च रही है। भारतीय चित्रकारों ने चित्रकला के कभी भी वासना– तृप्ति का साधना नहीं बनाया। भारतीय चित्रकला का दर्शन सदैव ही आध्यात्मिक रहा है उसी कारण भारतीय चित्रकला समाज को निम्न विचारों से सदा ही बचाती रही है। इसको यही दर्शन एवं सात्विक कल्पना समाज को बराबर सत्य की प्रेरणा एवं आध्यात्म के प्रकाश से अलोकित करती आयी है। इसके साथ ही भारतीय चित्रकला की

*शोध छात्रा, जीवनी विश्वविद्यालय ग्वालियर

अलंकारिक शैली भी सर्वोत्कृष्ट रही है, जिसमें जड़–चेतना और पशु–पक्षी आदि को भी सम्मिलित किया गया है।

भारतीय दर्शनों के लिए जैसे यह कहा जाता है कि ऊँचा ज्ञान एवं बुद्धि के समान कोई और दूसरा साधन नहीं है, ठीक इसी प्रकार निश्चित रूप से यह कहना भी उपयुक्त है कि भारतीय चित्रकला संसार की सबसे प्राचीनतम एंव श्रेष्ठतम कलाकृति है। भारतीय चित्रकला में सत्यं–शिवं– सुन्दरम् का जो रूप स्पष्टतः निहित है, वह अन्य किसी देश अथवा राष्ट्र की चित्रकला मे दृष्टिगत नहीं होता है। भारत की टूटी–फूटी चित्रकला के जो उदाहरण हमें वर्तमान में उपलब्ध है, समसामयिक अन्य कोई भी विदेशी चित्रकला उसके सम्मुख तुलना में पतंगे के बराबर भी नहीं ठहरती।

मानव का यह प्रयत्न कला की अनुभूति, दर्शन और सृजन की क्रमिक गति का बोध कराता है। इस प्रकार से यह सिद्ध होता है कि अंतरदर्शन जब किसी आकृति द्वारा व्यक्त होता है तब कला अपने स्थूल या सूक्ष्म रूप में प्रकट होती है। जिस आकृति द्वारा कल्पना या भावना व्यक्त होती है, उसका उद्‌भव जीवन की वास्तविकता मे से ही होता है। वह कलाकृति कितनी ही काल्पनिक क्यों न हो, फिर भी उसका निरूपण कलाकार की भावना तथा तरंगों से रंजित मानव या प्रकृति के किसी भी अंग को प्रतिबिम्ब व्यक्त और भावना तरंग से रंगा हुआ पूर्व काल्पनिक भी। किन्तु इन दोनों प्रकार की अभिवक्तियों के लिए वास्तविकता का तलस्पर्शी अनुभव तो होना ही चाहिए।

सन्दर्भः

1. भारतीय दर्शन– सर्वपल्ली राधा कृष्णन्‌न
2. भारतीय चित्रकला का इतिहास– वाचस्पति गैरोला
3. कला सिद्धान्त और परम्परा– डॉ एस.बी. एल. सक्सेना, डॉ. सुधा सरन
4. कला दर्शन– डॉ हरद्वारी लाल शर्मा
5. कला सौन्दर्य और समीक्षा शास्त्र– अशोक
6. भारतीय चित्र कला इतिहास– डॉ अविनाश बहादुर वर्मा

उत्तराखण्ड की प्राचीन शिक्षण व्यवस्था

सुशील प्रसाद*

मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में उत्तराखण्ड क्षेत्र का बड़ा महत्त्व रहा है। पौराणिक साहित्य के आधार पर यहाँ अनेक आश्रमों का वर्णन मिलता है इस क्षेत्र में चार प्रमुख शिक्षा केन्द्रों के होने का ज्ञान प्राप्त होता है। कण्व आश्रम और भरद्वाज आश्रम पहाड़ों की तलहटी में थे।[1] महर्षि व्यास का आश्रम गन्धमादन पर्वत पर था। महाभारत वनपर्व (197/50) के अनुसार दक्ष की पुत्री अदिति के पौत्र वैवस्वत मनु ने **बद्रीकाश्रम** क्षेत्र में हजारों वर्षों तक तप किया था।[2]

केदारखण्ड में विविध शिक्षाओं के अध्ययन – अध्यापन का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। इस क्षेत्र में 'ज्योतिश' शास्त्र का खूब प्रचार–प्रसार था। इस क्षेत्र के अनेक सिद्ध विद्यापीठों में सौम्यकाशी विद्यापीठ, दशमौलि तपस्थल (दशौलि), लक्ष्मण तीर्थ, शान्ति होत्र विद्यापीठ (देवप्रयाग दशमौलि गाँव के समीप), रूद्रप्रयाग जहाँ भगवान शंकर ने नारद जी को संगीत विद्या की शिक्षा दी।[3] पौराणिक साहित्य में धनुर्वेद का सांगोपांग वर्णन मिलता है। भगवान शंकर की क्रीडा स्थली होने के कारण यह क्षेत्र शिक्षा की दृष्टि से उन्नत माना गया है। क्योंकि भगवान शंकर अनेक विद्याओं के प्रवर्तक एवं आचार्य रहे है।[4]

मध्य हिमालयी क्षेत्र के वैदिक एवं पौराणिक शिक्षा केन्द्रों में परा (अलौकिक) तथा अपरा (लौकिक) विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। इसके साथ ही शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन बौद्ध आचार्यों की पवित्र धार्मिक शिक्षाओं का भी इस क्षेत्र से अटूट सम्बन्ध रहा है।

विविध कलाओं जिसमें वास्तु, मूर्ति, नृत्य, संगीत, चित्रकला, लौह एवं काष्ठ कला तथा युद्ध आदि कलाएँ प्रमुख थी की व्यवस्था की गयी। गणित एवं ज्योतिश विद्या का स्तर यहाँ सदैव ऊँचा रहा। सम्पूर्ण भारत में काण्वाश्रम आयुर्वेद शिक्षा का प्रमुख शिक्षण केन्द्र रहा।[5] आचार्यों ने दस सहस्त्र विद्यार्थियों को भोजन, वस्त्र, शिक्षा प्रदान करने की क्षमता रखने वाले आचार्य को कुलपति सम्बोधित किया। कण्व और भरद्वाज इसी कोटि के आचार्य थे।[6]

आध्यात्मवादी इस पवित्र क्षेत्र में वैदिक युग से शिक्षा का माध्यम वैदिक संस्कृत, तत्पश्चात् लौकिक संस्कृत रही। इन भाषाओं की लिपि मूलतः ब्राह्मी है। जिसे ब्रह्मा द्वारा उद्भूत माना गया है।[7] केदारखण्डीय शिक्षा प्रणाली अपनी विशेषताओं के कारण प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का विशिष्ट प्रतिनिधित्व करती है। इस पावन प्रदेश ने अनेक उत्कृष्ट गुरू–शिष्य उत्पन्न किये। जिनका प्राचीन भारतीय वाङ्मय में प्रचुरता से उल्लेख मिला है।[8] गुरू शिष्य दोनों ही उच्च आदर्शों का अनुकरण करते थे। जिसने पूरी शिक्षा व्यवस्था को गौरवमयी बना दिया था। इस क्षेत्र में प्राचीन समय से प्रचलित शिक्षण व्यवस्था, मानवीय

*प्राध्यापक रा0 सं0 संस्थान परिसर देवप्रयाग

मूल्यों के सम्वर्धन के साथ–साथ समाज मे प्रजा तांत्रिक आदर्शों का बल देने वाली रही है।[9] धर्म से अनुप्रणित प्रकृति के मध्य रहकर प्राप्त व प्रदान की जाने वाली इस कृपा पर न तो ब्राह्य नियन्त्रण ही था और न ही यह समाज की कलुशता से प्रभावित थी।

आर्यावर्त के सभी धार्मिक सम्प्रदायों की विशिष्ट संस्कृति एवं शिक्षा पद्धतियों से गुंफित केदारखण्ड की शिक्षा की आदर्श वादिता अनुशासनशीलता, गुरू–शिष्य सम्बन्धों की प्रगाढता, शिक्षण विधि की व्यापकता और आत्मज्ञान से उत्प्रेरित 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना स्वयं में अद्वितीय है। मध्यहिमालय के इस क्षेत्र में हरिद्वार से श्वेतान्त पर्यन्त की गिरी कन्दराओं एवं सरिता संगमों पर पवित्रता से जुड़ा ऋषि आश्रमों का नाम आज भी पूर्ण गरिमा का विषय है। आज भी यहाँ वेद पुराणों में वर्णित अनेक आश्रमों यज्ञ–वेदियों, शिक्षण संस्थाओं की प्रमाणिकता का यथा तथ्य उल्लेख मिलता है।[10]

महाभारत वनपर्व में लिखा है कि 'हे सौम्य! यह शीतल और पावन जल वाली अलकनन्दा बदरिकाश्रम से होकर वह रही है देवर्शि गण इसका सेवन करते है, 'आकाश चारी वालिख्य और गन्दर्भ इसके तट पर आते है यहाँ मरीचि, पुलह, भृगु, अंगिरा आदि मुनिगण शुद्ध स्वर से सामगान किया करते है ।[11] इसी नन्दकारण्य वासिनी अलकनन्दा के तट पर ऋषियों द्वारा वेद बाणी प्रकार हुयी इसीलिए गंगा को वेदमाता ,वेदान्तिनी, वेदगम्या, वेदान्त प्रतिपादिनी, वेदान्तनिलया, वेदत्रयी, वेदवदान्या और वेदान्तिक जनप्रिया कहा है।[12] मध्य हिमालयी क्षेत्र के प्राचीन आश्रमों एवं शिक्षण केन्द्रों के विवरण से विदित होता है कि इस क्षेत्र में केदारनाथ, तुंगनाथ, रूद्रनाथ, मध्यमहेश्वर, कल्पेश्वरर आदि प्राचीन काल से शैवशिक्षा परम्परा के गढ़ रहे हैं, जिन्होने नियोजित ढंग से अपने देव की पूजन परम्परा एवं संस्कृति का प्रचार–प्रसार किया।[13] आर्य महापुरूषों की 'गंगातीरे हिमगिरि शिलावद् बद्ध पद्मासनस्य ।[14] तप करने की मृत्युपर्यन्त उत्कट कामना इस क्षेत्र की विशेष आध्यात्मिक शिक्षा की प्राचीनता को प्रमाणित करती है, हिमालय प्रदेश के निवासियों ने शैव, शाक्त, वैश्णव, जैन, बौद्ध मान्यताओं को बहुत पहले ग्रहण कर लिया था ।[15]

वैदिक काल मे ही आर्यो ने शिव के प्रभाव को समझकर उन्हे रूद्र देवता के रूप में स्वीकार कर लिया था।[16] शक्ति की कल्पना हिमालय पुत्री उमा हेमवती के रूप में हुयी ।[17] पौराणिक साहित्य में केदार क्षेत्र के विभिन्न स्थलों पर वैष्णव मान्यताओं एवं विष्णु की स्थिति का विवरण मिलता है ।[18] अलकनन्दा के तट पर अनेक ऋशियों के आश्रम थे जिनमें प्राचीन ऋषिगण वेदगान किया करते थे पौराणिक साहित्य में घरेलू शिक्षा पद्धति के अतिरिक्त संघ नामक ऊँची शिक्षण संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है ।[20] जहाँ धीर विद्वान मिलकर बैठकर लोक भाषा में विचार विनिमय करते थे जो कालान्तर में संस्कृत के रूप में परिस्कृत हुयी शिष्य वेदोच्चारण एवं ज्ञान गुरू से मौखिक रूप में ही सीखते थे, जो 'श्रुति' कहलाता था।

वैदिक शिक्षालय एक घरेलू छोटा सा विद्यालय होता था जहाँ ऋषियों के निवास स्थान पर उनके साथ उनके शिश्य भी रहते थे और ब्रहमचारी एवं ब्रतचारी कहलाते थे।

विद्यार्थी को अपने विद्यार्थी जीवन में कुछ विशेष व्रतों, संयमों, नियमों का पालन करना पड़ता था । [22] विद्यार्थी को श्रुति एवं शास्त्र रटने पड़ते थे, उन्हे अपने वैयक्तिक श्रम या साधना से अपने तप या योग के द्वारा उन श्रुतियों का अर्थ जानना पड़ता था जिन्हे गुरू द्वारा पढ़ाया गया। [23] मध्य हिमालयी क्षेत्र की शिक्षण व्यवस्था में यह विशिष्टता थी कि यहाँ पर जीव मात्र को ईश्वर का स्वरूप माना जाता रहा है। उत्तर वैदिक काल से गंगा–यमुना के तटों पर ऋषि मुनि अपने आश्रम बनाने लगे थे । [24] जिज्ञासु जन उनके आश्रमों में जाकर उनसे प्रेरणा प्राप्त करने लगे थे। गढ़वाल मण्डल में गंगा, यमुना, मालिनी, रतस्था, रामगंगा, शारदा और कालीगंगा के तटों पर ऋषि मुनियों के आश्रम बन चुके थे । [25] विद्वान् राजाओं की सभाएँ उस सझम विद्या की प्रमुख केन्द्र थी। विद्या की उन्नति के लिए परिषदें अर्थात् ब्राह्मणों के विद्यालय थे, इन विद्यालायों में दूर–दूर से विद्यार्थी विद्या सीखने के लिए आते थे, **प्रो0 मैक्समूलर** के अनुसार प्राचीन विद्या परिषदों में ऐसे ब्राहमणों की अनिवार्यता बतायी गयी है जो दर्शन वेदान्त और स्मृति शास्त्रों को भली भाँति जानते हों, इन परिषदों के अतिरिक्त एक–एक शिक्षक भी पाठशाला स्थापित कर सकते थे, इनमें विद्यार्थी शिक्षालय में रहने तक गुरू की सेवा से शिक्षा प्राप्त करके गुरू को उचित दक्षिणा देकर अपने घर चले जाते थे । [27]

हिमालय परिचय की भूमिका में **महापण्डित राहुल** ने भी केदार क्षेत्र को अति प्राचीन माना है ब्राहमण ग्रन्थों से स्पश्ठ होता है कि शिव ने **कैलाश विश्वविद्यालय** की स्थापना की थी, जहाँ वेद आदि अन्य शास्त्र, योग, संगीत, आयुर्वेद, नृत्य आदि की शिक्षा दी जाती थी जहाँ काली योग विद्या की आचार्या थी। [28] तीन प्रकार थी लिपियों का प्रारम्भ विनायक गणेश द्वारा यही हुआ, दक्षिण गामिनी लिपि को आर्यो एवं सुरों ने तथा 'वामगामिनी' लिपि को असुर एवं म्लेच्छो ने और अधोगामिनी लिपि को नागेत्तर जातियों ने अपनाया । शिव को तंत्र शास्त्र का आदि गुरू माना गया। भूत, पिशाच, औघड़, गिरि, पुरी आदि उनकी शिष्य परम्परा में थे, नटराज होने के कारण सभी नृत्य एवं संगीत प्रिय गन्दर्भ किन्नर आदि उनके अनुचर थे। [29] पुराणों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि इस क्षेत्र मे सिद्ध,यक्ष,गन्दर्भ किन्नर आदि प्रमुख जातियाँ थीं, और अनका राजा कुवेर था। अलकनन्दा को ऋग्वेद मे 'हिरण्यवर्तिनी' कहा गया है।

वेदमाता सरस्वती का गुणगान आर्य साहित्य में आदि काल से गाया जाता रहा है, सरस्वती नदी बदरिकाश्रम के समीप है गर्गाचार्य ने सरस्वती के किनारे ही तपस्या की थी श्रीमद्भागवत् में इसका विवरण मिलता है। ऋग्वैदिक आर्य सूर्य,वायु,आकाश,अग्नि, वरूण, इन्द्र,उषा,आदि की पूजा करते थे, परन्तु वास्वत में वे लोग एक ही परमात्मा के उपासक थे उन्हे औषध शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था, जिससे वे द्विपद चतुष्पद आदि का उपचार किया करते थे, ऋग्वेद के दसवे मण्डल के सन्तानवें सूक्त के समस्त 23 मन्त्रो में 107 स्थानों पर फलवती, फलसून्या, पुष्पवती आदि बहुमूल्य जड़ी बूटियों का स्तवन हुआ हैं।[30] इन्ही से चिकित्सा होती थी केदारखण्ड क्षेत्र मे आज तक भी इन औषधियों का प्रयोग होता है। इसी क्षेत्र में महर्षि भरद्वाज के नेतृत्व में आयुर्वेद के आचार्य ऋषियों ने एकत्रित होकर इन्द्र से

आयुर्वेद के त्रिस्कन्धात्मक विद्या को प्राप्त किया था।[31]

वैदिक से पौराणिक कालीन शिक्षा में सम्पूर्ण मध्य हिमालय क्षेत्र का महत्व पूर्ण स्थान रहा है इस क्षेत्र मे असंख्य तीर्थ एवं ऋषि आश्रमों की स्थिति के प्रमाण पौराणिक साहित्य में बहुतायत में मिलते है आर्यावर्त के सूर्य एवं चन्द्र वंश का भी इस पावन क्षेत्र से गहरा सम्बन्ध रहा हैं।[32] रघुवंश के अनुसार वशिष्ठ का आश्रम केदारखण्ड में गंगाजी के किनारे केदार वृक्षों की छाया में था ।[33] महाभारत आदि पर्व के अनुसार इन आश्रमों में साहित्य शिक्षा , कल्प, छन्द, जन्तु, निरूक्त, ज्योतिश, एवं व्याकरण आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी।[34]

आर्यावर्त की मातृ तुल्या गंगा, यमुना, सरस्वती, आदि अनेक पवित्र नदियों का उद्गम स्थल भी यही हिमालय क्षेत्र हैं।

पौराणिक साहित्य में इस क्षेत्र को उत्तराखण्ड नाम भी दिया गया है। महाभारत में यह क्षेत्र कुलिन्द जनपद के नाम से प्रसिद्ध है। पाण्डवों के हिमालय आगमन पर भी श्री क्षेत्र (श्रीनगर गढवाल) के कुलिन्द राजा ने उनका भव्य स्वागत किया था।[35]

शिक्षा का मानव जीवन से अटूट सम्बन्ध है। शिक्षा से मानव सही अर्थो में मानव बनता है। शिक्षा के कारण ही मानव अन्य प्रणियों से श्रेश्ठ बनता है। केदारखण्ड क्षेत्रवर्ती '**बद्रीकाश्रम**' विश्व का प्राचीनतम शिक्षा केन्द्र है। जिसके संस्थापक ऋषि नर–नारयण जो ऋग्वेद से पुरूष सूक्त के रचयिता हैं।[36]

संक्षेप में यह सिद्ध किया जा सकता है कि देव भूमि केदारखण्ड में एक उत्कृष्ट शिक्षा व्यवस्था वैदिक काल से ही विद्यमान हो चुकी थी। जिस पर सम्पूर्ण भारतीय ऋषि परम्पराओं की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

सन्दर्भ –ग्रन्थ सूची

1. बदरिकेदार यात्रा दर्शन, भूमिका डॉ शिवानन्द कोटियाल।
2. वही0 पृष्ठ 11, भूमिका।
3. केदारखण्डपुराण डॉ कृष्ण कुमार द्वारा अनुवादित भाग 4 पृ0 468।
4. वहीं0 ।
5. महाभारत आदि पर्व 215/1–3
6. गढ़सुधा प्रकाशक चमोली विकास परिषद् चण्डीगढ़ पृष्ठ 8।
7. मध्य हिमालय के संस्कृत अभिलेखों का विबेचनात्मक अध्ययन पृ0 36 जुगरान डॉ0 इन्दिरा।
8. उत्तराखण्ड गौरवम् प्राक्कथन, डॉ एम. एल. जुगराम।
9. केदारखण्ड पुराण व केदारखण्ड तीर्थयात्रा पृ0 93 डॉ0 एम. एल. जुगराम।
10. आर्यों का आदिदेश बदरिकाश्रम गढ़वाल , बालकृष्ण भट्ट शास्त्री।

11. कालिदास का निवासस्थान गढवाल पृ0 4 , डॉ0 शिवान्द नोटियाल।
12. वही0
13. केदारखण्ड पुराण ,डॉ0 कृष्ण कुमार द्वारा अनुवादित भाग 4 पृ0 309
14. वही0
15. देवलगढ के धार्मिक स्थालों का सर्वेक्षण ,पृ0 35 डॉ0 एम. एल. जुगराम।
16. वही0
17. वही0
18. वही0
19. भारतीय संस्कृति दृग स्पर्श (औपनिशद् धारा) पृ0 152 डॉ0 आर सी रमेश मिश्र।
20. प्राचीन भारत पृ0 28 डॉ0 राधाकृष्ण मुखर्जी।
21. वही0
22. वही0
23. वही0
24. कुणिन्द जनपद का इतिहास पृ0 225 डॉ0 शिवानन्द डबराल।
25. वही0
26. वैदिक संस्कृति दृग स्पर्श पृ0 174 आचार्य चतुरसेन
27. वही0
28. प्राचीन आर्यो का आदिदेश ,प्राक्कथन ,श्री बाल कृष्ण भट्ट शास्त्री
29. वही0 पृ0 37
30. ऋग्वेद 10/97/1–23
31. महाभारत आदिपर्व 129/6
32. आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय पृ0 58 डॉ0 भजन सिंह 'सिंह'
33. रघुवंश 02/26,4/77–79
34. महाभारत आदिपर्व 70/37–40
35. महाभारत वनपर्व 130/29
36. महाभारत वनपर्व 145/22–24

वैचारिक क्रान्ति के मूल में स्वामी विवेकानन्द का स्वदेश प्रेम

डॉ. रामकुमार ओमरे*

चार वर्षों (31 मई 1863 से 30 दिसम्बर 1866) का अविराम भ्रमण समाप्त हुआ। विवेकानन्द जहाज में बैठे हिसाब करने लगे, क्या दिया और क्या ले चला। मैं एक ऐसे धर्म का प्रचार करना चाहता हूँ, जिससे 'मनुष्य तैयार होता है। स्वदेश प्रेमी सन्यासी ने इसीलिए स्थिर किया ''अब भारत ही केन्द्र है।

भारत लौटने का समाचार पाकर जिस समय उनकी मातृभूमि नवीन उत्साह के उच्छवास से मुखरित हो उठी थी, उस समय वे जहाज के छोटे से कमरे में चुपचाप बैठे, भारत की वर्तमान व भविष्य की समस्याओं के समाधान में लगे थे। नवीन भारत के पुनरूत्थान के लिए वे जिस सन्देश का प्रचार करने के लिए स्थिर संकल्प किये बैठे हैं, जिस शिक्षा दीक्षा के द्वारा राष्ट्रीय जीवन को फिर से रसमय, जागृत व महिमामय बना देने को उन्होंने संकल्प किया है, उसे जनसाधारण स्वीकार करेगा अथवा नहीं – यही सारी चिन्ता करते हुए वे संदिग्ध चित्त से कोलम्बो बन्दरगाह में उतरे।[1]

कोलम्बो पहुँच कर 16 जनवी 1867 को तीसरे प्रहर उन्होंने फ्लोरल हाल में पाश्चात्य देश से लौटने के बाद भाषण का विषय था– ''पुण्य भूमि भारत वर्ष।''[2] भारत पहुँचने से पूर्व अन्य सारी बातों के साथ उनके मन का एक हिस्सा सदा भारत की ओर ही लगा हुआ था। उन्होंने सेवियर दम्पत्ति – 'मेरे मन में एक ही विचार घर कर गया है, और वह है भारत वर्ष। मैं भारत की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।[3]

पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा–'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीला भूमि गौरवशाली, महाशक्तिमान, पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी' स्वामी जी का उत्तर महत्वपूर्ण था– 'पश्चिम में आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूलि ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।''[4]

स्वामी जी प्रायः कहा करते थे कि पाश्चात्य जगत कर्मभूमि है जहाँ मनुष्य निष्काम कर्म के द्वारा चित्त शुद्धि कर सकता है, और भारत वर्ष पुण्य भूमि है जहाँ पवित्र हृदय के लोग ईश्वर की अनुभूति करते हैं।[5]

स्वामी जी ने अपनी प्रखर बृद्धि, योजपूर्ण वक्तव्य द्वारा पश्चिम देशों में केवल धर्म या वेदान्त पर ही भाषण नहीं दिये, वरन् आर्य सभ्यता, शिक्षा, भारतीय संस्कृति एवं समाज व्यवस्था, मूर्ति पूजा, सामाजिक रीति, रिवाज, नारी जाति का आदर्श आदि विविध विषयों पर भाषण दिये। इसका फल यह हुआ कि मिशनरियों ने भारत वासियों को नंगा, नर मांस भक्षी,

*शोध अध्येयता (इतिहास) जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

असभ्य बर्वर, अधर्मी, अविश्वासी, मूर्ति पूजक आदि कहकर जो झूठा प्रचार किया था, वे सब गलत धारणाएं पश्चिमी जगत के मन से दूर हो गयी। 'जो जाति विवेकानन्द जैसे व्यक्ति को जन्म दे सकती है, वह जाति कैसी है, इस विषय में अब उन्हें अटकल लगाने की जरूरत नहीं रही, इस प्रकार विवेकानन्द जी ने देश विदेशों में भारत का मस्तक ऊँचा किया।[6]

इसी प्रकार एक बार स्वामी जी ने एक ओर व्यक्तिगत मुक्ति की कामना दूसरी ओर राष्ट्रीय जीवन में उन्नतिशील गतिवेग का संचार कर समष्टि की मुक्ति को ध्यान में रखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा था ''जननी मैं मुक्ति नहीं चाहता एक मात्र तुम्हारी सेवा ही मेरे जीवन का अवशिश्ट कर्म है।''[7] स्वामी जी कहा करते थे – ''यदि स्वदेश व मनुष्य कुल का यथार्थ कल्याण हो तो श्री गुरू की पूजा ही छोड़ना क्या कोई उत्कृष्ट पाप करके मैं ईसाईयों का अनन्त नरक भोगने के लिए भी तैयार हूँ।''[8]

स्वामी जी प्रथम बार जुलाई 1893 से अप्रैल 1867 तक तथा दूसरी बार जुलाई 1899 से दिसम्बर 1900 ई. तक पश्चिम की विदेश यात्रा पर रहे, इस बीच 11 सितम्बर 1893 को शिकागो धर्म सम्मेलन व 1900 ई. में पेरिस के धर्म सम्मेलन में उपस्थित हुए।

भारतीय जनमानस की सेवा के लिए चरित्रवान, हृदयवान व बुद्धिमान युवकों का आव्हान किया ''आत्मवत सर्वभूतेषु'' (सभी प्राणियों को स्वयं की तरह देखना) क्या वह वाक्य केवल पोथी में निवद्ध रहने के लिए है ? लोग गरीब को रोटी का टुकड़ा नहीं दे सकते, वे फिर मुक्ति क्या दे सकते हैं ? दूसरों के श्वास–प्रश्वासों से जो अपवित्र बन जाते हैं, वे फिर दूसरों को क्या पवित्र बना सकते हैं ? अस्पृश्यता एक प्रकार की मानसिक व्याधि है, उससे सावधान रहना।[9]

निःस्वार्थ कर्म द्वारा मानव जीवन की चरमावस्थ इस मुक्ति का लाभ कर लेना ही कर्मयोग है। अतएव हमारा प्रत्येक स्वार्थपूर्ण कार्य हमारे अपने इस लक्ष्य की ओर पहुँचने में बाधक होता है तथा प्रत्येक निःस्वार्थ कर्म हमें उस चरम अवस्था की ओर बढ़ाता है। इसीलिए नैतिकता की यही एक मात्र व्याख्या हो सकती है कि जो स्वार्थ पर है वह 'नीति विरूद्ध' है और जो निःस्वार्थ पर है, वह 'नीति संगत' है। 22 केवल निष्काम कर्म ही मनुष्य को पूर्णत्व तक पहुँचा सकता है।[10]

पशु प्रकृति लोग भी फोड़े के समान हमारे शरीर के ही अंश हैं। उन्हें खूब यत्न पूर्वक हमें अच्छा करना होगा। दुष्ट मनुष्य की भी ठीक इसी प्रकार लगातार सहायता करते रहो, जब तक कि वह सम्पूर्ण रूप से सुधर नहीं जाता एवं जाता एवं फिर से स्वस्थ और सुखी नहीं हो जाता।[11]

आज हमें जिसकी आवश्यकता है, वह है लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु। हम लोग बहुत दिन रो चुके अब और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और मनुष्य बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे

सिद्धान्तों की जरूरत है, जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है, जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें ऐसी सर्वांगसम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी– जो भी तुमको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनायें, उसे जहर की भांति त्याग दो, उसमें जीवन शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञान स्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दें, जो हृदय में स्फूर्ति भर दें।[12]

अर्थवेद संहिता की एक विलक्षण ऋचा याद आती है, जिसमें कहा गया है, ' तुम सब लोग एक–मन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार बन जाओ, क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण ही देवताओं ने बलि पायी है।' देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गये कि वे एक चित्त थे, एक मन हो जाना ही समाज गठन का रहस्य है। और यदि तुम ''आर्य, द्रविण , ब्राह्मण और अब्राह्मण'' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर 'तू–तू–मैं–मैं, करोगे–झगड़े और पारस्परिक विरोधभाव को बढ़ाओगे– तो समझ लो कि उस शक्ति संग्रह से दूर हटते जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है।[13]

''कभी–कभी लगता है कि हिन्दुओं का वर्तमान धर्म न तो वेदों में है, न पुराणों में, न भक्ति में और न युक्ति में– वह तो केवल रसोई घर के बर्तनों में घुसा हुआ है। हिन्दुओंका वर्तमान धर्म न तो ज्ञानमार्ग है और न तो ज्ञानमार्ग है और न बुद्धिमार्ग– वह तो 'मत छुओ' यही उसका पूर्ण वर्णन है! देखो तुम अपना जीवन ''मत छुओवाद'– मुझको मत छुओवाद' के इस घोर अधर्म में मत खो बैठना। शास्त्र कहते हैं – 'आत्मवत् सर्वभूतेषु, अर्थात 'सभी प्राणियों को स्वयं अपनी आत्मा के सदृष्य देखो' विकास ही जीवन है और संकीर्णता की मृत्यु।''[14]

अन्धानुकरण के विरोध में स्वामी जी ने भारतवासियों को सचेत किया। स्वामी विवेकानन्द गर्व से घोषणा कर कि ''मैं भारतवासी हूँ, प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी–देवता मेरे ईश्वर हैं। भारत वर्ष का समाज, मेरे बचपन का झूला, मेरे यौवन की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है। भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है।''[15]

अशिक्षा हमारे राष्ट्र की भारी कमी है, और इसे दूर करना होगा। जन साधारण को शिक्षित करो और ऊपर उठाओ। केवल तभी यह देश यथार्थ में राष्ट्ररूप में खड़ा हो सकेगा। तुमने पढ़ा होगा, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव। अर्थात माता को देवता समझो, पिता को देवता समझो। किन्तु मैं कहता हूँ दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव– इन गरीबों , अपढ़ों अज्ञानियों और दुखियों को ही अपना भगवान मानो। स्मरण रखे केवल इनकी सेवा ही तुम्हारा परम धर्म है। यानि शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य में सेवाभाव पैदा करना है।''[16] जब तक लाखों लोग भूखे और अज्ञानी हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को कृतघ्न समझता हूँ, जो उनके बल पर शिक्षित तो बना है, परन्तु आज उसकी ओर ध्यान तक नहीं देता।''[17]

युवकों का आव्हान करते हुए उन्होंने कहा – ''तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का

यही समय है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो। काम करने का यही समय है। इसलिये अपने भाग्य का निर्णय कर लो और काम में जुट जाओ। .....अतः रूको मत, उठो, जागो जब तक लक्ष्य प्राप्त न कर लो, रूको नहीं। ''उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत''[18]

इस प्रकार विवेकानन्द की प्रेरणा से जागृत भारत को आगे चलकर तिलक व गांधी जी के नेतृत्व में विशाल सामूहिक आन्दोलन के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। वे मद्रास से कलकत्ता और दार्जिलिंग होते हुए अल्मोड़ा पहुँचे। अल्मोड़ा से उत्तरी भारत के पहाड़ी स्थानों व राजस्थान प्रान्त के प्रमुख नगरों से होते हुए वापस कलकत्ता आ गये। हर स्थान पर उन्होंने 'आत्मनो मोक्षार्थ जगद्विताय च' का प्रचार व प्रसार किया तथा 'उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत' की शिक्षा दी।

संदर्भ

1. सत्येन्द्र नाथ मजूमदार, विवेकानन्द चरित, पृष्ठ–317–18
2. वही, पृष्ठ–319
3. स्वामी निखिलानन्द, विवेकानन्द एक जीवनी, पृष्ठ–229
4. स्वामी स्वानन्द, विवेकानन्द साहित्य, खण्ड–5, पृष्ठ–203
5. स्वामी निखिलानन्द, पूर्वोक्त, पृष्ठ–229
6. वही, पूर्वोक्त, पृष्ठ–230
7. सत्येन्द्र नाथ मजूमदार, वही, पृष्ठ– 205 8. वही, पृष्ठ 304 9. वही, पृष्ठ–346
10. स्वामी व्योमरूपानन्द, शिकागो वक्तृता, पृष्ठ–226
11. रामलाल, विश्व हिन्दू चेतना के प्रवर्तक स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ–210–11
12. स्वामी स्वानन्द, पूर्वोक्त, पृष्ठ–121
13. सत्येन्द्र नाथ मजूमदार, पूर्वोक्त, पृष्ठ–317
14. वही, पृष्ठ–324–25
15. वही, पृष्ठ–329
16. स्वामी स्वानन्द, पूर्वोक्त, खण्ड–4, पृष्ठ–310
17. वही, पूर्वोक्त, खण्ड–3, पृष्ठ–357–58

ग्वालियर राज्य के सिंधियाँ शासकों का कृषि एवं कृषकों के विकास में योगदान

डॉ. नवीन सिंह रघुवंशी*

भारत सदैव से ही कृषि प्रधान आर्थिक पृष्ठभूमि का रहा है। यद्यपि उत्तर मध्यकाल में भारत में अनेंकों देशी रियासतें थीं, परंतु वे सभी आर्थिक रूप से कृषि पर ही आधारित थीं। अतः कृषि किसी भी राज्य की आय का सबसे बड़ा स्त्रोत था। सिंधियाकालीन ग्वालियर राज्य भी पूर्ण रूप से राजस्व की दृष्टि से कृषि पर ही आधारित था। कृषि के अतिरिक्त ग्वालियर राज्य में पशुपालन भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था।

ग्वालियर राज्य के प्रारंभिक सिंधिया शासक अधिकांश समय राज्य के स्थायित्व एवं सुरक्षा में संलग्न रहें। इस कारण वे प्रशासनिक कार्यो की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दे सकें। महाराजा माधव राव सिंधिया के शासन काल में युद्ध कम हुये एवं प्रशासनिक व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया गया। महाराज चाहते थे कि राज्य में खुशहाली आये तथा उनको सोच भी था कि जब तक राज्य का अन्नदाता संपन्न नहीं होगा तब तक राज्य में खुशहाली नहीं होगी। इसके लिए महाराज ने अथक प्रयास किये।[1] उन्होंने कृषि पर सबसे अधिक ध्यान दिया। कृषि क्षेत्र का अध्ययन करवाया उसकी रिपोर्ट बनवाई। इसके उपरांत महाराज ने स्वयं हर जिले का भ्रमण करके वैज्ञानिक आधार पर कृषि कार्य योजना तैयार कराई। उन्होंने कृषि में प्रगति न होने के कारणों पर विचारच किया एवं उसका विस्तृत रूप से अध्ययन करवाया तथा किसानों को कृषि में उन्नति हेतु साधन उपलब्ध करायें एंव कृषि कार्य में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किये।[2]

सन् 1916 में ग्वालियर राज्य के कृषि क्षेत्र में आधुनिक तरीकों को प्रयोग में लाया गया जिसकी प्रशंसा मध्यभारत प्रान्तों के कृषि सलाहकार वी. केविन्ट्री ने की।[3]

ग्वालियर राज्य में सन् 1916 में कृषि विभाग की स्थापना की गयी, राज्य में नवीनतम कृषि प्रयोगों हेतु हर जिले में एक जिलेदार की नियुक्ति की। किसानों को उन्नतिशील बनाना, उन्नत बीज का चयन, खाद का प्रयोग, बुबाई का समय एवं फसलों के लिए उपयोगी भूमिका चयन आदि के बारे में कृषक को सहयोग प्रदान करना। तत्कालीन महाराजा ने इस दिशा में बहुत से प्रयास किये।[4]

1. प्रत्येक जिले में प्रदर्शन हेतु उन्नत गाँव निर्धारित किये।
2. कृषि के अनुसंधान के लिये प्रयोगशाला खोली गई।
3. उज्जैन व ग्वालियर में प्रयोगात्मक कृषि फार्म की स्थापना की गई।
4. कृषि के आधुनिक उपकरण उपलब्ध कराने हेतु प्रत्येक जिले में डिपों स्थापित की गई।

*आई.टी.एम. यूनिवर्सिटी, ग्वालियर (म.प्र.)

इसका प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव फसल के उत्पादन पर पड़ा। इसी समय ग्वालियर राज्य के शासन ने जमींदार हितकारी सभा का प्रारंभ करवाया। कृषि के आधुनिकीकरण हेतु राज्य में एक कृषि तकनीकी विभाग की स्थापना की गयी

कृषि विभाग ने राज्य के क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसलों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया एवं भौगोलिक परिस्थितियों को भी दृष्टिगत रखते हुए कृषकों को व्यवहारिक ज्ञान के द्वारा अच्छे बीज एवं अच्छे उत्पादन प्राप्त करने की सलाह दी। जिन किसानों के पास सिंचाई के साधन पर्याप्त थे। उन्हें पूसा 12 कानपुर तथा 13 जलालिया गेंहू उत्पादन के लिये परामर्श दिया।

मालवा की भौगोलिक दशायें ग्वालियर जिलें में मिलती थीं। वहाँ पर पीला मालवी बीज बोने की सलाह दी गयी। उज्जैन के किसानों ने इस बीज की बहुत प्रशंसा की। इसके परिणाम भी अच्छे प्राप्त हुए।क्षेत्र में उगाई जाने वाली फसल ज्वार के ऊपर भी विभाग ने बहुत काम किया अच्छे बीजों का परामर्श किसानों को दिया जिसके परिणामस्वरूप अच्छी पैदावार हुई। मालवा प्रान्त में ज्वार की फसल उत्पादन पर बहुत ही कम काम हुआ।[5]

कपास के उत्पादन हेतु ग्वालियर राज्य की भौगोलिक परिस्थितियॉ एवं बदले मौसम के कारण राज्य के कई क्षेत्रों में कपास का उत्पादन ही बन्द करना पड़ा। कपास की खेती को राज्य के कई क्षेत्रों में प्रोत्साहन दिया गया। नरवर, विदिशा तथा ईसागढ़ के कृषकों को 400 मन बीज निःशुल्क वितरित किया गया। मालवा प्रान्त में कपास के उत्पादन को बढ़ाने के लिए राज्य द्वारा अच्छी किस्म के बीज बोए गये इससे वहां के किसानों को आर्थिक दृष्टि से बहुत ही लाभ हुआ। जहां पर पानी की पर्याप्त सुविधा थी वहां पर कम्बोडिया नामक कपास की फसल का उत्पादन अच्छा हुआ। मालवा प्रान्त के अफीम वाले क्षेत्रों में भी इसका उत्पादन किया गया।[6]

ग्वालियर राज्य में इन फसलों के उत्पादन के उपरान्त राज्य में अलसी, तिल्ली, बाजरा, मूंगफली, गन्ना इनकी भी खेती उन्नति पर थी।[7] जापान एवं स्पेन का बीज कृषकों को कृषि कार्य हेतु बांटा गया। कृषि विभाग ने उन्नत कृषि हेतु अत्यंत गंभीरता से एवं अतिआवश्यक बिन्दुओं पर अनुसंधान किये :–

कृषि में जुताई के प्रकार, पानी देने का प्रकार, हलों से गुड़ाई, बोने का समय, खाद की मात्रा, कृषि उपकरणों के प्रयोग, मजदूरी की समस्या, बुवाई आदि इन सभी पर अनुसंधान किये गये एंव अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए किसानों को सलाह दी गई एवं कृषकों द्वारा उसका प्रयोग करके अच्छा उत्पादन प्राप्त किया।

ग्वालियर राज्य में कृषि यंत्रों को प्रदर्शनी एवं जिलों में लगने वाले मेलों व फार्मों में इनका उपयोग बताया गया।[8] ग्वालियर एग्रीकल्चरल वर्क्स में सदैय यह प्रयास किया जाता रहा कि कृषि में प्रयोग होने वाले यंत्रों को नया रूप दिया जाये।राज्य में जिन क्षेत्रों में गेंहू बोआ जाता था वहां पर लोहे का दुफन के साथ हल बहुत ही उपयोगी एवं लाभदायक सिद्ध

हुआ। इसकी राज्य के किसानों ने बहुत प्रशंसा की। राज्य में पशुपालन पर भी बहुत ध्यान दिया। इसी क्रम्र में राज्य में सन् 1909 में ग्वालियर में पशु चिकित्सालय स्थापित किया गया। इस विभाग ने उत्तम किस्म के पशु राज्य के बाहर से मंगाये एवं इन सभी को जिला बोर्ड के द्वारा जमींदारों को बांट दिया गया।[9]

ग्वालियर राज्य में कृषि उपज का उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से एक कृषि प्रयोगशाला स्थापित की गयी। दरबार पॉलिसी में कहा गया कि प्रयोगशाला का स्टाफ कुशल तथा प्रवीण एसंव शोध कार्य में भी दक्ष था।[10]

कृषि में उन्नति कृषि शिक्षा प्राप्त करके की जा सकती है। ग्वालियर राज्य के तत्कालीन महाराज की इच्छा थी कि राज्य के जमींदारों के लड़कों तथा कृषकों को कृषि शिक्षा प्रदान की जावे, तो ही कृषि का विकास हो सकता है। इसी कारण ग्वालियर राज्य में कृषि शिक्षा प्रारंभ की गई।[11]

कृषि उपकरणों के निर्माण के लिए राज्य में कृषि इंजीनियरिंग विभाग था। यह विभाग मांग के अनुसार कृषि उपकरण बनाता था,[12] खेतों की जुताई का भी ठेका लेता था। पावर से चलाई जाने वाली क्रेसिंग मशीन वोरिंग का कार्य राज्य के भेलसा, ईसागढ़ तथा भिण्ड जिलों में बहुत होता था।

ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत जहां पर कृषि की सिंचाई के लिए पर्याप्त सुविधा उपलब्ध नहीं थी। पानी को सुलभता से उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया तथा राज्य में बोरिंग कराई एवं अधिकांश स्थानों पर नलकूप खोद गए।

राज्य ने कृषि के विस्तार कार्यक्रम को प्रचारित करने के लिए जिला स्तर पर प्रत्येक जिले में एक प्रचार समिति बनाई एवं उसमें एक कुशल अनुभवी नायब तहसीलदार को रखा गया।

ग्वालियर राज्य में महाराज सिंधिया के शासन काल में कृषि के क्षेत्र में आधुनिकीकरण के अत्यधिक प्रयास किये गये एवं उनके प्रयोगात्मक तरीकों के लिए महाराज ने राज्य में स्वयं भ्रमण किये तथा कृषकों को नये तरीकों को अपनाये जाने के लिए आकर्षित करने में अनेकों प्रयास किये, परिणामस्वरूप सफलता भी प्राप्त हुई।

माधवराव सिंधिया के शासनकाल में कृषि क्षेत्र में बहुत कार्य हुए। महाराज कृषकों को सदैव अन्नदाता के नाम से पुकारते थे एवं उनके हितों की रक्षा कृषि नीति के दो प्रमुख अंग थे।[13]

1. कृषि के आधुनिकीकरण
2. कृषि योग्य भूमिका विस्तार

ग्वालियर राज्य के कृषकों की आर्थिक स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। कृषि मुख्य रूप से

वर्षा पर आधारित थी। उत्तरी प्रान्त के कृषकों में पिछड़ापन एवं आर्थिक स्थिति भी कमजोर थी उसका मुख्य कारण वहां कम उपजाऊ भूमि थी।

विदिशा जिला कृषि के क्षेत्र में उन्नतिशील था। कृषकों की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ थी। इस जिले में जोतों का आकार 25 बीघा था जिसमें लगभग 80 मन अनाज उत्पादन होता था।[14]

सिंधिया कालीन ग्वालियर राज्य की स्थापना के समय राज्य में कृषि की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। राज्य के अधिकांश क्षेत्र कें अकालों, प्राकृतिक आपदाओं, पिण्डारियों एवं अन्य लुटेरे गिरोहों से यह क्षेत्र बर्वादी के कगार पर आ गया था। सिंधिया शासकों ने इस स्थिति को सुधारने के लिए कृषि में आधुनिकीकरण के प्रयास किये जिसमें माधवराव सिंधिया के प्रयास अत्यधिक सराहनीय रहे।[15]

उपरोक्त विवेचना के बाद हम यह निष्कर्षतया यह कह सकते हैं कि ग्वालियर राज्य के सिंधिया शासक माधवराव सिंधिया (प्रथम) ने सर्वप्रथम राज्य में कृषि व्यवस्था की ओर ध्यान दिया तथा राज्य में कृषि विभाग की स्थापना कर राज्य की कृषि एवं कृषकों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

संदर्भ

1. जयाजी प्रताप, अंक 1925, ग्वालियर 204
2. ग्वालियर टुडे, पृष्ठ –44
3. जयाजी प्रताप, अंक 1925, ग्वालियर, 204
4. कृष्णन, व.सु.– मध्यप्रदेश जिला गजेटियर ग्वालियर जिला गजेटियर विभाग, मध्यप्रदेश, भोपाल, 1968 पृष्ठ–99
5. ग्वालियर टुडे, पृष्ठ–44
6. कृष्णन, व.सु. – पूर्वोक्त पृष्ठ–60
7. वही
8. कृष्णन, व.सु. – पृष्ठ–107
9. ''भेलसा'' वर्तमान मध्यप्रदेश राज्य का विदिशा जिला मुख्यालय है।
10. जयाजी प्रताप, अंक 1925 ग्वालियर, 204
11. वही
12. रिपोर्ट ऑफ दी एकोनोमिक्स इण्डस्ट्रीज सर्वे, आलीजाह दरबार प्रेस, ग्वालियर।
13. वही
14. पूर्व ग्वालियर राज्य गजेटियर मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग, भोपाल 1972, पृष्ठ 222–223
15. जयाजी प्रताप, अंक 1925, ग्वालियर 204

ग्वालियर कला क्षेत्र के कलाकार – प्रभात नियोगी

डॉ. वासंती (बक्षी) जोशी*

श्री प्रभात नियोगी का जन्म 22 अप्रैल 1908 ई. में बंगाल के दीनाजपुर नामक गांव के संपन्न परिवार में हुआ था। आपकी रुचि पढ़ाई में अधिक नहीं थी। बड़ी कठिनाइयों से आपने मैट्रिक की शिक्षा प्राप्त की। पढ़ाई लिखाई में मन न लगने के कारण चित्रकला के प्रति इनकी विशेष रुचि जागृत हो गयी परंतु घर के लोग इस बात से अप्रसन्न थे। इसलिए चुपके से वे अपनी कला की रुचि का संवर्धन करने लगे एवं कलकत्ता की इण्डियन ऑफ ओरिएन्टल आर्ट में प्रवेश लेने जा पहुँचे। 1930 ई. से 1934 में आप कला का शिक्षण लेकर आगे के व्यवसाय हेतु तलाश में थे। आपने सुधीर खास्तगीर के साथ बंगाल छोड़ दिया एवं एक वर्ष तक भटकते रहें।[2]

ग्वालियर गढ़ पर जागीदारों के लड़कों के लिए भूतपूर्व ग्वालियर राज्य में सिंधिया स्कूल की स्थापना की गयी थी। आगे उसे पब्लिक स्कूल का रूप दे दिया गया। इसके भूतपूर्व आचार्य श्री एफ.जी. पियर्स कला प्रेमी थे उनके कारण कुछ उच्च कोटि के चित्रकार ग्वालियर आए और वह परम्परा अब तक चल रही है। इसमें श्री प्रभात नियोगी तथा श्री उमेश कुमार का नाम विशेष उल्लेखनीय है।[3] 1936 में आप सिंधिया आर्ट स्कूल फोर्ट ग्वालियर के कला शिक्षक बने। जिस निर्बद्ध वातावरण में नियोगी ने शिक्षा ली उसी फोर्ट स्कूल में अध्यापन कराते हुए उन्होंने उसी परम्परा को निभाया। अक्सर वह चित्र बनाते एवं विद्यार्थी उन्हें देखते। नियोगी चित्रकला एवं मूर्तिकला में रूद्रहांजी के समान थे। तकनीकी दृष्टि से टेम्परा तथा जलरंग में इनका प्रयास उल्लेखनीय है। इनके चित्रों में रंगों की शीतलता और विषयों में बंगाल का ग्राम्य जीवन दिखाई देता है। जिसमें मुख्य है झोंपड़ी, वन, सड़क एवं वहां का जनजीवन। प्रभात नियोगी पर कुछ सीमा तक आचार्य नंदलाल बसु तथा अधिकांश में सुधीर ख़ास्तगीर का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित है। श्री नियोगी का ग्राम शीर्षक चित्र बंगाल के ग्रामों का सुंदर अंकन है। अलंकरण के लिए बनाये गये उनके छोटे रेखाचित्र अत्यंत सुंदर हैं।[4]

इनके चित्रों की प्रदर्शनियां देश–विदेश में भी आयोजित की गईं। 1939 में आपने अमेरिका यात्रा के दौरान भित्ति चित्रण का कार्य किया। फ्रेस्को के चित्र के आप महान पुजारी थे। आपका फ्रेस्को चित्र आज भी डॉ.एन.एन.लाहा के मकान की सीढ़ियों की भित्ति पर बना हुआ है आपके डॉ.एन.एन.लाहा के पिताजी से पारिवारिक संबध थे। आपके चित्रों का संग्रह

*विभागाध्यक्ष चित्रकला विजयाराजे शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविधालय, मुरार ग्वालियर म.प्र

ग्वालियर की कला वीथिका, राजकमल, फोर्ट स्कूल, डॉ.एन.एन.लाहा, प्रो.एस.के शिंदे आदि जगह संग्रहित हैं।

अंधा गायक और मीराबाई, शीर्षक प्रस्तर मूर्तियां क्रमशः आकाशवाणी केन्द्र भोपाल और दिल्ली में रखी हैं।[5] आपकी अत्यंत सुंदर मूर्तियां सरस्वती, किसान पति–पत्नी, सिंधिया स्कूल फोर्ट के बगीचे में संग्रहित हैं। आपके चित्रों की, पद्धति एवं आकृतियों में बंगाल का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। आप स्वयं बंगाली होने के कारण स्वभावतः यह प्रभाव चित्रों में दिखाई देता है।

प्रभात नियोगी ने अनेक चित्र बनाए, पत्थर में उन्होंने कुछ मूर्ति भी काटीं। चित्रों से अधिक नियोगी को अपनी मूर्तियाँ प्यारी हैं। इन मूर्तियों को सरल ज्यामितीक प्लेंस में परिभाषित करने का यत्न बहुत साफ है।[6]

चित्रों में घनवाद की ओर रूझान परिलक्षित है। उनके अनेक चित्र विषय के सरल ज्याामितीय आकारों और कम से कम रंगों के प्रस्तुतीकरण हैं।[7] इन चित्रों को देख सहज ही जार्जकिट की याद आ जाती है।

उनके पहले के चित्रों में रंगों का रूखापन है तो बाद के चित्रों में वन प्रांतों का प्रस्तुतीकरण है। जिनमें वानस्पतिक रंगों का सामंजस्य है। इन चित्रों में पहाड़, पेड़, आदि विशिष्ट सृजनात्मक आकारों से संयोजित है। नियोगी के आरंभिक काल के चित्र क्षितिन्द्र नाथ मुजुमदार के प्रभाव में बनाये गये चित्रों का प्रतिनिधत्व करते हैं। नियोगी को प्रमुख रूप से क्षितिन्द्र नाथ का ही शिष्यत्व मिला था। ये वाश तकनीक में हैं।

नियोगी के चित्रों में उत्तेजना नहीं, ठंडक है। बंगाल का ग्रामीण अंचल जिसमें वन, झोंपड़ी, सड़क और लोग हैं। गायक, वादक, स्त्री रूप, दुखः दर्द वियोग ये नियोगी की कृतियों के विषय हैं। चाक्षुक रूपाकार के ऊपर विषय आरोपण आकृतियों में भारतीय आदर्श की अतिरंजना और आकृति घड़न की न्यूनता बंगाल आंदोलन से जुड़े कलाकारों की तरह नियोगी में है।[8] सिंधिया स्कूल फोर्ट से सेवा निवृत होकर नियोगी उटकमंड एवं मंसूरी में भी कार्यरत रहे। उसके बाद वे लकवाग्रस्त हुए और तब से अपने ग्वालियर निवास में रह रहे थे। रवीन्द्र संगीत के शौकीन नियोगी गाने में खास दिलचस्पी रखते थे। बंगाली भाषा में उन्होंने अपना आत्म चरित्र भी लिखा था।[9]

उनकी पत्नी एवं उनका एक बेटा था, जो मानसिक असंतुलन का शिकार था। उनकी पत्नी के देहावसान के बाद उनकी कलाकृतियाँ किसके पास हैं इसका पता मध्यप्रदेश एवं ग्वालियर में किसी को नहीं मालूम है।

1. प्रभात नियोगी के प्रदर्शनी के केटलॉग के आधार पर

2 राजाराम प्रभात नियोगी और उनकी छवियां आकार अंक –21977 पृष्ठ – 15

3 हरिहर निवास द्विवेद्वी, मध्य भारत का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, पृ.401

4 आकार अंक 2 1977 पेज न. 15 म.प्र. कला परिषद द्वारा ग्वालियर में आयोजित प्रदर्शिनी की कला समीक्षक श्री राजाराम द्वारा रपट के आधार पर

5 आकार अंक 2 1977 पेज न. 16 म.प्र. कला परिषद द्वारा ग्वालियर में आयोजित प्रदर्शिनी की कला समीक्षक श्री राजाराम द्वारा रपट के आधार पर

6 आकार अंक 2 1977 पेज न. 16 म.प्र. कला परिषद द्वारा ग्वालियर में आयोजित प्रदर्शिनी की कला समीक्षक श्री राजाराम द्वारा रपट के आधार पर

7 आकार अंक 2 1977 पेज न. 16 म.प्र. कला परिषद द्वारा ग्वालियर में आयोजित प्रदर्शिनी की कला समीक्षक श्री राजाराम द्वारा रपट के आधार पर

8 आकार अंक 2 1977 पेज न. 16 म.प्र. कला परिषद द्वारा ग्वालियर में आयोजित प्रदर्शिनी की कला समीक्षक श्री राजाराम द्वारा रपट के आधार पर

9 डॉ.एन.एम. लाहा, 22 जनवरी, 2008

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. अंजुलि रतनम्*

भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी प्रारम्भ में मात्रा एक व्यापारिक संस्था के रूप में भारत आई थी, परन्तु बंगाल विजय के बाद उसका उद्देश्य अधिक से अधिक साम्राज्य विस्तार तथा अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करना हो गया था। 1857 ई. के विद्रोह से पहले के समय अंग्रेजों के राज्य विस्तार से भारतीय नरेश भी भयभीत थे। उन्हें विश्वास हो चला था कि अंग्रेज शीध्र ही उनके राज्य समाप्त कर देगें। भारतीय जनसाधारण भी अंग्रेजों की नीतियों से असंतुष्ट था। अंग्रेजों ने जातीय भेद के आधार पर भी भारतीयों के साथ बहुत अपमानजनक व्यवहार किया। भारतीय सैनिक भी अंग्रेज के व्यवहार से शुद्ध थे, तथा तत्कालीन कारण भी ऐसे हो गये जिससे सैनिकों का असंतोष चरम सीमा पर पहुंच गया था।[1] इसी कारण 1857 ई. क्रांति का प्रारम्भ सैनिकों से हुआ तथा बाद में असंतुष्ट भारतीय राजा तथा नागरिक भी इसमें शामिल हो गये।[2] क्रांति के कारण पर्याप्त समय से बन रहे थे जो सन् 1857 ई. से यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गये थे।

अंग्रेजों को साम्राज्यवादी के कारण भारतीय रियासतों एवं राज्यों को उनके अंग्रेजी साम्राज्य में विलयनीकरण का भय सताने लगा था।[3] डलहौजी क राज्य हड़प नीति ने भारतीय नरेशों के इस भय को और अधिक बढावा दिया। अवध तथा पंजाब जैसे अंग्रेजों के मित्र राज्यों को भी कुशासन के आधार पर अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। व्यवगत के सिद्धान्त के आधार पर सतारा, नागपुर, झांसी, जैतपुर, संभलपुर के राज्यों को कम्पनी के राज्य में मिला लिय गया। अनेक नरेशों के वंशजों की पेंशन बंद कर दी गई। जैसे वाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब व तन्जौर तथा कर्नाटक के नबाव के वंशजों की पेंशन बंदकर दी गई। जमींदारों को भी गोद लेने के अधिकारों से वंचित कर दिया गया तथा उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई।

सामाजिक दृष्टि से अंग्रेज अपने को ऊंची नस्ल का मानते थे। वे भारतीयों को हेयदृष्टि से देखते थे। वे भारतीयों का स्थान–स्थान पर अपमान करते थे। रेलगाडी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में भारतीयों को बैठने की अनुमति नहीं थी। वे अंग्रेजों के साथ उठ बैठ नहीं सकते थे, न किसी सामाजिक उत्सव में अंग्रेजों के साथ भाग ले सकते थे। भारत में कम्पनी के शासन की स्थापना के साथ ही ईसाई धर्म प्रचारकों ने जोर शोर से ईसाईयत का प्रचार किया तथा मिशनरियों की प्रगति को देश के प्रत्येक भाग में फैला दिया। धर्म परिवर्तन के लिये प्रलोभन दिया जाता था। नौकरी पाने के लिये अंग्रेजी शिक्षा अनिवार्य कर दी गई जिससे अनेक पाठशालाएं व मदरसे बंद हो गये। जिससे हिन्दू शिक्षकों व मौलवियों को अपनी जीविका से हाथ धोना पड़ा।[4]

*शोध छात्रा (हिन्दी) जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

सन् 1850 ई. में सरकार ने पुरानी बन्दूकों के स्थान पर नवीन एनफील्ड रायफलों को सेना में प्रयोग करवाना चाहा। उसके लिये जो कारतूस बनाए गये थे, उन्हें रायफल में भरने से पहले मुंह से खोलना पड़ता था। सन् 1857 ई. में बंगाल की सेना में यह खबर फैल गई कि इन कारतूसों को बनाने में सुअर तथा गाय की चर्बी का उपयोग किया गया है। सैनिकों को यह विश्वास हो गया कि अंग्रेज हिन्दू और मुसलमानों को विद्रोह करने के लिये तैयार किया। इस प्रकार कारतूसों की घटना इस विद्रोह का मुख्य कारण बनी। सैनिकों की प्रारंभिक सफलता ने भारतीय नागरिकों को भी विद्रोह करने के लिये प्रेरित किया। असंतुष्ट भारतीय शासक भी विद्रोह में धीरे–धीरे शामिल हो गये।[5]

सन् 1857 ई. की क्रांति व्रिदोह का प्रारंभ चर्बी लगे कारतूसों के समाचार फैलने से हुआ। सर्वप्रथम बैरकपुर की 19वी रेजीमेंट के सैनिकों ने इस कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया, परन्तु बाद में उन्हें समाप्त कर शांत कर दिया गया तथा उनके जो नेता थे उन्हें पकड़कर दण्डित किया गया। गवर्नर जनरल ने बाद में 19वीं रेजीमेंट को समाप्त करने का आदेश दिया।

29 मार्च 1957 ई. को 34वीं रेजीमेंट के सैनिक मंगल पाण्डे ने अपनी सार्जेन्ट मेजर को गोली मार दी और अपने सैनिकों को अपने धर्म की रक्षा के लिये ललकारा, लेकिन उन्हें तथा उनक एक साथी को पकड़कर मृत्यु दण्ड दे दिया गया। लखनऊ रेजीमेंट को भंग कर दिया गया। इस समय तक सैनिकों का विचार विद्रोह करने का नहीं था। वे सिर्फ चर्बी लगे कारतूसों के प्रयोग की मना कर रहे थे, परन्तु कम्पनी सरकार ने उनकी भावना को नहीं समझा तथा उन कानतूसों के प्रयोग को हट करती रही। अप्रेल 1857 ई. को मेरठ छावनी के 25 सैनिकों ने इन कारतूसों के प्रयोग से इंकार कर दिया।[6] उन सैनिकों को 10 वर्ष की कैद की सजा दी गई।[7] 10 मई 1857 ई. को तीसरी घुडसबार सेना ने विद्रोह कर दिया। इनके साथ पैदल सेना ने मिलकर बंदियों को छुड़ाया गया।[8] अंग्रेजों को कत्ल करके उसी रता दिल्ली पहुंच गये। उन्होंने मुगल बादशाह बहादुरशाह को विद्रोह का नेतृत्व करने के लिये सहमत कर लिया। अन्ततः 1857 की क्रांति का प्रांरभ हो गया। विद्रोह के केन्द्र दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, झांसी, बरेली और ग्वालियर रहे। इस प्रकार विद्रोह के सीमित क्षेत्रीय देशी नरेशों की अंग्रेजों के प्रति स्वामिभक्ति तथा विद्रोहियों के पास योग्य नेतृत्व का अभाव तथा विद्रोह का योजनाबद्ध तथा संगठित न होना व अंग्रेजी सेना के पास श्रेष्ठ साधन व शस्त्रों का होना तथा विद्रोहियों पर इसके अभाव के कारण 1857 ई. का क्रांति सफल नहीं हो सका। सन् 1857 ई. की क्रान्ति संग्राम विभिन्न कारणों से असफल रही। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने इस संग्राम का जिस पाश्विकता से दमन किया था, उससे भारतीयों में राष्ट्रीयता को बढ़ाने का कार्य किया। इस संग्राम ने भारतीयों में अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना को बहुत अधिक बढ़ा दिया था।

1 नवम्बर 1857 ई. को ब्रिटेन की महारानी (क्राउन) की घोषणा के द्वारा ब्रिटिश सरकार ने 1857 ई. के विद्रोह के लिये कम्पनी के शासन को उत्तरदायी ठहराते हुए भारतीय

शासन को सीधे अपने हाथों में ले लिया।[9] अब कम्पनी के डायरेक्टरों के स्थान पर क्राउन की सहायता के लिये 15 सदस्यों की भारत कौंसिल स्थापित की गई। इस घोषणा पत्र में सभी भारतीय प्रजाजनों के प्रति न्याय और सार्वजनिक पदों के सम्बन्ध में समानता का व्यवहार, धार्मिक स्वतंत्रता और धार्मिक क्षेत्र में हस्ताक्षेप तथा भारत की आर्थिक प्रगति के लिये सभी संभव प्रयत्न करने की बातें कहीं गई थी। अंग्रेजों ने भारतीय नरेशों को उनके राज्यों की सीमा, उनके सम्मान और उनके अधिकारों की सुरक्षा का आश्वासन दिया। नरेशों को स्वेच्छा से बच्चा गोद लेने का अधिकार दिया तथा अवध के ताल्लुकेदारों को उनकी भूमियां वापस कर दी गई। शासन के लिये भारत को एक इकाई माना गया तथा यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि ब्रिटिश क्राउन ही भारत की सर्वोच्च सत्ता है।[10]

धर्म और राजनीति पर आधारित बहावी आन्दोलन भारत पर फिर से मुसलमानों की सत्ता स्थापित करने का सशस्त्र प्रयत्न था। यह आन्दोलन 19वीं सदी से प्रारंभ होकर 1880 ई. तक चलता रहा। प्रारम्भ में सैयद अहमद और बाद के वर्षो में याहिया अली ओर अमीर अली इसके नेता थे। प्रारम्भ में यह आन्दोलन पंजाब में सिख शासन के विरोध में चला, लेकिन पंजबा विजय के बाद बहावियों ने अंग्रेजी राज्य को भी ''दारूल–हर्व'' (धर्मविरोधी) घोषित कर उसके विरूद्ध ''जिहाद'' (घर्मयुद्ध) की घोषणा कर दी और बहावी 1857 ई. के बाद भी लगभग 25 वर्ष तक ब्रिटिश शासन में लड़ते रहे। दूर–दूर तक फैले इस सुसंगठित आन्दोलन का पूरी शक्ति के साथ दमन किया गया था। सन् 1860 ई. से 1872 ई. तक अनेक बहावियों पर राजद्रोह के मुकदमें चलाये गये और उन्हे आजीवन कारावास की सजा दी गई। ऐसी स्थिति में 1871 ई. में अंग्रेजों के विरूद्ध मुसलमानों का विरोध पराकाष्ठा पर पहुंच गया। इसी वर्ष सितम्बर में कलकत्ता हाईकोर्ट की सीढ़ियों पर एक मुसलमान ने चीफ जस्टिस जान पेक्टसन नार्मर का कत्ल कर दिया और फरवरी 1873 ई. में अण्डमान में शेर अली नामक बहावी ने वायसराय मेयरों को मार डाला। लेकिन इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने कूटनीति से काम लिया, अनेक मुल्लाओं से ब्रिटिश राज को **''रारूल इस्लाम''** (इस्लाम समर्थक) घोषित करवा कर धर्म पर आधारित इस राजनीतिक आन्दोलन को समाप्त करवा दिया गया।[11]

सामान्तर रूप से भारत में नामधारी आन्दोलन चला। धार्मिक आधार पर आधारित इस आन्दोलन के प्रमुख नेता भाई राम सिंह थे। खलसा फौज विघटन के बाद भाई रामसिंह का दृष्टिकोण धार्मिक हो गया। वे साधु बाबा बालकराम से मिले और उन्होंने सिख जाति के सुधार के यिले **''नामधारी सिख''** या **''कूका सम्प्रदाय''** की नींव डाली। ये नामधारी सिख अंग्रेजी राज से अप्रसन्न थे और ब्रिटिश सरकार, सरकारी न्यायालयों या महकमों से कोई सरोकार नहीं रखते थे।[12]

पंजाब की विजय के बाद अंग्रेजों ने अमृतसर, राजकोट (लुधियाना) तथा अन्य स्थानों पर बूचड़खाने खोले और गौ–वध खूब होने लगा। गौ–वध से दुखी होकर नामधारी सिखों ने सबसे पहले अमृतसर के बूचड़खानों पर आक्रमण कर अनेक कसाई मार डाले।

कूका सिखों पर मुकदमा चला और उनमें से कुछ को फांसी दी गई। इन फांसियों ने कूकों के उत्साह को घटाने के बजाय और बढ़ा दिया। मलेर कोटला रियासत के बूचड़खाने हटवाने के उद्देश्य से 14 जनवरी 1872 को उनकी एक मजबूत टुकड़ी ने रियासत पर हमला किया। इस टुकड़ी को बूचड़खाने हटाने में तो सफलता मिली लेकिन इस हमले में जमकर लडाई के बाद रियासत की सेना ने कूका आक्रमण विफल कर दिये। बाकी बचे 56 कूकों ने (जिनमें 22 घायल थे) पटियाला रियासत में जाकर हथियार डाल दिये और एक रात उन्हें शेरपुर के किले में रखा गयां अब कूका विद्रोह तो खत्म हो गया लेकिन उन पर ब्रिटिश शासन का दमन आंरभ हो गया। किले में घेर कर इन कूकों को मलेरकोटला लाया गया। वहां पर लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर कावन ने कमिश्नर क अदेशों की उपेक्षा करके नाभा, पटियाला और जींद रियासतों की पलटने और तोपें मंगवाकर 49 नामधारियों को बिना मुकदमा चलाये तोपों से उडा दिया।[13] शेष बचे नामधारी केदियों को कमिश्नर फोरसाइथ ने कानूनी कार्यवाही का दिखावा कर फांसी की सजा दे दी। इसके बाद भी पंजाब भर के कूकाओं को आंतकित करने का सरकारी दौर चलता रहा। उन्हें गिरफ्तार कर उनमें से कुछ को रंगून और कुछ को अंडमान भेज दिया। आगे चलकर नामधारी सिखों ने कांग्रेस के नेतत्व में स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया। खास बात यह है कि कूकाओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक न तो सरकारी नौकरी की परवाह की, न वे अपने मुकदमे सरकारी न्यायालयों में ले गये और न ही उन्होंने विदेशी वस्त्र पहने।

सन् 1876 ई. में जब पूना में भारी अकाल से हजारों लोग मर रहे थे लेकिन सरकार ने समस्या दूर करने के लिये कोई ठोस कदम नहीं उठाया, तब वासुदेव बलबंत फड़के के मन में विद्रोह की आग भड़क उठी। उन्होंने नौकरी छोड़कर क्रांति संगठित करनी शुरू कर दी। उन्होंने जगह जगह भाषण देकर जनता को संगठित किया तथा अंग्रेजों के शासन को समाप्त करने का आव्हान किया।[14]

सन् 1861 ई. में राजनारायण बसु और नवगोपाल मित्र ने राष्ट्रीय भावना के विकास होते **''राष्ट्रीय भावना प्रवर्धन समिति''** स्थापित की। उन्होंने अन्य मित्रों के साथ मिलकर 1867 ई. से प्रतिवर्ष एक स्वदेशी मेला लगाना शुरू किया जिसे हिन्दू मेला, राष्ट्रीय मेला या चैत्र मेला कहा जाता था। 1870 ई. में उन्होंने नेशनल सोसाइटी नाम एक संगठन भी बनाया था।

सन् 1857 ई. की क्रान्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने सरकारी खर्च पूरा करने के लिये नये कर लगाने की नीति अपनाते हुए, अगस्त 1859 ई. में व्यपारियों और वकीलो, डाक्टर जैसे व्यवसाय करने वाले लोगों पर **''लायसेंस टेक्स''** का प्रस्ताव पेश किया। इस प्रस्ताव का तीव्र विरोध होने पर ''लायसेंस टेक्स'' के स्थान पर 1 अगस्त 1860 ई. से आयकर कानून लागू कर दिया। भारतवासियों ने इसका नाम **'गदर टेक्स'** रखा और इसके विरूद्ध तीव्र आन्दोलन शुरू कर दिया।[15] सन् 1857 ई. की क्रान्ति के बाद के काल में जमींदारों द्वारा किसानों पर बहुत अधिक अत्याचार किये जा रहे थे। अतः किसानों ने ब्रिटिश शासन और

उसके संरक्षण में पलने वाले जमींदारों के विरूद्ध सशस्त्र संग्राम का रास्ता अपनाया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध जनमत तेयार करने में इस संग्रामों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। इनमें कुछ प्रमुख संग्राम थे। नील विद्रोह (1859–1860), जयंतिया विद्रोह (1860–1803), फूलागुडी का दंगा (1861) महाराष्ट्र के किसानों का मोर्चा (1875) रंपा विद्रोह (1870–1880) और महाराष्ट्र का पावना विद्रोह (1872–1873)।[16]

इन विद्रोहों में प्रमुख **''नील विद्रोह''** था। इसके पीछे बंगाल और बिहार के उन किसानों की दर्द भरी कहानी थी। जिन्हें यूरोपियन प्लाण्टरों ने धोखा देकर उनसे नील की खेती करने के इकरारनामे लिखवा लिये थे। बाद में किसानों को पता लगा कि नील की खेती में मुनाफा नहीं है, पर प्लाण्टरों द्वारा इन इकरारनामों के बल पर पुलिस तथा मजिस्ट्रेट की मिलीभगत से किसानों पर दमन और दबाब डालकर उन्हें नील की खेती करने का मजबूर किया जाता था। हजारों किसान परिवार विद्रोह का झण्डा लेकर सड़कों पर आ गये। इस स्थिति में नील के किसानों की शिकायतों की जांच करने के लिये एक कमीशन बिठाया गया और कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर बंगाल में नील की खेती खत्म हो गई, जिससे किसानों ने राहत की सांस ली। **''नील विद्रोह''** के मार्गदर्शन का कार्य हरिशचन्द्र मुखर्जी ने किया । साथ ही दीनबन्धु के नाटक **''नीलदर्पण''** के काश्तकारों और उनके परिवारों पर प्लाण्टरों के अत्याचारों का मार्मिक चित्रण कर किसानों के पक्ष में विशाल जनमत तैयार किया था। माहकेल मधुसूदन दत्त ने इस नाटक का अंग्रेजी अनुवाद किया था। इस प्रकार सन् 1858–80 ई. के वर्षो में जागृति की लहर बनी रही तथा ब्रिटिश सरकार का भी भारतीय जनता के आगे झुकने का मजबूर होना पड़ा।[17]

उपरोक्त विवेचना के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि 1958 ई. से लेकर सन् 1880 ई. तक जिला प्रकार भारत वर्ष के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न वर्गो ने अपना असंतोष व्यक्त किया उससे भारतीय ब्रिटिश शासन के दमनात्मक प्रभाव स्वरूप आंशिक परिवर्तन आने लगा।[18]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पूर्व कुछ राजनीतिक संगठन स्थापित किये गये थे और उनके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया जा रहा था। कांग्रेस के पूर्ववर्ती संगठनों में प्रमुख थे– ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन (1876), पूना सार्वजनिक सभा (1867), इंडिया लीग (1875), बाम्बे प्रसीडेन्सी एसोसिएशन और महाजन सभा (1881) और दक्कन एजूकेशन सोसायटी (1884) आदि। इनमें ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन की भूमिका ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही।[19]

सभी राजनीतिक संगठनों की एक बड़ी कमी यह थी कि ये सभी संगठन क्षेत्रीय ही थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही भारत का प्रथम अखिल भारतीय स्वरूप वाला संगठन था, जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक दिशा और गति दी तथा उसे आन्दोलन का रूप प्रदान किया। अतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना कहा जा सकता है।[20]

28 दिसम्बर 1885 ई. को दिन के 12 बजे, ''गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज'' के भवन में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन प्रारंभ हुआ। जिसकी अध्यक्षता कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर ''ब्योमेशचन्द्र बनर्जी'' द्वारा की गई। अधिवेशन में भारत के प्रबुद्ध व्यक्तियों में (दादा भाई नौरोजी, फीरोजशाह मेहता, दीनशा एदलजी तथा नारायण गणेश, चन्द्रावरकर, पी. आनन्द चार्ल, बी राघवाचार्य, एन सुंब्रमण्यम आदि उपस्थित थे। यह समस्त कार्य सरकारी संरक्षण से किया गया था। अधिवेशन में **''विलियम वेडरवर्न''** और **''महादेव रानाडे''** जैसे उच्च सरकारी अधिकारी भी उपस्थित थे।

ए.ओ. ह्यूम तथा उनके सहयोगियों द्वारा कांग्रेस की स्थापना के मूलभूत उद्देश्य क्या थे, इस संबंध में विद्वान एकमत नहीं है। इस संबंध में प्रमुख रूप से दो व्याख्याऐं प्रस्तुत की जाती है। पहली धारणा के अनुसार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना उस समय व्याप्त व्यापक असंतोष के लिये एक अभय कपाट के रूप में की गई अर्थात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश साम्राज्यवाद की रक्षा करने के लिये थी, लार्ड लिटन के दमनकारी शासन की समाप्ति पर भारत क्रांति के बहुत अधिक समीप पहुंच चुका था और ह्यूम को विश्वसनीय सूत्रों से इस बात का ज्ञान हो गया था कि ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध राजनीतिक असंतोष तीव्र से तीव्रतम होता जा रहा है। ह्यूम जन आन्दोलन की इस क्रांतिकारी भावना से बहुत अधिक चिन्तित थे। अतः उन्होंने जनता के असंतोष को क्रांति का रूप ग्रहण करने के रोकने के लिये **''अभय कपाट''** का निर्माण किया जो कांग्रेस थी। ह्यूम के जीवनी लेखक सर विलियम वेडरबर्न के अनुसार ह्यूम ने एक बार कहा था–भारत में असंतोष की बढती हुई शक्तियों से बचने के लिये एक **'' अभय कपाट''** की आवश्यकता है और कांग्रेस आन्दोलन से बढ़कर अभय कपाट दूसरी कोई चीज नहीं हो सकती।[21]

यह स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने मिस्टर ह्यूम और उन ब्रिटिश अधिकारियों की आशाओं को जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना में योग दिया था जो प्रारम्भि काल में पूर्ण किया। कांग्रेस राष्ट्रीय अंसतोष को व्यक्त करने की शांतिमय साधन बन गई और इस प्रकार हिंसात्मक क्रांति की आशंका को समाप्त कर दिया।

इस प्रसंग में दूसरी धारणा यह है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतवासियों के हित के लिये एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में की गई थी। यदि कांग्रेस की स्थापना के संबंध में प्रतिपादित अभय कपाट की धारणा को स्वीकार कर लिया जाए तो यह न केवल ए.ओ ह्यम वरन् उन भारतीय नेताओं पर भी आक्षेप होगा जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना में सहयोग दिया था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म भारतीयों के हितों की रक्षा के लिये 17 प्रमुख प्रवृद्ध भारतीयों के सहयोग से हुआ था। यह संभव है कि ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रयोग एक **अभय कपाट** की तरह करने के विचार ह्यूम तथा बैडरबर्न के हृदय में हो, किन्तु इस बात पर विश्वास करना असंभव है कि दादा भाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, ब्योमेश चन्द्र बनर्जी फिरोजशाह मेहता और रानाडे जैसे भारतीय नेता उनके हाथों में साधन मात्र थे या वे भी ब्रिटिश साम्राज्य को क्रांति के खतरे से बचाने का विचार रखते थे।[22]

कांग्रेस की स्थापना के उदद्देश्य के सम्बन्ध में जो उपर्युक्त दृष्टिकोण व्यक्त किये गये है, वे दोनों आंशिक रूप से ही सत्य है। कांग्रेस की स्थापना की सही व्याख्या इसी इसी रूप में की जा सकती है कि कांग्रेस की स्थापना के मूल में ब्रिटिश साम्राज्य के रक्षण की भावना तो विद्यमान थी, किन्तु इसके साथ कांग्रेस की स्थापना के मूल में भारतीयों के हित का विचार और भारतीयता की भावना भी विद्यमान थी। 1885 ई में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक मात्र राष्ट्रीय स्तर का संगठन था। इसका उदृदेश्य जाति, धर्म या वण के किस भेदभाव के बिना सभी भारतवासियों का प्रतिनिधित्व करना था। कांग्रेस का राष्ट्रीय स्वरूप इसी से स्पष्ट हो जाता है कि इसके प्रारम्भिक अध्यक्ष ने प्रथम अध्यक्ष व्योमेश चन्द्र बनर्जी थे दूसरे अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी पारसी थे, तीसरे बदरूद्दीन तैयबजी मुसलमान थे और चौथे तथा पांचवे अध्यक्ष क्रमशः जार्ज यूल ओर सर विलियम बेडर बर्न अंग्रेज थे।

सन् 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से 1905 ई तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व उदारवादी नेताओं के हाथ में रहा। यद्यपि उदारवादी कांग्रेस नेता अपनी कार्यशैली एवं उपलब्धियों से संतुष्ट थे, किन्तु अंग्रेजी शासन के विरूद्ध भारतीयों में असंतोष बढता गया तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक वर्ग में यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि ब्रिटिश सरकार को भारतीय को वर्तमान शैली में अधिकार देने वाली नहीं है और अंततः कांग्रेस मे उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा को अपनाना होगा। भारतीय कांग्रेस के उग्रवादी विचारधारा में बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष तथा लाला लाजपतराय प्रमुख थे।

उग्रवादी विचारधारा का भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। उग्रवादी विचारधारा के नेताओं ने देश को आर्थिक राजनीतिक तथा प्रशासनिक उत्पीड़नों एवं शोषणों से मुक्त कराने के लिये स्वराज्य, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षण को अपना उदद्देश्य बनाया।

उपर्युक्त विवेचना के उपरान्त हम कह सकते है कि ब्रिटिश नीतियों ने भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया और राष्ट्रवाद की राजनैतिक चैतना ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि का निर्माण किया।

संदर्भ–

1. एस.बी. सेन, अट्ठारह सौ सत्तावन, नयी दिल्ली, 1977, पृ. 17 ।
2. वही।
3. वही, पृ. 19।
4. प्रताप सिंह, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, जयपुर, 1989, पृ. 9।
5. ब्रजेश कुमार, 1857 का विप्लव उत्तर भारत के विशेश सन्दर्भ में एक ऐतिहासिक पुनः मूल्यांकन, आगरा, 2010, पृ. 17–18 ।
6. एम.ए. जैन, आधुनिक भारत का इतिहास, जयपुर, 1980, पृ. 18 ।
7. एस.पी. सेन, पूर्वोक्त, पृ. 30–31 ।
8. जे. मॉलकोल्म, स्केच ऑफ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, लन्दन, 1951, पृ. 33 ।

9. सुन्दर लाल, भारत में अंग्रेजी राज्य, प्रथम खण्ड इलाहाबाद, 1948, पृ. 31 ।
10. जेम्स मिल, हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया खण्ड–तृतीत, लन्दन, 1960, पृ. 43।
11. सुन्दर लाल, पूर्वोक्त, पृ. 47–51 ।
12. केशव कुमार ठाकुर, भारत में अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्श, दिल्ली, 1965 पृ. 107 ।
13. वही।
14. वहीं।
15. एस.वी. मुखर्जी, इण्डिया सिन्स 1857, कलकत्ता, 1968, पृ. 75 ।
16. वहीं, पृ. 31–37 ।
17. वही, पृ. 29 ।
18. प्रताप सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 32 ।
19. साधना भदौरिया, भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस की विभिन्न राजनैतिक विचारधाराऐं, ग्वालियर, 2009, पृ. 37।
20. वही।
21. पट्टाभि सीता रमैय्या, भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास, दिल्ली, 1958, पृ. 63 ।
22. वही।

जयप्रकाश नारायण और प्रारम्भिक गांधी आन्दोलन

डॉ. नीत बिहारी लाल*

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एक महान हवन था, जिसने अनेकों राष्ट्रभक्तों में आहुतियाँ दी तथा कुछ ने अपना योगदान देकर इस महा–हवन को पूर्ण किया। भारतीय स्वतंत्रता लगभग एक शतक तक चले संघर्ष का परिणाम थी। इस संघर्ष में विभिन्न विचारधारों का जन्म हुआ और कुछ विचारधाराओं से सह विचारधाराऐं उत्पन्न हुयी तो कुछ विचारधाराऐं समय की आवश्यकतानुसार विलुप्त हये। ठीक इस प्रकार विभिन्न राष्ट्रभक्तों ने साम्यवाद और क्रान्ति के मार्ग से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश किया, परन्तु अन्ततः महात्मा गाँधी के अहिंसा दर्शन पर आधारित आन्दोलनों में सक्रिय हो गये। इस राष्ट्रभक्तों में जय प्रकाश नारायण एक प्रमुख व्यक्तित्व है, कि जिन्होंने मार्क्सवाद के दर्शन पर साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष की विचारधारा को ग्रहण किया और समाजवादी विचारधारा के माध्यम से महात्मा गांधी के अहिंसा दर्शन अथवा गांधीवाद को न केवल स्वीकार किया, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता के लिए महात्मा गांधी के आन्दोलनों में सहभागिता की।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में जय प्रकाश नारायण का कई स्तर तक महत्वपूर्ण योगदान रहा। वह महात्मा गांधी के निरन्तर सम्पर्क में बने तथा गांधी आन्दोलनों में उनकी मुख्य भूमिका रही। देश को आजादी दिलाने में जय प्रकाश नारायण ने पूर्ण योगदान दिया। उन पर प्रारम्भ मार्क्सवाद विचारधारा का प्रभाव था। वह अपना सम्पूर्ण जीवन देशहित में बिताना चाहते थे। तथा विभिन्न प्रकार से जय प्रकाश नारायण ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना अतुत्य योगदान दिया।

इस आन्दोलन के सिलसिले में सन् 1920 ई. में महात्मा गांधी खुद ही पटना पहुँचे। वहॉ उनकी एक बहुत बड़ी सभा हुई। इस सभा में जयप्रकाश ने पहली बार महात्मा गांधी को देखा। जय प्रकाश नारायण के गांधीजी से भेंट नहीं हो सकी और दूर से ही दर्शन मात्र हो पायें।[1] जय प्रकाश नारायण पर इस सभा का अधिक प्रभाव पड़ां फिर भी उनके लिए आन्दोलन में सम्मिलित होने की घड़ी अभी नहीं आयी थी। तरह–तरह की सलाहें मिलती रहती कोई कहता कि पहले पढ़ाई तो पूरी कर लो तो कोई इण्टर तक की परीक्षा देने की बात कहता।[2]

असहयोग आन्दोलन तेजी से बढ़ता जा रहा था। 1921 ई. में मौलाना अब्दुल कलाम आजाद पटना में आयोजित एक सभा का नेतृत्व करने पहुॅचे जिसमें जवाहरलाल नेहरू की भी उपस्थित थे सभा में मौलाना आजाद का भाशण बहुत ही प्रभावशाली दिया। उनकी ओजभरी वाणी ने गंगा के शांत जल में मानों आग ही लगा दी। खासतौर पर विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर मौलाना ने कहॉ कि कुछ विद्यार्थी सोचते है कि एक बार परीक्षा दे दें और फिर कॉलेज छोड़ दें। किन्तु यह कितनी बुरी बात है। एक आदमी संखिया

*सहायक प्राध्यापक–इतिहास राजकीय महाविद्यालय, माठ, मथुरा (उ.प्र.)

की डाली चूस रहा है, अगर हम उससे कहते है कि भैया, तुम तो यह जहर पी रहे हो, तो क्या वह यह कहेगा कि जब तक आप इसके बदले में मुझे मीठे दूध का गिलास नहीं देंगे, तब तक मैं इस जहर को चूसना बन्द नहीं करूँगा। जब तक आपको अमृत नहीं मिलेगा, क्या आप जहर चूसते रहेंगे ? अंग्रेजों की चलायी यह पढ़ाई तो हमें गुलाम बनाने वाली पढ़ाई है। हमारे देश के लिए तो यह जहर के बराबर है। यह पढ़ाई हमें गुलामी की जंजीरों में ज्यादा जकड़ती रहती है। इसे तो फौरन छोड़ ही देना चाहिए।[3] चूंकि इस सभा में जय प्रकाश नारायण उपस्थित थे। इस युवा के मन पर मौलाना आजाद के भाषण का व्यापक प्रभाव पड़ा।

दूसरे ही दिन जय प्रकाश नारायण ने और उनके साथियों ने कॉलेज छोड़ दिया।[4] उस समय वे इण्टर साइन्स के दूसरे साल में थे। कॉलेज की परीक्षा हो चुकी थी, और उसमें जय प्रकाश नारायण बहुत ऊँचे अंको के साथ ऊँची श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। विश्वविद्यालय की परीक्षा की तैयारियाँ जोरों से चल रही थी। परीक्षा को सिर्फ 20 दिन और बचे थे। किन्तु नहीं, अब अंग्रेजों की यह पढ़ाई हमारे किसी काम की नही। ब्रिटिश संस्था में पढ़ना पाप है। जब बात एक बार अच्छी तरह समझ में आ गयी, तो उसी क्षण वह पढ़ाई छोड़ दी और स्वराज्य के आंदोलन में कूद पड़े।[5]

जय प्रकाश नारायण के जीवन के लिए यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना थी। इस घटना ने उनके जीवन को एक बिल्कुल नया मोड़ दे दिया। यह संकल्प करने के पहले पिताजी से या और किसी से पूछा तक नहीं कॉलेज छोड़ने के बाद जय प्रकाश नारायण ने पिताजी को पत्र लिखा कि देश की आजादी के लिए मैंने यह कदम उठाया है।[6] इससे पहले में इस मामले में आपकी सलाह नहीं ले सका, इसके लिए आपसे माफी चाहता हूँ पिताजी को अपने पुत्र से बड़ी–बड़ी आशाऐं रही होगी, इसलिए उनको आघात तो पहुँचा होगा, किन्तु उन्होंने अपनी कोई खास नाराजगी जाहिर नहीं की और न किसी तरह का कोई अनुचित दबाव डाला। ब्रजकिशोर बाबू तो खुद ही असहयोग–आंदोलन के एक नेता थे, इसलिए उन्होंने तो इस निर्णय का स्वागत ही किया।[7] प्रभावति भी उसी वातरावरण में पल पुस रही थी अतः उन्हें भी इस बात की खुशी हुयी।

असहयोग आन्दोलन से जुड़ने के बाद जय प्रकाश नारायण ने तुरंत ही मिलों के बने कपड़े छोड़ दिये और खादी के कपड़े पहनना शुरू कर दिया। उन्होंने चरखा चलाना भी सीखा और असहयोग आन्दोलन में सहभागिता थी। बाद में चौरी–चौरा के हत्याकाण्ड के कारण महात्मा गांधी द्वारा आंदोलन वापस के लिया गया। उस समय कई नेता जेल में बेद थे व आन्दोलन को जोर धीरे–धीरे समाप्त हो गया।

महात्मा गांधी द्वारा स्थापित किये गये स्वदेशी संस्थानों में से एक बिहार के **'बिहार विद्यापीठ'** में जय प्रकाश नारायण ने अपनी इंटर सांइस की परीक्षा पहली श्रेणी में पास की।

अतः इस प्रकार से जय प्रकाश नारायण ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के असहयोग आन्दोलन में अपना योगदान दिया तो दिया ही साथ ही उनके जीवन का एक निर्णायक मोड़ भी प्रमाणित हुआ।

देश का वातावरण फिर से बिगड़ रहा था। दूसरी गोलमेज परिषद असफल रही तथा नये वायसराय ने कड़ा रूख अपना लिया था। सरकार द्वारा दमन का दौर शुरू कर दिया गया था। महात्मा गांधी सहित सभी उच्च श्रेणी के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था। सभी प्रांतों के प्रमुख कार्यकर्ताओं को भी जेल में बंद कर लिया गया था। भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस को एक गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया था।[8]

समस्त वरिष्ठ नेताओं की गिरफ्तारी के कारण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को आंदोलन को जारी रखने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी विशेष तौर पर 30 वर्षीय नौजवान जय प्रकाश नारायण के कंधों पर आ पड़ी तथा उन्होंने इस जिम्मेदारी को भली–भॉति पूर्ण किया।[9] जो कार्यकर्ता अलग–अलग हो चुके थे उनके साथ पुनः संपर्क स्थापित कर उनके उत्साह को बनाये रखने तथा उन्हें संगठित कर जुलूस हड़ताल, पिकेटिंग, सत्याग्रह के कार्यक्रम देते रहना, वातावरण को आंदोलन पूर्ण बनाने का जय प्रकाश नारायण पर जिम्मेदारी थी, उन्हें यह सब लगभग अज्ञातवास में रहकर करना था, क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को तो सरकार द्वारा गैर कानूनी घोषित कर दिया गया था।

इस अवसर पर जय प्रकाश नारायण के व्यक्तित्व में छिपे नेतृत्व के गुण स्पष्ट रूप से सामने प्रकट हुए। जय प्रकाश नारायण सारे देश में सतत् यात्रा करते रहे, लोगों को जाग्रत करते रहें। जयप्रकाश अपनी जिन्दादिली और देश भक्ति की भावना अन्य कार्यकर्ताओं में भी फैलाते रहें। उस समय तक उन्हें देश में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हो सकी थी, जिसके कारण वह पुलिस की नजरों में नहीं आये। इंग्लैण्ड की 'इण्डिया लीग' की ओर से एक प्रतिनिधि मण्डल भारत आया तथा जय प्रकाश नारायण ने उसे जगह–जगह ले जाकर अंग्रेज सरकार के दमन और अत्याचारों के दृष्य दिखाकर उन्हें जानकारी दी। कांग्रेस की गुप्त बैठके भी आयोजित की गयी। किसी एक स्थान पर स्थायी कार्यालय के अभाव में अलग–अलग स्थानों पर पुलिस के डर से बैठक आयोजित की जाती थी। इस आंदोलन को जीवित रखकर जय प्रकाश नारायण ने अंग्रेजों को एक प्रकार की चुनौति थी।

सितंबर, 1932 ई. में सरकार द्वारा जय प्रकाश नारायण को मद्रास में गिरफ्तार कर लिया गया।[10] उस दिन बम्बई के अंग्रेजी दैनिक **'फ्री प्रेस जर्नल'** द्वारा प्रकाशित किया गया, ''कांग्रेस का दिमाग जेल में बंद''। उन दिनों जय प्रकाश नारायण द्वारा किये गये कार्यो को ध्यान में रखने पर यह शीर्षक अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

जय प्रकाश नारायण को मद्रास से बम्बई लाया गया। उन्हें पहले आर्थर रोड़ जेल में रखा गया तथा बाद में नासिक रोड़ की सेण्ट्रल जेल में भेज दिया गया।[11] जय प्रकाश नारायण की यह पहली जेल यात्रा थी। मद्रास में हथकड़ी पहनाकर ले जायें गये जय प्रकाश नारायण को जेल में एक नये जीवन का अनुभव हुआ। उन्हें नीचे फर्श पर सोना पड़ता था। शोच के लिए कोने में पड़े एक बर्तन का प्रयोग करना पड़ता था। खाना बहुत अच्छा न होकर कच्चा–पक्का रहता था। जयप्रकाश के लिये यह सब कुछ नया था जिसके परिणामस्वरुप

जय प्रकाश नारायण को जेल में रहकर पेट की बीमारी शुरू हो गयी, किन्तु देश के खातिर देश को स्वतंत्र बनाने के खातिर जय प्रकाश नारायण ने सब कुछ उत्साह पूर्वक सहन कर लिया था।[12]

जय प्रकाश नारायण की पत्नि प्रभावती तो फरवरी में ही इलाहाबाद में गिरफ्तार हों चुकी थी, उन्हें दो साल तक सख्त कैद की जेल जीवन का दुष्प्रभाव प्रभावती के स्वास्थ्य पर भी पड़ा।

इस प्रकार जय प्रकाश नारायण और प्रभावती दोनों को ही स्वराज्य आंदोलन में भाग लेने की सजा मिली। दोनों ने ही पहली बार आंदोलन में प्रत्यक्ष रुप से भाग लिया था। जय प्रकाश नारायण के जीवन के मार्ग अब निश्चित हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि कितने ही कष्ट क्यों न सहनी पड़े, तथा कितनी ही कुर्बानियों क्यों न देने पड़ी फिर भी अब यह जीवन देश पर न्यौछावर है। उन्होंन तय किया कि राष्ट्रीय आंदोलन ही अब उनके जीवन का सर्वस्व है। अतिरिक्त जय प्रकाश नारायण के मन में भारतीय स्वतंत्रता के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

पहली जेल यात्रा के समय के अपने अनुभवों के बारे में जय प्रकाश नारायण ने बाद में कुछ इस प्रकार लिखा था कि एक बड़ा आत्मसंतोश था। यानी वह सारा जो 'इयोस' था, नेशनल मूवमेन्ट काश, महात्मा गांधी के नेतृत्व का, उससे एक ऐसा लोक मानस, बना था कि देश के लिए सफर करने से और अपनी सफरिंग से ही स्वराज्य की प्राप्ति होगी। देश में शक्ति बनेगी। तो शायद वह एक प्रकार का यज्ञ ही था। जिसमें भाग लेने को या आहुति देने का हमको मौका मिला था। तो हमको उससे बहुत स्फूर्ति मिली। इस प्रकार एक बहुत बड़ा आत्मसंतोश रहा।[12]

अतः स्वराज्य के आंदोलन में पहली बार जुड़ने के बाद जय प्रकाश नारायण को पहली बार जेल में रहने का मौका मिलने पर वहाँ सबसे अधिक तीव्र चिंतन किया। संयोग वश सन् 1932 ई में वार्शिक जेल में उस समय अच्युत पटवर्धन, मीनू मसानी, अशोक मेहता, प्राध्यापक दांतेवाला आदि अनेक अध्ययनशील और चिंतनशील युवा कार्यकर्ता इकट्ठा हो गये थे। इस कारण वहाँ इन सबके बीच खूब चर्चाएँ चली तथा विचार विमर्ष हुए और मंथन चिंतन चला। इन सभी युवाओं के मन में महात्मा गांधी के प्रति अपार श्रद्धा थी उनके सिपाही बनकर ही थे सब जेल में आये थे, किन्तु सत्य अहिंसा सम्बन्धि महात्मा गांधी के विचार और उनका जीवन दर्शन उनके गले नहीं उतरा था। पूरी तरह समझ में नहीं आया था। जय प्रकाश नारायण के मार्क्सवादी बन जाने के कारण उन्हें तो यह सब बिल्कुल भी नहीं समझ आता था इसके साथ ही अब आंदोलन का जोश भी कम हो चुका था। लोगों का उत्साह रूपी ज्वार भारा बस चुका था। इस कारण सबके मन में नये–नये विचार उमड़ने लगे थे।[14]

नवयुवक सोचने लगे थे कि इस प्रकार से जेल में बंद रहकर स्वराज्य प्राप्ति कैसे होगी ? सिर्फ चरखा चलाने से अंग्रेज देश कैसे छोड़ेगें ? अतः हिंसक क्रांति के बिना तो

अंग्रेजों में छुटकारा नहीं मिल सकेगा। यह सत्य है कि महात्मा गांधी में एक बड़ा लोक–आंदोलन खड़ा करने की शक्ति है, किन्तु नौजवानों को यह विश्वास नहीं था कि इसी से अंग्रेज देश छोड़कर चले जायेंगे। जेल से छूटने के बाद आंदोलन की तैयारी में लगने का विचार तो किसी के भी मन में नहीं था किन्तु वह जानते थे कि किसी हिंसक क्रान्ति की भी आवश्यकता तो पड़ेगी ही।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक गांधीवादी में जय प्रकाश नारायण के योगदान का मूल्यांकन करने के उपरांत हम इस निश्कर्श पर पहुँचते हैं कि प्रारम्भ में जय प्रकाश नारायण मार्क्सवाद तथा समाजवाद के अधिक निकट थे, परन्तु वह महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलनों में विश्वास रखते थे। जिसके कारण जय प्रकाश नारायण ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गाँधी के अहिंसा आधारित आन्दोलनों में न केवल महत्वपूर्ण योगदान दिया, बल्कि समाजवादी विचारधारा से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रभावित भी किया।

संदर्भ–

1. मनोज कुमार सिंह एवं शैलेश कुमार चौधरी, भारतीय राजनीतिक चिन्तक–जय प्रकाश नारायण नारायण, पृष्ठ–41।
2. वही।
3. कान्तिशाह, जय प्रकाश नारायण की जीवन यात्रा, पृष्ठ–11–12 ।
4. वही।
5. वही।
6. मनोज कुमार सिंह एवं शैलेश कुमार चौधरी, पूर्वोक्त, पृष्ठ–8।
7. वही।
8. वही।
9. कान्तिशाह, पूर्वोक्त, पृष्ठ–17 ।
10. वही।
11. डॉ. रघुवंश, जय प्रकाश नारायण के विचार, पृष्ठ–31।
12. कान्तिशाह, पूर्वोक्त, पृष्ठ–19 ।
13. अवध बिहारी लाल, सम्पूर्ण कान्ति के सूत्रधार लोक नायक जय प्रकाश नारायण, पृष्ठ–27 ।
14. कान्तिशाह, पूर्वोक्त, पृष्ठ–31।

प्रो. कुमार रतनम्–एक राष्ट्रवादी इतिहासकार

प्रभा सहरिया*

प्रो. कुमार रतनम् का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला एटा में अन्तर्राष्ट्रीय सुविख्यात कला परिवार में 1 जनवरी, 1965 को हुआ था। डॉ. रतनम् के पिता कलाभूषण प्रो. शरण बिहारी लाल जो कला जगत में **'एस.बी.एल.'** के नाम से विख्यात थे तथा माता डॉ. सुधा शरण एक जानी मानी चित्रकार थी।[1] डॉ. रतनम् के पिता प्रो. शरण भारत में सौन्दर्य दर्शन में डी.लिट् उपाधि प्राप्त एक महान कलाकार, कला समीक्षक शोधकर्ता एवं कला इतिहासकार थे। उन्होंने लगभग 8 दर्जन शोधार्थियों को अपने मार्गदर्शन में शोधकार्य सम्पन्न कराया तथा उनके शिक्षण एवं कला शोधों पर विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालय में अनेकों विद्यार्थियों ने शोधकार्य भी किया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि डॉ. रतनम् की माता डॉ. सुधा शरण भी चित्रकला विषय में पीएच.डी. एवं डी.लिट् उपाधि थी। डॉ. रतनम् की प्रारम्भिक शिक्षा नितांत सामान्य शिक्षक परिवार जिसमें नैतिक मूल्य एवं राष्ट्रीयता प्रमुख रही, उ.प्र. के बरेली जनपद में हुई।[2] 1837 में स्थापित उ.प्र. के प्राचीनतम महाविद्यालयों में से एक बरेली कॉलेज से डॉ. रतनम् से कला स्नातक तथा इतिहास विषय में परस्नातक में उपााधि ली, तदुपरान्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पीएच.डी. उपाधि हेतु तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो. राधेश्याम के साथ शोधकार्य में संलग्न थे, इसी वर्ष मेरठ विश्वविद्यालय से एम.फिल् के लिए अध्यावृत्ति स्वीकृत होने के कारण सन् 1987 में मेरठ विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में 'दर्शन निष्णांत' (एम.फिल्) उपाधि सर्वोच्च अंकों से प्राप्त कर, वही तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो. के. के. शर्मा के सुयोग्य मार्गदर्शन में 'गांधीयन मूवमेंट इन बरेली डिस्टिक (1919–1947)' शीर्षक पर भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, मानव संसाधन विकास मंत्रालय नई दिल्ली के वित्तीय पोषण में विद्या वाचस्पति (पीएच.डी.) उपाधि सन् 1990 में प्राप्त की।[3] इसी शोध कार्य में मध्य डॉ. रतनम् की नियुक्ति उ.प्र. शासन के सांस्कृतिक विभाग के अन्तर्गत वरिष्ठ शोध अधिकारी के रूप में 27 फरवरी 1989 को मेरठ मुख्यालय में हो गई।[4] डॉ. रतनम् ने रूचि की नियुक्ति के उपरान्त शासन द्वारा निर्देशित स्वतंत्रता संग्राम गति का मेरठ उ.प्र. की स्थापना के लिए प्रारम्भिक कार्य योजना का निर्माण कर उसको स्वरूप प्रदान करने के लिए मेरठ तथा मुरादाबाद सम्भागों में स्वतंत्रता संग्राम सम्बन्धित अभिलेखों एवं सामग्री का संकलन किया, लेकिन इसी मध्य म.प्र. शासन के द्वारा उच्च शिक्षा विभाग में सहायक प्राध्यापक चयन में प्रथम स्थान प्राप्त कर 27 नवम्बर 1989 को शासकीय गांधी महाविद्यलय उनाव भिण्ड में सहायक प्राध्यापक के रूप में अपनी शैक्षणिक यात्रा का प्रारम्भ किया।[5]

सन् 1995 में जीवाजी विश्वविद्यालय की शोध उपाधि समिति में प्रो. रतनम् को इतिहास विषय में मार्गदर्शक की मान्यता प्रदान की और सन् 1997 में दिलीप कुमार अग्रवाल ने 'भिण्ड जिले के स्वतंत्रता आन्दोलन' विषय पर प्रो. रतनम् के मार्गदर्शन में प्रथम शोध

*शोध छात्रा– इतिहास जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

उपाधि प्राप्त की। लेकिन डॉ. रतनम् ने अपनी शैक्षणिक योग्यताओं में विस्तार को विराम नहीं दिया और सन् 1998 में छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर उ.प्र. से 'डी.लिट् की उपाधि' ''इम्पेक्ट ऑफ गांधी फिलॉसफी ऑफ नॉन वाइनैस ऑन फ्रीडम स्ट्रगल ऑफ इण्डिया' विथ स्पेशल टेपरेन्स टू बरेली डिस्ट्रिक्ट)–(1919–47) एक क्रटिकल एस्टीमेट'' विषय पर भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार वित्तीय पोषण में प्राप्त की।[6] विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा षष्टम वेतन आयोग की शिफारिस पर महाविद्यालयीन कॉडर में आचार्य का पद 01.01.2006 से प्रदत्त किये जाने के उपरांत म.प्र. लोकसेवा आयोग द्वारा सन् 2011 में आचार्य चयन सूची में प्रथम स्थान प्राप्त कर[7] 01 मार्च 2011 को इतिहास विषय में आचार्य के पद पर नियुक्त हुऐ और वर्तमान में (जुलाई 2016 से) जीवाजी विश्वविद्यालय के अध्ययन मण्डल के अध्यक्ष मनोनीत किये गये हैं।[8]

डॉ. रतनम् इतिहास जगत में एक जाने–माने इतिहासकार, इतिहास–शिक्षक, शोधकर्ता एवं समीक्षक हे। डॉ. रतनम् के मार्गदर्शन में जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर एवं अटल बिहारी हिन्दी विश्वविद्यालय भोपाल में अनेकों शोध छात्र पीएच.डी. उपाधि में संलग्न है तथा अब तक अपने मार्गदर्शन में 3 दर्जन शोधार्थी राष्ट्रीय महत्व के विभिन्न शोध विषयों पर पीएच.डी. उपाधि अर्जित कर चुके हैं। डॉ. रतनम् में मार्गदर्शन में लगभग दो दर्जन शोधार्थी एम.फिल में उपाधि अर्जित कर चुके हैं। डॉ. रतनम् ने शोध मार्गदर्शन के साथ–साथ अपने शोधकार्य को कभी विराम नहीं दिया उनका प्रथम ग्रंथ **'इथिक्स ऑफ गाँधीयन मूमेंट'** सन् 1990 में प्रकाशित हुआ तथा उसके बाद 'मानव संसाधन विकास, ग्वालियर राजय के सिंधिया शासक', 'आवन्तीबाई लोधी' आदि डॉ. रतनम् के ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. रतनम् विगत तीन दशकों से शोध एवं शैक्षणिक प्रशासन से सम्बन्धित कार्यों में संलग्न है तथा इस मध्य वह विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों की आकदमिक परिषदों, समितियों एवं चयन प्रक्रिया से जुड़े रहने के साथ–साथ विभिन्न राष्ट्रीय शैक्षणिक एवं चयन आयोगों से भी परिवेक्षक एवं केन्द्र अध्यक्ष के रूप में संलग्न है। भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिशद नई दिल्ली सेप्रत्यक्ष रूप से चयन संबंधी प्रक्रियाओं में सहभागी है विभिन्न भारतीय राज्य एवं केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक पदों की नियुक्ति के लिए चयन समिति के सम्मानीय सदस्य भी रहे हैं।

डॉ. रतनम् वर्तमान में भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, मानव संशाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली के मनोनीत सम्मानित सदस्य है।[9] सदस्य के रूप में आप परिषद की विभिन्न महत्वपूर्ण संवैधानिक उपसमितियों के सदस्य तथा मूल्यांकनकर्ता भी है। अपने जनवरी 2016 में भारत–जापान अन्तर्राष्ट्रीय सिमपोजियम की अध्यक्षता कर भारत सरकार का न केवल प्रतिनिधित्व किया वल्कि भारत के मान को भी ऊँचा किया। इस सिमपोजियम में डॉ. रतनम् ने संस्कृतिक राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में भारतीय आर्थिक इतिहास को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया।[10]

डॉ. रतनम् इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, इंडियन हिस्ट्री एण्ड हिस्ट्री राइटिंग एसोसियेशन पंचाल इतिहास परिषद, दा इंडियन हिस्ट्री सोसाइटी ऑफ रोहेलखण्ड, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना (ऑल इण्डिया हिस्ट्री कॉन्फ्रेंस) एवं डॉ. एस.बी.एल. सक्सेना रिसर्च फाउण्डेशन में आजीवन सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रीय इतिहास संस्थाओं जैसे एम.पी. इतिहास कांग्रेस आदि के सदस्य रहे हैं। डॉ. रतनम् अपने विगत दो दशकों के शैक्षणिक कालखण्ड में 100 से अधिक इतिहास विषय की राष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों कार्यशालाओं आदि में मुख्य अतिथि–अध्यक्ष एवं तकनीकीय संस्था अध्यक्ष के रूप में सहभागिता की है और विभिन्न राश्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय रिसर्च जनरल तथा प्रोसीडिंग्स आदि में 50 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित है। डॉ. रतनम् का शोध सम्पादन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण येागदान है सन् 1991 में सर्वप्रथम डॉ. रतनम् के सहसम्पादन में मानविकी – मुख्य पत्र प्रकाशित हुआ, सन् 1992 में डॉ. रतनम् के सहसंयोजन में म.प्र. इतिहास परिषद का वार्षिक अधिवेशन की स्मारिका का प्रकाशन हुआ[11] उसके उपरान्त लगातार डॉ. रतनम् विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं एवं रिसर्च जनरल के सम्पादन के कार्य में संलग्न है।

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद नई दिल्ली द्वारा प्रो. रतनम् भारत के सबसे प्रतिष्ठित रिसर्च जनरल–इतिहास के सम्पादन मण्डल के सम्मानित सदस्य के रूप में शोध प्रावधान के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।[12] यह जनरल भारत सरकार का एक मात्र इतिहास विषय का हिन्दी जनरल है तथा परिषद के अंग्रेजी भाषा की शोध पत्रिका हिस्टोरीकल रिव्यू[13] के सम्पादन एवं सलाहकार मण्डल के भी डॉ. रतनम् सदस्य है। इसके अतिरिक्त डॉ. रतनम् के प्रधान सम्पादन में क्रयेटिव डिसकोर्श– इन्टरनेशनल[14] रिसर्च जनरल का भी प्रकाशन निरंतर हो रहा है।

डॉ. रतनम् एक राष्ट्रवदी इतिहास चिंतक एवं विचारक के साथ–साथ इतिहास लेखन के कार्य में विगत दो दशकों से संलग्न है। डॉ. रतनम् गाँधी दर्शन एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में विशेष दक्षता रखते हैं तथा उनके मार्गदर्शन में गाँधी दर्शन एवं भारतीय स्वतंत्रता से सम्बन्धित विभिन्न परिपेक्ष में अनेकों शोध कार्य सम्पादित हो चुके हैं अथवा निरंतर जारी है। डॉ. रतनम् ने 'ग्वालियर के स्वतंत्रता आन्दोलन पर गांधी के अहिंसा दर्शन का प्रभाव' शीर्षक पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की एक शोध योजना 2002 में पूर्ण की तथा उसके उपरांत 2010 में गांधी आन्दोलन ओर महिलाओं पर एक अन्य शोध योजना विश्वविद्यालय अनुदान योजना के वित्तीय पोषण में पूर्ण की। वर्तमान में डॉ. रतनम् मध्य भारत के गांव– इतिहास एवं लोक संस्कृति की वृहत परियोजना में संलग्न हे। वर्ष 2016 में **''राष्ट्र–ऋषी पं. दीनदयाल उपाध्याय''** नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और डॉ. केशव राव बलीराम हेडकेबार शीर्षक का ग्रन्थ की प्रकाशन प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी है साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और हिन्दू विषय पर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रेस में प्रकाशनार्थ है।

डॉ. रतनम् का इतिहास दर्शन का मुख्य ध्येय है कि भारतीय इतिहास भारतीयों के द्वारा मूल्य आधारित राष्ट्रीय संस्कारों से परिपूर्ण एवं तर्कसंगत होना चाहिए जो भारतीयों को स्वीकार हो और राष्ट्र का गौरव बढ़ाने वाला हो। डॉ. रतनम् का यह भी मानना है कि ब्रिटिश इतिहासकारों की अवधारणा की भारत में इतिहास लिख ही नहीं गया पूर्णतः ऑचित्यहीन है क्योंकि भारत में सर्वप्रथम वैदिक काल से ही इतिहास ओर ऐतिहासिकता को बल दिया गया, वेदों में इतिहास को न केवल उल्लेखित किया गया, वल्कि इतिहास को परिभाषित करते हुए इतिहास सिद्धान्तों को भी बतलाया गया है।

प्रो. रतनम् का मानना है कि ब्रिटिश प्रशासनिक इतिहासकारों ने अपनी साम्राज्यवादी नीति को सफल करने के उद्देश्य से जिस तीव्रता से साथ भारतीय इतिहास को आधारहीन तर्कों के आधार पर शीघ्र प्रदर्शित किया और भारतीयों में हीन भावना का संचार इतिहास में माध्यम से करने में सफल रहे, परन्तु स्वतंत्रता के 70 वर्ष बाद भी भारतीय इतिहासकार न तो इस कुठित मानसिकता से उभर सके और न ही भारतीय इतिहास का परिमार्जन भारतीय परिप्रेक्ष्य में हो सका।

सन्दर्भ–

1. एक्सप्रेशन–अभिनन्दन ग्रंथ, प्रो. सरन बिहारी लाल सक्सेना, बरेली, 2012, पृ. 1–17
2. नीरज जोशी, ग्वालियर–चम्बल के इतिहासकार एवं इतिहास लेखन अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध (इतिहास), जीवाजी वि.वि. ग्वालियर।
3. प्रो. कुमार रतनम् से व्यक्तिगत साक्षात्कार पर आधारित दिनांक 24.03.2016
4. वही
5. म.प्र. शासन सहायक प्राध्यापक पद स्थापन, 1989 सूची।
6. प्रो. कुमार रतनम् से व्यक्तिगत साक्षात्कार पर आधारित, दिनांक 24.03.2016
7. म.प्र. लोक सेवा आयोग प्राधपक चयन सूची 2011
8. जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर इतिहास अभ्यास–अध्ययन मण्डल, अधिसूचना, दिनांक 28.07.2016
9. मानव संसाधन मंत्रालय, मनोयन अधिसूचना
10. www.ichr.ac.in
11. वही